वर्ष–15 अंक–27 (जनवरी–जून, 2023) ISSN : 0975-5403

वाग्प्रवाह

A Refereed & Peer Reviewed Bilingual Half Yearly Research Journal of Humanities and Social Science

प्रधान सम्पादक
प्रो. अनिल कुमार विश्वकर्मा

संरक्षक मंडल :

प्रो. प्रेमचन्द पातांजलि, (पूर्व कुलपति, बी.डब्लू.—97 डी शालीमार बाग, दिल्ली)
प्रो. विश्वनाथ शर्मा, कुलपति, अरुणोदय विश्वविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित, सेवानिवृत्त (डी—54, साहित्यिकी निराला नगर, लखनऊ)
प्रो. उमापति दीक्षित, अध्यक्ष, नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
प्रो. सीताराम सिंह, प्राचार्य जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल पी.जी. कालेज, बाराबंकी
श्री रामलखन शर्मा, रजिस्ट्रार, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, प्रयागराज

अन्तरराष्ट्रीय विषय विशेषज्ञ :

डॉ. तेजेन्द्र शर्मा, साहित्यकार, ब्रिटेन
डॉ. अलका धनपत, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, महात्मा गाँधी संस्थान, मोका, मॉरीशस, ई—मेल alkadhunputh@yahoo.co.in
डॉ. राजरानी गोबिन, एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, महात्मा गाँधी संस्थान मोका, मॉरीशस, ई—मेल alkadhunputh@yahoo.co.in
प्रो. (डॉ.) पुष्पिता अवस्थी, अध्यक्ष, हिंदी यूनिवर्स फाउन्डेशन, नीदरलैण्ड
डॉ. कविता वाच क्नवी, डायरेटर, Vss. Gobal. New Yark (America)
डॉ. विवेक मणि त्रिपाठी, सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, क्वांग्तोंग, विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, चीन।
प्रो. सम्यंग ल्युमसाई, निदेशक, संस्कृत स्टडीज सेंटर, सिल्पाकार्न यूनीवर्सिटी, बैंकाक, थाईलैण्ड ई—मेल samiang101@gmail.com
डॉ. बमरुंग काम—एन, सहायक प्रोफेसर, हिंदी संस्कृत स्टडी सेंटर, सिल्पाकार्न यूनीवर्सिटी, बैंकाक, थाईलैण्ड
डॉ. संजीता वर्मा, एसो. प्रोफेसर, हिंदी विभाग, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, कीर्तिपुर, नेपाल

राष्ट्रीय विषय विशेषज्ञ :

प्रो. पूरनचन्द टंडन, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो. पवन अग्रवाल, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो. योगेन्द्र प्रताप सिंह, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो. हितेन्द्र कुमार मिश्र, हिंदी विभाग, नार्थ ईस्ट हिल विश्वविद्यालय, शिलांग मेघालय
प्रो. राखी उपाध्याय, अध्यक्ष हिंदी विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कालेज, देहरादून
प्रो. पीयूष कान्त शर्मा, इतिहास विभाग, एम.डी.पी.जी. कालेज, प्रतापगढ़
प्रो. अनिल कुमार श्रीवास्तव, अध्यक्ष एवं कन्विनर, समाजशास्त्र विभाग, जे.एन.एम.पी.जी. कालेज, बाराबंकी
प्रो. रेखा विश्वकर्मा, भूगोल विभाग, एम.ए.के.पी.जी. कालेज, बलरामपुर
प्रो. छत्रसाल सिंह, शिक्षाशास्त्र विभाग, उ.प्र. रा. टंडन मुक्त विश्वविद्यालय, फाफामऊ, प्रयागराज
प्रो. हेमन्त कुमार सिंह, समाजशास्त्र विभाग, जे.एन.एम.पी.जी. कालेज, बाराबंकी
डॉ. सन्नी एन.एम., एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मालाबार क्रिश्चियन कालेज कालीकट, केरल
डॉ. मुकेश श्रीवास्तव, एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, विद्यान्त हिंदू पी.जी. कालेज, प्रतापगढ़
डॉ. अज़ीज़ रज़ा, एसो. प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, उर्दू विभाग, जे.एन.एम.पी.जी. कालेज, बाराबंकी
डॉ. सुनीता कुमारी, सहा. प्रोफेसर, हिंदी विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची

वाग्प्रवाह

अर्द्धवार्षिक सांदर्भिक समीक्षित
शोध पत्रिका
(सन् 2009 से अद्यावधि प्रकाशित)

वर्ष : 15 अंक : 27
जनवरी – जून, 2023

प्रधान सम्पादक
प्रो. अनिल कुमार विश्वकर्मा

संपादन सहयोगी
प्रो. प्रणव शास्त्री
डॉ. सुनीता देवी
बीना देवी

प्रबंध सम्पादक
डॉ. रमेश प्रताप सिंह

सम्पादकीय पता
'अस्तित्व विला' 624H/KH-28,
गोमती विहार, चिनहट, लखनऊ–226028
मो. : 9412881229, 9140059427
E-mail : editoranil.hindi@gmail.com
Website : https://vagprawah.in

एक अंक मूल्य – रु. 100.00
वार्षिक मूल्य – रु. 200.00
(डाक खर्च सहित)
व्यक्तिगत/संस्थागत रु. 5000.00/8000.00
(दस वर्ष तक)
विदेशों के लिए :
एक प्रति : 10 डालर
आवरण चित्र : डॉ. बी.आर. आम्बेडकर

इस अंक में

सम्पादकीय –		
रीतिकालीन लोक साहित्य की परम्परा	प्रो. राखी उपाध्याय	01
इक्कीसवीं सदी के पहले दशक का....	कंचन यादव (शोधार्थी)	05
माधवी : मानवाधिकारों की तलाश.	डॉ. शिखा त्रिपाठी	10
संत कवि दरियाव के काव्य में.....	श्यामा राम (शोधार्थी)	14
कालिदास त्रिवेदी की प्रयोगधर्मिता	स्वाति सिंह बावरा (शोधार्थी)	17
राष्ट्रीय चेतना के विकास में हिंदी.....	डॉ. राजेश कुमारी	21
आविस्मणीय गीतकार : शकील बदायूनी	डॉ. अजीज़ रज़ा	27
डॉ. आम्बेडकर की राजनीतिक चेतना	डॉ. अभिषेक गौतम	31
असमानताओं से जूझता भारतीय.....	दरख्शाँ शहनाज़	35
मैत्रेयी पुष्पा : व्यक्तित्व एवं रचना....	रंजीता राय	39
'दोहरा अभिशाप' कितना दोहरा....	डॉ. विजय कुमार वर्मा	43
राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में...	अभयराज सिंह (शोधार्थी)	47
एस. आर. हरनोट की कहानियों.....	सिमरो देवी (शोधार्थी)	49
संत कबीर नगर जनपद में फसल.....	डॉ. अमर सिंह गौतम/ बृजेश कुमार	52
अनामिका के कविता संग्रह.....	राजश्री कमल (शोधार्थी)	58
पत्रकारिता और जनसंचार माध्यमों...	अमित कुमार गौतम	61
प्रभाकर श्रोत्रिय के 'इला' नाटक....	सुधा देवी (शोधार्थी)	67
कर्मयोगी संत रविदास की जीवन.....	डॉ. सुनीता देवी	70
हिंदी की अधुनातन स्थिति	डॉ. अवधेश कुमार	74
संस्कृति, संस्कार और संस्कृत	डॉ. ज्योति सिंह	78
भारतीय अर्थव्यवस्था में विभिन्न.....	डॉ. रीना सिंह	79
पशुपालन से गर्म होती हमारी	प्रदीप कुमार	84
संत कवियों की सामाजिक समरसता	डॉ. सीमा गुप्ता	90
कालजयी रचना – गोदान	प्रा.डॉ. विजय श्रावण घुगे	93

वाग्प्रवाह से सम्बन्धित सभी विवाद केवल लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। प्रकाशित रचनाओं के विचार से संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। इसमें प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए संपादक की लिखित अनुमति अनिवार्य है। इसके संपादन, प्रकाशन व संचालन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं। यह पूर्णतः अव्यावसायिक पत्रिका है।

सम्पादकीय

भारत को चाहिए एक और आम्बेडकर

अतुल्य भारत के अतुलनीय व्यक्तित्व 'भारत रत्न', ज्ञान के प्रतीक एवं बोधिसत्व बाबा साहेब भीमराव आम्बेडकर का जीवन बहुत ही संघर्ष पूर्ण रहा। भारतीय सामाजिक ढाँचे में उनका जन्म समाज में सबसे नीची और अस्पृश्य समझी जाने वाली जाति में हुआ था। किसी व्यक्ति का किसी जाति में जन्म पर उसका अपना कोई वश नहीं। उन्होंने अपने परिश्रम, लगन और योग्यता के बल पर मुंबई विश्वविद्यालय एवं तत्पश्चात् अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त कर एक कीर्तिमान स्थापित किया। कई वर्षों तक विदेश में रहकर सम्मान पूर्ण जीवन जीने के बाद जब वह स्वदेश लौटे तो उन्हें लगा अब शायद उन्हें सामाजिक उपेक्षा का शिकार नहीं होना पड़े; किन्तु उन्हें अपने देश में उस समय वह सम्मान नहीं मिल जिसके वह हकदार थे। वर्ण और जाति व्यवस्था के शोषण से वे बहुत दुःखी थे, फिर भी वे पलायनवादी नहीं बने। वे इतने योग्य थे, चाहते तो विदेश में जाकर अच्छी नौकरी प्राप्त कर सकते थे परन्तु उन्होंने ने ऐसा नहीं किया। एक सच्चे राष्ट्र भक्त का परिचय देते हुए स्वदेश में रहकर सम्मान पूर्ण जीवन जीने के अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष का रास्ता अख़्तियार किया। बाबा साहेब का दृष्टिकोण सामाजिक रूप से 'समतामूलक समाज' की स्थापना करना था। वे चाहते थे समाज से छुआछूत और ऊँच –नीच का भेद समाप्त हो। सब भाई चारे के साथ मिल – जुल कर रहे। समाज में सब को एक दूसरे की जरूरत है। कोई भी कार्य छोटा नहीं। सभी को सम्मान पूर्ण जीवन जीने का हक है, उसको वह अधिकार मिलना चाहिए। उन्होंने ने दलित और शोषित समाज के उत्थान के लिए अनेक आंदोलनों का नेतृत्व किया। समाज को जागरूक करने के लिए कई समाचार पत्रों जैसे –**मूकनायक, (1920)**, **बहिष्कृत भारत** (1927–29), **जनता (1930–56) एवं प्रबुद्ध भारत** (1956) आदि का समय–समय पर सम्पादन किया। वे महान् शिक्षाविद्, दार्शनिक, अर्थशास्त्री, समाज सुधार, शिक्षक, पत्रकार, सम्पादक, विधि वेत्ता और दूरदर्शी नेता थे।

सन् 1947 में देश को पूर्ण स्वराज्य प्राप्त होने के बाद जब देश का अपना संविधान बनाने की बात चली तो बाबा साहब की योग्यता और सूझ – बूझ को देखते हुए तत्कालीन सभी नेताओं ने इस कार्य के लिए एक स्वर से डॉ. आम्बेडकर के नाम की संस्तुति की। फलतः 29 अगस्त 1947 को संविधान सभा ने **संविधान मसौदा समिति** का गठन किया जिसका **अध्यक्ष डॉ. बी.आर. आम्बेडकर** को चुना गया। समिति के अन्य सहयोगी सदस्यों के साथ मिल कर कठिन परिश्रम के साथ 2 वर्ष 11 माह 18 दिन यानि 26 नवंबर 1949 को विश्व का सबसे विशाल एवं लिखित संविधान – **'भारत का संविधान'** तैयार हुआ। इसे 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया।

बाबा साहेब संविधान तैयार करने से पूर्व दो अति महत्वपूर्ण पुस्तकों को भी लिख चुके थे जो भारतीय अर्थ व्यवस्था और जाति व्यवस्था को समझने में मील का पत्थर साबित हुई। दोनों के नाम क्रमशः –**प्रॉब्लम ऑफ द रूपी** और **एनीहिलेशन ऑफ कस्ट** (1936) हैं।

इसके अलावा उन्होंने भारत की आधी आबादी यानि महिलाओं के लिए सम्पति का अधिकार (हिंदू कोड बिल के माध्यम से) दिलवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ब्रिटिश शासनकाल में मिल मजदूरों के लिए कार्य की अवधि –18 घंटे होते थे। उसको कम करने के लिए अनेक संघर्ष किया और उसे 08 घंटे का करवा। महिलाओं को मातृत्व तथा समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था भी बाबा साहेब की ही देन है। जिससे महिलायें आज सम्मानपूर्ण जीवन–यापन करने में समर्थ हुई हैं। इस तरह से देखें तो यह ज्ञात होता है कि बाबा साहेब ने दलितों, पिछड़ों के साथ अन्य वर्गों के कमजोर और असहाय लोगों के उत्थान के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किया जिसका सम्पूर्ण उल्लेख यहाँ कर पाना सम्भव नहीं है। उनके द्वारा मानवता की रक्षा के लिए किये गये कार्यों को विश्व मानव समाज सहज रूप से भुला नहीं सकेगा। ऐसे महान् व्यक्ति सदियों बाद जन्म लेते हैं।

प्रो. अनिल कुमार विश्वकर्मा

सम्पादक

रीतिकालीन लोक साहित्य की परम्परा

प्रो. राखी उपाध्याय
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून, उत्तराखण्ड
drrakhi.418@gmail.com

शोध सारांश

रीतिकालीन साहित्य में लोक संस्कृति का प्रचुर मात्रा में वर्णन हुआ है। इतना ही नहीं, लोक संस्कृति के प्रभाव के कारण ही राजकुमारियों और राज–महर्षियों के ही समान नाइन, धोबिन, मालिन और चुड़िहारिन वर्ग की सेविकाएँ भी नायिका–भेद के अन्तर्गत महत्वपूर्ण बनी रही है। रीतिकालीन साहित्य में दरबारी संस्कृति और लोक संस्कृति का समान रूप से चित्रण हुआ है। यदि कहीं दरबारी–संस्कृति ने लोक–संस्कृति पर प्रभाव डाला है तो अन्यत्र लोक व संस्कृति ने भी दरबारी संस्कृति को नवीन दिशा प्रदान की है। मुगल दरबार में रीति–कवियों की सफलता का रहस्य उनकी लोकधर्मिता ही रही है।

सम्पूर्ण कलागत अभिव्यक्ति शास्त्रीय रूढ़ियों में आबद्ध होती जा रही थी। इससे विषय वस्तु क्षीण और रूप विधान अतिशय अलंकृत होने लगा। कला की जीवंतता सम्पूर्ण समाज के स्पन्दन में न दिखाई देकर, मुट्ठीभर राज–समाज के लोगों की अतृप्त पिपासा के शमन में दिखायी देती है। इसका चित्रण तत्कालीन साहित्य में बड़ी ही सजीवता के साथ किया गया है। रीतिकालीन साहित्य में दरबारी संस्कृति का तो चित्रण हुआ ही है, उसके साथ–साथ लोक–संस्कृति का भी मार्मिक वर्णन मिलता है।

कुंजी शब्द– रीतिकाल, दरबारी, संस्कृति, ग्रामीण चेतना, लोकसंस्कृति, रीतिकालीन कवि, लोक जीवन,

शोध–पत्र

रीतिकालीन साहित्य दरबारी संस्कृति से प्रभावित होते हुए भी लोक–संस्कृति को अपने में समेटे हुए थी। लोक–संस्कृति का अभिप्राय उस संस्कृति से है जिसमें आम–आदमी के जीवन परिवेश का चित्रण हुआ है। इसमें ग्रामीण चेतना और संवेदना का प्रस्फुरण होता है– "इस युग के हिन्दी काव्य की चेतना और संवेदना का आधार ग्रामीण जीवन की धुरी पर ही केंद्रित रहा है।"[1] आश्रयदाताओं के मनोरंजन के लिए जरूरी था कि 'नागर चेतना' से परे ग्रामीण जीवन की मधुर संवेदना को काव्य का उपादान बनाकर दरबारी कवियों से होड़ लें।

दरबारी कवि भी ग्रामीण चेतना की विशिष्टताओं से मंडित होकर जब राजदरबार में जाते हैं तो वहाँ पर वे श्रद्धा के भाजन बनते हैं। कविवर बिहारी की गँवारि का चित्रण ग्रामीण संस्कृति का परिचायक हैः

"गदराने तन गोरटी, ऐपन आड़ लिलार।

हृद्यो दै, इठलाइ दृग,करै गँवारि सुवार।।"[2]

मात्र रीतिकाल में ही नहीं, अपितु अन्य गुणों में भी नागर–चेतना ग्राम्य–चेतना की ओर झुक–झुक पड़ती है। कविवर कालिदास ने भी विक्रमोर्वशीयम् में ग्रामीण मृग–लोचनी का चित्रण किया है–

"मइँ जाणिअै मिअ–लोअणी णिसिअरु कोई हरेइ।

जाव णु णव–तहि समली धराहरु वरिसेइ।।"[3]

ग्रामीण चेतना से आकृष्ट होकर ही मुगल शासकों ने अपने दरबार में भाषा–कवियों को प्रपत्र दिया था। "ग्रामीण परिवेश में ही ऋतु के अनुकुल, केसरिया और पीत वस्त्रों की बहार, कोकिल और पपीहे की पुकार, नृत्य, वाद्य, गुलाल–केशर और अबीर की झोली, पिचकारी की फुहार, स्त्री–पुरुषों की लपक–झपलक, धर–पकड़, रीझ–खीझ, भाग–दौड़, वस्त्रों की खींचातानी, डफ–ढोल, मृदंग, बंशी आदि सभी उपकरणों को एकत्र किया गया है। नागर संस्कृति यदि व्यक्तिवादी है तो ग्रामीण संस्कृति समष्टिवादी। नागर संस्कृति में देवर–भाभी का विनोद प्रायः चलता रहता है। यह संबंध बड़ा ही पवित्र माना गया है। इस प्रसंग को लोक–संस्कृति से ग्रहण करके कविवर बिहारी ने दरबारी रंग में रंगकर उसका जो वर्णन किया है, वह बड़ा ही मार्मिक हैः

"कहति न देवर की कुबत, कुलतिय कलह डराति।

पंजर–गत मंजार ढिग, सुक लौं सूकति जाति।"[5]

दरबारी संस्कृति के संस्पर्श से मातृ–पुत्र तुल्य देवर–भाभी का पवित्र सम्बन्ध भी कलुषित–सा लगता है। इसका विश्लेषण करते हुए रत्नाकर जी ने लिखा है– "देवर अपनी भौजाई से अनुचित प्रेम करना चाहता है। पर भौजाई पतिव्रता तथा सुशीला है, अतः बड़ी चिंतित है। यदि वह देवर की खुटाई नहीं कहती तो उसे भय है कि कहीं अवसर पाकर, वह उसको आलिंगन इत्यादि न कर ले, और यदि कहती है तो भाई–भाई में तथा देवर–देवरानी में कलह होता है। इसी अड़चन में पड़ी हुई वह सूखती जाती है।" ऐसा लगता है यहाँ तक आते–आते इस देवर को नागर–सभ्यता की हवा लग गयी। गौने जाती हुई नायिका किस प्रकार बिहँसती और रोती है, उसका बड़ा सुन्दर चित्रण बिहारी ने किया है–

"चाले की बातैं चली, सुनत सखिन कैं टोल।

गोएँ हूँ लोइन हँसत, विहँसत जात कपोल।।"[6]

जिस नायक से नायिका का प्रेम था उसी से इसका ब्याह हो गया है और अब गौने की बातें हो रही हैं। इससे प्रिय समागम की आशा में उसे प्रसन्नता होती है। पर सामान्यतः लोक–जीवन में नवेलियों को, गौन के समय, नैहर छूटने का दुःख ही होना है। इसलिए वह अपने प्रसन्न नेत्रों को छिपा रही है। पर उसकी प्रसन्नता इतनी अधिक है कि उसके कपोल भी विकसित हो रहे हैं। अतः आँखों के छिपाने पर भी उसके विशेष ढंग से हँसते हुए कपोलों से उसका मोद प्रकट होता है। ग्रामीण अंचलों में जब नयी दुलहिन विवाहिता होकर आती है तो उसे परिवार के सभी लोग आभूषणादि वस्तुएँ उपहार स्वरूप देकर उसका मुँह देखते हैं यह उपहार दुलहिन का निजी धन हो जाता है। इसका एक चित्र देखिएः

"मानहु मुँह–दिखराबनी दुलहिहिं करि अनुरागु।

सासु सदनु, मनु ललन हूँ, सौतिनु दियौ सुहागु।।"[7]

नयी दुलहिन विवाहिता होकर आई है। आते ही उसकी सुघराई तथा शील पर रीझकर सास ने उसको घर का प्रभुत्व, नायक ने उसके रूप और गुणों पर अनुरक्त होकर अपना मन एवं सौतों ने अपने को उसके बराबर न समझकर प्रियतम का प्यार दे दिया।

इस प्रकार लोक–संस्कृति से प्रभावित होकर मुगल बादशाहों ने लोकगीतों का संकलन कराया और लोक–मानस में विद्यमान लोक–कथाओं को अपनी अचल निष्ठा के कारण फारसी में अनुवाद कराया था। इससे स्पष्ट है कि लोक–संस्कृति की ओर नगर समाज सदैव आकृष्ट होता है। यहाँ एक बात स्मरणीय है कि ये ग्रामीण लोग कभी भी नागर संस्कृति की चकाचौंध में अपने स्वतत्व को विस्मृत नहीं करते हैं।

शालीनता लोक–जीवन का सबसे बड़ा धर्म है। इसके अभाव में जीवन की सरसता समाप्त हो जाती है। लछिराम के एक छंद में छोटी ननद अपनी भाभी से प्रियतम के विषय में पूछती है–

"बबा सामुहे में चुप साधै रहै, भली भाई को सग निहोरत है।

लछिराम सुर सजो पटुका, सिरपेव को बाँधत छोरत है।

चलैं संग हमारे न खेलिबे को, कर के छिएँ भौंह मरोरत हैं।

ए कहाँ रहैं भाभी! बताइदै तू, जो हमें लखि यों मुखमोरत हैं।"[8]

लोक–जीवन सामाजिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का भी समावेश रहता है। इसमें भूत–प्रेत, जादू–टोने, ज्योतिष विद्या में गहरी आस्थों, स्त्रियों और पुरुषों के अंगों के फड़कने में शकुन–अपशुन का विश्वास, खाली घड़ों से अपशकुन की संभावनादि का भी चित्रण किया गया है। कविवर भंजन की भूत–प्रेत के संबंध में एक रचना देखिएः

"अंबरचार पयोधर देखि कै कौन को धीरज जो न गया है।

भंजन जू नदिया इहि रूप की नाउ नहीं रविहु अथयो है।।

पथिक आज बसो इहि देस भलो तुमको उपदेश दयो है।

या मग बीच लगै एक नीच सुपावक में दहि प्रेत लयो है।"[9]

लोक–संस्कृति आस्था एवं विश्वास की संस्कृति है। इसमें पूर्वजन्म, भाग्यः आदि पर विश्वास किया जाता है।

इसके कारण लोक में ज्योतिषी एवं ज्योतिष विद्या की महती प्रतिष्ठा रही है। गाँवों में आज भी स्त्रियाँ ज्योतिषयों द्वारा अपने सुख–दुःख, भाग्य–भाग्य की चर्चा करती हैं। इस सम्बन्ध में 'ठाकुर' की एक रचना दर्शनीय हैः

"को हौ? ज्योतिसो हौं, कछू ज्योतिषे विचारत हौ?
मेरी सुभ धाम काम जाहिर हमारो तो,
आओ बैठ जाओ पानी पियो पान खाबो फेर,
होय कै सुचित नेक गणित निकारो तो।
ठाकुर कहत प्रेम नेम को परेखों देखि,
इच्छा की परिच्छा भली भाँति निरधारों तो,
मेरो मन मोहन सो लागत है भाँति–भाँति,
मोहन को मन मोसों सो लागत है विचारो तो।।"[10]

इस छंद में ठाकुर ने लोक–जीवन की ऐसी अनुभूतियों का निरूपण किया है जो लोक–तात्त्विक दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है। इसमें जन–जीवन को प्राचीन मान्यताओं, आस्थाओं और उनके सरल स्वभाव की अभिव्यक्त हुई है। रीति–काव्य में शकुन–अपशकुन विषयक प्रतीकों का भी चित्रण किया गया हैः

"नागरि नवेली रूप आगरि अकेली रीति।
गागरी लै ठाड़ी भई बाट ही के घाट में।"[11]

इसी प्रकार अंगों के फरकने से भी शकुनाशकुन का विचार किया जाता है। यदि स्त्रियों का बायाँ अंग फरकता है तो शकुन और दायाँ फरकता है तो अपशुकन। पुरुषों के लिए ठीक इसके विपरीत मान्यता है। बिहारी की नायिका का बायां अंग फरकता है तो वह क्या विचार करती हैः

"बाम बाहु फरकत मिलैं, जो हरि जीवन मूरि।
तो तोहि सों भेंटिहौ, राखि दाहिनी दूरि।।"[12]

इसी प्रकार पशु–पक्षियों की बोलियों पर भी शकुनाशकुन विचारने की प्रवृत्ति लोक–जीवन में पायी जाती है। आज भी गाँवों में "कागा बौले मोर आंगनवा अइहै आज सजनवा ना" जैसी भविष्यवाणी की जाती है। रीति–कालीन साहित्य में इसे यथावत् ग्रहण किया हैः

"पैजनी गढ़ाय, चोंच सोने में मढ़ाय दैहों।
कर पर लाय, पर रूचि सी सुधारिहौं।
कहै कवि तोष छिन अटक न लैहों कबौं,
कचन कटोरे अटा खीर भरि धरिहौ।।
एरे कारे काग! तेरे सगुन संयोग आज,
मेरे पति आवैं, तो वचन ते न टरि हौं।
करतीं करार, तौंन पहिलै करौंगो सब,
आपने पिया को फिरि पाछै अंक भरिहौं।।"[13]

प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा में रत प्रियतमा शकुन विचारती हुई कौवे से कह रही है– हे काग, तुम्हारे पाँवों में पैजनी बनवाकर पहना दूँगी और तेरी चोंच को सोने से मढ़वाँ दूँगी। यही नहीं, तुझे अपने हाथ पर बैठाकर तुम्हारे पंखों को सुधारूँगीं और तुरन्त तेरे भोजन के लिए सोने के कटोरे में खीर भरकर अट्टालिका पर रख आऊँगी। मैं सत्य कहती हूँ कि अपने वचन से कभी न हटूँगी। यदि तुम्हारे बोलने से हमारे प्रियतम आज आ जायेंगे तो उक्त सभी कार्य पहले करूँगी, तदनन्तर प्रिय से मिलूँगी।

अक्षय तृतीया के अवसर पीपल पूजने के प्रसंग पर लिखे गये चित्रण को देखिएः

"तुम नाम लिखवति हौ हम पै,
हम नाम कहौ कहा लीजिए जू।
जब नाव चलै सिगरी जल में,
थल में चलै कहा कीजिए जू।।
कवि 'मंचित' औसर जो अकती,
सकती हम पै नहिं कीजिए जू।।
हम तो अपनोवर पूजति है,
सपने नहिं पीपर पूजिये जू।।"[14]

इस छंद में पतिव्रत भाव के साथ एक लोक–सांस्कृतिक झाँकी भी प्रस्तुत की गयी है।

रीतिकालीन संस्कृति के अन्तर्गत संस्कृति की व्युत्पत्ति, परिभाषा, संस्कृति और संस्करण का सम्बन्ध, संस्कारों का मानव जीवन पर प्रभाव, भारतीय संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति, संश्लिष्ट संस्कृति, संस्कृति के प्रकार आदि का विवेचन–विश्लेषण किया गया है। रीतिकालीन संस्कृति के अंतर्गत मानव जीवन साधारण और विशेष वर्ग में विभाजित था। तत्कालीन हिन्दू संस्कृति भारतीय संस्कृति

का प्रतिनिधित्व करती हैं। भारतीय परिवेश में देखने के लिए अलग–अलग प्रान्त, भाषा, आचार–विचार, वेशभूषादि हैं लेकिन समग्रवत् उसकी ध्वन्यात्मकता अनेकता में एकता की है। सम्पूर्ण समाज सुन्दर, सुखद और सर्वांगणपूर्ण विकास करे, उसके लिए हमारी संस्कृति में कहा गया है कि हजारों मस्तक, हजारों बाहु, हजारों नेत्र, हजारों उदर, हजारों जाँघें और हजारों पैरों वाला एक पुरुष पृथ्वी पर चारों और फैला हुआ है। ज्ञानी मनुष्य इसके मुख हैं। शूरवीर बाहु हैं, किसान और व्यापारी इसके उदर तथा जाँघें हैं, कारीगर इसके पैर है। इस प्रकार ज्ञानी, शूर व्यापारी और शिल्पी मिलकर एक देह है। एक देह में जिस प्रकार एकात्मकता होती है, वैसी एकात्मकता जनता–रूपी पुरुष में होनी चाहिएः

"सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिंविश्वतो वृत्वाऽयतिश्ठत् दशाड. गुलम।।
ब्रह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो ऽजायत्।।"

इसी से हमारी संस्कृति में, समाज के विभिन्न वर्गों में संघर्ष, भेद, प्रति स्पर्धा नहीं, सामंजस्य का स्वरूप दिखाई पड़ता है। वर्ण–व्यवस्था में जो लोग भेद देखते हैं, वे सचमुच कुछ नहीं देखते। वह वर्ण–भेद नहीं, व्यवस्था है। इसमें छोटा–बड़ा, ऊँच–नीच सोचना भूल करना है। एकात्मकता के साथ सब कार्य करें तो सुख की सिद्धि होगी :

"यतः प्रवृतिर्भुतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यच्यं सिद्धि विन्दति मानवः।।"

इस प्रकार भारतीय संस्कृति सहअस्तित्व के आधार पर मानव शांति एवं विश्वबंधुत्व की भावना से ओत–प्रोत पंचशील के स्वरूप को प्रतिपादित करती है।

रीतिकालीन दरबारी संस्कृति का केंद्र राजा था। वह एक राज्य या क्षेत्र विशेष का सांस्कृतिक प्रतिनिधि माना जाता था। राजा समाज में शासन और अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित अमीर, उमराव एवं दरबारी मनोविनोद हेतु कलाकार थे। इन लोगों की संस्कृति वर्ग विशेष की संस्कृति थी जो नागर संस्कृति के नाम से अभिहित की गयी है। इस वर्ग के लोगों की वार विलासिनियों के साथ उन्मुक्त विलास के कारण उसकी पारिवारिक व्यवस्था शिथिल होती जा रही थी।

सामान्य जीवन व्यतीत करने वाले लोगों की संस्कृति को लोक–संस्कृति का नाम दिया गया है। इस वर्ग के लोग राज समाज के व्यय–साध्य विलासी जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कर–भार से दबे जा रहे थे। तत्कालीन समाज का विपुलांश इसी वर्ग के अन्तर्गत आता है। इनकी रीति–नीति पर विद्वान् कलाकार राज–सम्मान लुटते थे। आलोच्यकालीन परिवेश में समस्त कला और विलास का केंद्र नारी का अंगांग सौन्दर्य था। इसी साढ़े तीन हाथ के दरिया में उस समय के समाज का प्रतिनिधि वर्ग डूबा हुआ था। कहीं–कहीं छिट–पुट जातीय भावना का भी रंग दिखायी पड़ता है। जिसमें उद्वेलित होकर देशी हिन्दू राजा स्वतंत्रता के लिए या अपने स्वत्व की रक्षा के लिए संघर्ष भी करते हुए दिखायी पड़ते हैं।

संदर्भ –

1. सिंह, डॉ. महेंद्रप्रताप, रीतिकालीन हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या, पृ.– 48
2. रत्नाकर, जगन्नाथ, बिहारी रत्नाकर, दोहा 93
3. सिंह, डॉ. नामवर, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ.– 293
4. सिंह, डॉ. बच्चन, बिहारी का नया मूल्यांकन, पृ.– 125
5. रत्नाकर, जगन्नाथ, बिहारी रत्नाकर, छंद 75
6. रत्नाकर, जगन्नाथ, बिहारी रत्नाकर, छंद 134
7. रत्नाकर, जगन्नाथ, बिहारी रत्नाकर, छंद 287
8. डॉ. किशोरीलाल, गीति–कवियों की मौलिक देन, पृ.– 381
9. सरदार, श्रृंगार संग्रह, छंद 12, पृ.– 54
10. लाला भगवानदीन, सम्पादक – ठाकुर ठसक, प्रकाशक साहित्य सेवक, काशी, पृ.– 17
11. मतिराम, रसराल, छंद 212
12. रत्नाकर, जगन्नाथ, बिहारी रत्नाकर, छंद 572
13. तोष, सुधानिधि, छंद 183
14. मिश्र, डॉ. भगीरथ, कला, साहित्य और समीक्षा, पृ.– 118

■ ■ ■

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक का कथा साहित्य और शिवमूर्ति

डॉ. अखिलेश वर्मा, शोध निर्देशक
सहायक प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
रामनगर पी0 जी0 कालेज, रामनगर, बाराबंकी

कंचन यादव,
शोधार्थिनी, हिंदी विभाग
रामनगर पी.जी. कॉलेज, रामनगर बाराबंकी

सम्बद्धः डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

शिवमूर्ति ग्रामीण समाज के कथाकार हैं। वास्तव में कोई भी व्यक्ति जब कथाकार बनने के लिए कलम पकड़ता है तो सबसे पहले अपने अनुभव को कलमबद्ध करता है। शिवमूर्ति के पास अनुभव के रूप में उनके गाँव का जीवन इतना धनी है कि शिवमूर्ति उसी को लिखते हैं। गाँव का एक भरा–पूरा संसार उनके पास है। उसमें अनेकों कहानियाँ हैं। कहानी से निकलती हुई कहानियाँ। मेले– ठेले, नदी–नाले, तालाब–पोखरे, जीव–जंतु, दादी–नानी, मामा–मामी, घर–परिवार आदि। शिवमूर्ति ने इन सब को नजदीक से देखा–भोगा, महसूसा है।

उनके सृजनात्मक व्यक्तित्व का विकास ग्रामीण परिवेश में हुआ। वास्तव में शिवमूर्ति ग्रामीण परिवेश में पले–बढ़े एवं उसी में रचे–बसे कथाकार हैं। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार ''शिवमूर्ति ग्रामीण जीवन के विश्वसनीय कथाकार हैं। किसान जीवन को अपनी रचना का विषय उन्होंने किसी साहित्यिक प्रवृत्ति या साहित्यिक आकांक्षा के तहत नहीं अपनाया है। वे ग्रामीण एवं किसान जीवन के सहज रचनाकार हैं। उनका व्यक्तित्व, रहन–सहन, बोली–बानी सब कुछ ग्रामीण और किसानी है। एक आंतरिक ठसक के साथ। वे जितने विनम्र हैं उतने ही दृढ़! यह भी लगता है कि उन्हें अपने लेखन के प्रति आत्मविश्वास भी है। इस आत्मविश्वास का आधार रचित वस्तु की गहरी सूक्ष्म और व्यापक जानकारी है निजी फस्ट हैंड जानकारी।''[1] मुक्तिबोध इसे ही रचना का 'प्रथम क्षण' कहते हैं।

शिवमूर्ति में कथाकार का बीजारोपण बचपन में ही हो गया था। बचपन की स्मृतियाँ ताउम्र मनुष्य के साथ रहती हैं। उस समय अनुभव की पोटली एकदम रिक्त पड़ी रहती है। उसमें जो अनुभव पहले आते हैं– वे एकदम 'फस्ट हैण्ड' अनुभव होते हैं। अनुभव बहुत अच्छे हों या बेहद तीखे, उनका अपना अतिरिक्त महत्व होता है। फिर तो आप बड़े होते जाइए, अनुभवों को भरते जाइए। लेकिन हर दूसरे–तीसरे चौथे या नये अनुभव को आप पहले अनुभवों से तौलते हैं। यह एक अनायास चलने वाली प्रक्रिया है। इसलिए प्रत्येक रचनाकार अपने बचपन और किशोरावस्था के दिनों को शिद्दत से याद करता है। शिवमूर्ति कहते हैं ''बचपन और किशोरावस्था में मन की स्लेट साफ और 'नई–निकोर' रहती है। उस समय का देखा–सुना पूरी तरह जीवंत और चमकीले रूप में सुरक्षित रहता है। शायद यही उम्र होती है मन में लेखकीय बीज पड़ने और अंकुरित होने की।''[2] रचनाकार के इन बीजों को शिवमूर्ति ने अपनी स्वानुभूति और अनुभूति से सींचा है। कहने का तात्पर्य यह है कि शिवमूर्ति अपनी रचनाओं में जिन ग्रामीण समाज के पात्रों और ग्रामीण जीवन की समस्याओं को व्यक्त करते हैं, वे उनके निजी जीवन के भोगे हुए और ग्रामीण समाज में घट रहे यथार्थ के प्रतिबिम्ब हैं। शिवमूर्ति के बारे में कमल नयन पांडे कहते हैं ''भोक्ता के तौर पर गंवई जीवन–स्थितियों को स्वयं भोगते हुए उन्हें स्वानुभूति हासिल होती है। अर्थात सीधी–साधी अनुभूति। 'द्रष्टा' के तौर पर गंवई जीवन–स्थितियों को स्वयं भोगते हुए गंवई जन को देखकर उन्हें 'स्वानुभूति' हासिल होती है। इसी 'स्वानुभूति' और 'सहानुभूति' के संधि–स्थल पर शिवमूर्ति का कथाकार उभार और आकार पाता है। संभवतः इसीलिए शिवमूर्ति की कहानियों में समकालीन गाँव और गंवई जीवन का ठेठ व ठोस यथार्थ व्यंजित हुआ है। शिवमूर्ति की कहानियों में तेजी से बदल रहे गाँव की साफ झलक दिखलाई पड़ती है। बदल रहे गंवई जन के आज जो नए सपने हैं, जो इरादे हैं, जो प्राथमिकताएँ हैं, इन सब को इनकी कहानियों में पढ़ा जा सकता है। आज गंवई समाज के भीतर परस्परता टूट रही है। आत्मकेंद्रीयता बढ़ रही है। मानवीय करुणा विलोपित हो रही है। उपकारी मन गुम हो रहा है। भ्रष्टाचार निरापद रूप में बढ़ रहा है। कहीं अराजकता बढ़ रही है तो कहीं

आत्मभीति से अवसाद बढ़ रहा है। बहुआयामी पतनशीलता के नित नए कीर्तिमान स्थापित हो रहे हैं। इन सब दारुण दशाओं और त्रासद परिणतियों के उत्तरदायी घटकों व कारकतत्वों की साफ पहचान कराती हैं, शिवमूर्ति की कहानियाँ।''[3] वास्तव में दुनिया की सारी श्रेष्ठ कहानियाँ इसी स्वानुभूति और सहानुभूति के लीलाजगत से निकल कर समाज में अपना स्थान ग्रहण करती हैं। डॉ. शंभुनाथ ने लिखा है ''कथा–वस्तुतः यथार्थपरक और यथार्थेत्तर के बीच एक आनंदमय खेल है, जो मानव सभ्यता की शुरुआत से जारी है।''[4] शिवमूर्ति ने अपने कथा–साहित्य में ग्रामीण समाज का प्रतिनिधित्व किया है। वास्तव में प्रेमचंद, रेणु, राही मासूम रज़ा और नागार्जुन के बाद भारतीय किसानों के अभिशप्त जीवन को चित्रित करने वाले कहानियों का भारतीय समाज और साहित्य में आगमन कम होता गया। आजादी के बाद नई कहानियों के कहानीकारों का आगमन होता है। ये सारे कहानीकार मध्यवर्गीय भारतीय समाज से आते हैं। इनके पिता सरकारी नौकरियाँ करते थे और शहरों में रहते थे। इसलिए ये सभी बचपन से ही शहरों में रहे। यहीं इनकी पढ़ाई– लिखाई हुई। इसलिए नई कहानियों में गाँव पीछे छूट गये थे।

शिवमूर्ति का जन्म होता है सन् 1950 ई. में एवं जब वे लिखना छपना शुरू करते हैं तो उनके गाँव का अनुभव अपने पूरे वैभव के साथ हमारे सामने खड़ा होता है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं ''निस्संदेह शिवमूर्ति गाँव की जिंदगी में इतने रचे बसे हैं कि उन्हें पढ़ते हुए रेणु और श्रीलाल शुक्ल की याद आती है। गाँव में किसान के साथ उनके पशु–पक्षी विशेषतः गाय–बैल जरूर आते हैं। रेणु, शेखर जोशी, विद्यासागर नौटियाल की कथाओं में इनकी जगह है।''[5] इससे स्पष्ट हो जाता है कि शिवमूर्ति ग्रामीण चेतना के महत्वपूर्ण कथाकार हैं। शिवमूर्ति जब तेरह साल के थे तभी से उन्होंने कहानी लिखनी शुरु कर दी थी। तेरह साल की उम्र ही क्या होती है? फिर भी शिवमूर्ति के शब्दों में ''मेरी उम्र तेरह साल की रही होगी। मैंने कक्षा सात पास की थी जब मैंने पहली कहानी लिखी थी।... उसकी एक चरित्र है मंगली। हमारे गाँव का एक लड़का था। जिसकी कहानी मैंने लिखी थी। कृषि की कॉपी पर जिसकी एक साइड कृषि–यंत्रों के चित्र बनाने के लिए प्लेन रहती थी। उसी भाग पर लिखी थी। पैन्सिल से। वही मेरा पहला प्रयास था''[6] लेकिन शिवमूर्ति इस कहानी को कभी प्रकाशित नहीं करते हैं। बस बताते हैं कि लिखी। यानी शिवमूर्ति के अंदर लेखक बनने का बीज तो बहुत कम उम्र में पड़ गया था। वह अंकुरित होता है और पाँच साल बाद। शिवमूर्ति की पहली कहानी 'मुझे जीना है' 'युवक' पत्रिका में सन् 1968 ई. में छपी। उस समय उनकी उम्र 18 वर्ष थी। यह कहानी शोषण के विरुद्ध प्रतिकार की कहानी है। लेकिन शिवमूर्ति इस प्रकार की कहानियों को अपनी कहानियों में नहीं गिनते हैं। जैसे सेना के जवान अपनी नौकरी के पाँच सालों की ट्रेनिंग को अपनी पोस्टिंग में नहीं गिनते। ठीक वैसे ही। फिर भी आधार का काम तो यह ट्रेनिंग ही करती है। शिवमूर्ति भले 'मुझे जीना है' को अपने कहानी संग्रह में शामिल न करें। लेकिन 'शोषण के प्रति आवाज उठाना' ही उनकी कहानियों के लिए आधार का काम करती है। शिवमूर्ति के मन में शोषण के प्रति वितृष्णा बचपन से थी जिसे उन्होंने अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया है। शिवमूर्ति ने वही लिखा जो उन्होंने जिया। उन्होंने कभी भी समाज सुधारक की भूमिका का पाखण्ड नहीं किया। वे हमेशा लेखकीय पाखण्ड से मुक्त रहे। उनकी कहानियों के पात्र पाठकों के साथ सहज ही जुड़ जाते हैं।

समकालीन लेखकों से अलग शिवमूर्ति के कथा साहित्य में 'कथा तत्व' की उपलब्धता पर्याप्त मात्रा में होती है। इनकी रोचकता और घटनाओं की बुनावट पाठक को कहानी से बाँधे रखती है। शिवमूर्ति के कथा लेखन में अधिकांशतः इनके भोगे यथार्थ के तत्व उपस्थित रहते हैं। वे अपने जीवन की या अपने आस–पास की घटनाओं को अपने साहित्य में इस तरह से उपयोग में लाते हैं कि वह मूलकथा का प्रासंगिक अंग बन जाता है। शिवमूर्ति के अधिकांश पात्र तो इनके आस–पास (जानने वाले) और 'अपने' ही होते हैं। एक लेख में इन्होंने लिखा है ''मुझे कलम पकड़ने के लिए बाध्य करने वाले मेरे पात्र होते हैं। उन्हीं का दबाव होता है जो अन्य कामों को रोककर कागज कलम की खोज शुरू होती है। ज़िन्दगी के सफर में अलग–अलग समय पर पात्रों से मुलाकात हुई, परिचय हुआ। इनकी जीवंतता, जीवटता, दुःख या इन पर हुए जुल्म ने इनसे निकटता पैदा की। ऐसे पात्रों की पूरी भीड़ है।... कितने–कितने लोग हैं। कुछ जीवित, कुछ मृत, कई चरित्रों के समुच्चय। सब एक–दूसरे को पीछे धकेलकर आगे आ जाना चाहते हैं।''[7]

वह चाहे 'कसाईबाड़ा' का अधरंगी या 'तिरिया चरित्तर' की विमली, 'केशर–कस्तूरी' की केशर, 'त्रिशूल' का पाले, 'तर्पण' के पियारे और राजपती, 'आखिरी छलांग' के पहलवान, ये सभी पात्र एवं इनसे जुड़ी कथाएँ लगभग सत्य रूप में वर्णित हैं। 1968 ई. से लेकर आज तक इनका लेखन कर्म जारी है। हिन्दी के आधुनिक कथाकारों में शिवमूर्ति की एक अलग पहचान है। इनकी रचनाओं में कथ्य और शिल्प का एक नया प्रयोग दिखाई देता है। शिवमूर्ति को साहित्य के प्रति लगाव उनके अपने परिवेश एवं परिवार से मिला है। शिवमूर्ति के लेखन में सबसे महत्वपूर्ण इनकी भाषा है। भाषा में भी गाँव की सरल– सहज, मुहावरों और बोल चाल की भाषा जो सहज ही सम्प्रेषणीय होती है। इन्होंने ग्रामीण भाषा एवं लोकोक्तियों का भी जमकर प्रयोग अपनी रचनाओं में किया, जिससे रचना में एक अलग तरह की शक्ति आ जाती है।

शिवमूर्ति के लेखन में सबसे ज्यादा योगदान उनकी पत्नी सरिता जी का है। सरिता जी ही उनकी कहानियों की पहली श्रोता भी होती हैं। शिवमूर्ति सरिता जी के बारे में कहते हैं ''सरिता जी तो हमारी 'पितु–मातु सहायक स्वामी सखा सब कुछ हैं। उनके ही टोकने–टाकने से मैं एक जमाने में बेरोजगार से बा–रोजगार हुआ था। उन्हीं के पीछे पड़ने से लेखक बना रह गया। वे लेखक के लिए जरुरी कच्चे माल–कथानक संवाद और गीत की सबसे बड़ी खान हैं,स्टोर हैं।...और वे मेरी रचनाओं की पहली श्रोता/पाठक भी होती हैं।''[8]

शिवमूर्ति के रचनात्मक विकास में इनके परिवेश और पत्नी का महत्वपूर्ण योगदान तो है परंतु साथ–साथ बचपन में देखे गए नाटक या नौंटकी के संवाद और उसकी कथा के रोमांच ने शिवमूर्ति को कहानी विधा की ओर आकृष्ट किया। शिवमूर्ति की कहानियाँ ज्यादातर ग्रामीण परिवेश की आर्थिक, सामाजिक स्थितियों को केन्द्र में रख कर लिखी गई हैं। इनके यहाँ भुखमरी, गरीबी, शोषण और व्यवस्था को लेकर प्रश्नों की झड़ी हैं। इनकी कहनियाँ व्यवस्था के वीभत्स रूप को उसके पूरे परिप्रेक्ष्य में दिखाती हैं। इनकी कहानियों के पात्र ज्यादातर शोषित और दलित एवं दमित दिखाई पड़ते हैं। खास कर गाँव, किसान एवं मजदूर के जीवन को उन्होंने दर्ज़ किया है। एक तरह से हम देख सकते हैं कि शिवमूर्ति की कहानी का जो कथानक है वह गाँव के समय और समाज का सच्चा और कच्चा चिट्ठा है। शिवमूर्ति के रचनात्मक व्यक्तित्व के विकास में स्वतंत्र्योत्तर काल के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का स्वर उजागर होता है। शिवमूर्ति ने अपनी रचनाओं में उस समय के समाज के यथार्थ को पकड़ा है तथा उसी को नायक की भूमिका में रखकर सृजनात्मक कर्म को आगे बढ़ाया। शिवमूर्ति की कहानियों में आर्थिक प्रश्न को ज्यादा उभारा गया है।

शिवमूर्ति की कहानियों में बदलते ग्रामीण परिवेश का यथार्थ चित्रण है। भारतीय समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं राजनीतिक शोषण के दृश्य आजादी के बाद बढ़ते गये हैं। शासन–प्रशासन तथा सरकारी कार्यों में राजनीतिक स्वार्थ का दायरा बढ़ता गया। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि स्वार्थी लोगों के लिए समाज व्यक्ति और राष्ट्र से कोई मतलब नहीं रहा व्यक्तिगत हितों के लिए वे मानवीय मूल्यों का शोषण करने लगे। इनके चारित्रिक पतन को शिवमूर्ति ने अपनी दृष्टि से देखा और लिखा। राजनीतिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार को जस का तस शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में उजागर किया है। 'कसाईबाड़ा' शिवमूर्ति की एक ऐसी कहानी है जिसमें राजनीतिक प्रशासन के भ्रष्ट स्वरूप को उकेरा गया है। शिवमूर्ति ने अपने जीवन में जो कुछ अनुभव किया उसका वर्णन उनकी कहानियों में दिखाई देता है। उन्होंने भोगे हुए यथार्थ को अपनी रचनात्मकता के माध्यम से व्यक्त किया। या यूँ कहें कि शिवमूर्ति ने व्यक्तिगत जीवन की छोटी–छोटी घटनाओं का सृजनात्मक रूप में चित्रण बड़ी सजीवता के साथ किया है। शिवमूर्ति की कहानियों की पृष्ठभूमि में उत्तर भारत का समाज है। उसमें भी पूर्वी हिस्सों पर वे ज्यादा केन्द्रित हैं। शिवमूर्ति सृजनात्मक लेखन के क्षेत्र में एक पैनी दृष्टि लेकर आते हैं और कहानी को बराबर सत्य की मानवीय विचारधारा के साथ जोड़ने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इनकी कहानियों में सामाजिकता का पहलू तो हमेशा से था लेकिन शुरूआती दिनों में उनकी रचनात्मक दृष्टि उतनी साफ नहीं थी जो कि बाद की कहानियों में दिखाई देती है।

शिवमूर्ति के रचनात्मक व्यक्तित्व पर प्रेमचंद और रेणु के प्रभाव हैं। ये रेणु की भाषा–शैली से काफी प्रभावित हैं। इसलिए इनकी रचनाओं पर रेणु की भाषा–शैली की छाप दिखाई पड़ती है। उनकी कहानियों में हमें मानव जीवन के विविध पक्षों के चित्रण जिंदादिली के साथ मिलते हैं। वे

रचना को सही ढंग से प्रस्तुत करने की पूरी कोशिश करते हैं। शिवमूर्ति अपनी रचनाओं की सृजनात्मकता के लिए खाद–पानी अपने पास के जीवन से ही ग्रहण करते हैं। शिवमूर्ति कहते हैं ''मेरा नजरिया किसी पूर्वनिर्धारित सोच या विचारधारा से नियंत्रित नहीं होता। जीवन को उसकी सघनता और निश्छलता में जीते हुए ही मेरे रचनात्मक सरोकार आकार ग्रहण करते हैं। पहले का यथार्थ यह था कि 'कसाईबाड़ा' की हरिजन स्त्री सनीचरी धोखे–जबरदस्ती से मार दी जाती थी...उसकी खेती–बारी हड़प ली जाती थी। आज का यथार्थ 'तर्पण' में है। सनीचरी जैसे चरित्रों की अगली पीढ़ी रजपतिया के साथ जबरदस्ती का प्रयास होता है तो गाँव के सारे दलित इकट्ठा हो जाते हैं। सिर्फ इकट्ठा नहीं बल्कि उस लड़ाई में वे हर संकट का सामना करते हैं। वे लड़ाई जीतने के लिए हर चीज का सहारा लेते हैं। उसमें उचित या अनुचित का सवाल भी इतना प्रासंगिक नहीं लगता। उनके लिए हर वह सहारा उचित है जो उनके संघर्ष को धार दे सके। पहले थोड़ा अमूर्तन भी था। अब टोले का विभाजन दो प्रतिद्वन्द्वियों के रूप में सामने खड़ा है। जातियों के समीकरण पहली कतार में आ गये हैं। 1980 ई. से 2000 ई.तक जो परिर्वतन आया वह साफ मेरी रचनाओं में दिखता है।...दुःखी–दलित लोग संगठन बना रहे हैं एका बनाकर सामने आ रहे हैं।''[9] इससे स्पष्ट होता है कि शिवमूर्ति अपने समय और समाज को उसकी पूरी वास्तविकता के साथ पकड़ते हैं, क्योंकि कोई भी रचना समय सापेक्ष होती है, उससे इतर नहीं।

शिवमूर्ति की कहानियों के केन्द्र में मुख्य पात्र स्त्री हैं। वह स्त्री चाहे दलित हो या सवर्ण। उनका कहना है कि दलित स्त्री तो प्रताड़ित है ही, जो गैर दलित हैं वे भी प्रताड़ित हैं। शिवमूर्ति यथार्थवादी कथाकार हैं। लेकिन उनका यथार्थ एक आयामी यथार्थ नहीं है। उनका यथार्थ बहुत गुम्फित होता है। याद आते हैं मुक्तिबोध ''यथार्थ के तत्व परस्पर गुम्फित होते हैं, साथ ही पूरा यथार्थ गतिशील होता है। अभिव्यक्ति के विषय बन कर जो यथार्थ प्रस्तुत होता है वह भी ऐसा ही गतिशील है, और उसके तत्व भी परस्पर गुम्फित हैं। यही कारण है कि मैं छोटी कहानियाँ लिख नहीं पाता और जो छोटी होती हैं वे वस्तुतः छोटी न होकर अधूरी होती हैं।''[10] इसलिए जैसे मुक्तिबोध की कविताएँ लम्बी होती जाती हैं, वैसे ही शिवमूर्ति की कहानियाँ। शिवमूर्ति की लगभग सारी कहानियाँ औपन्यासिक विन्यास लिए हुए हैं। 'लार्जर दैन लाइफ' की कहानियाँ हैं, शिवमूर्ति के यहाँ। इसलिए जैसे 'रीयल लाईफ' (सचमुच के जीवन) में आप पचासों लोगों से एक दिन में मिलते हैं और सैकड़ों लोगों को देखते हैं, ठीक वैसे ही शिवमूर्ति के यहाँ यथार्थ चित्रित हो जाता है। कंवल भारती लिखते हैं ''शिवमूर्ति आदर्शवादी नहीं हैं....वह यथार्थवादी हैं। यथार्थ कितना भी वीभत्स हो, वह उसे वैसे ही चित्रित करने में विश्वास करते हैं। इसलिए उनकी कहानियाँ गाँवों के यथार्थ की एक बेहतरीन फोटोग्राफी हैं।''[11] अपनी पूरी अंतर्वस्तु और कथातत्व के साथ । साथ ही साथ यथार्थ का एक भी ऐसा कोना नहीं छोड़ते कि जिससे किसी को कुछ मौका मिले। गाँव के वर्णन, भाषा–बोली, राजनीति के साथ–साथ लोकगीतों की ऐसी सुंदर और मनमोहक छवि प्रस्तुत करते हैं कि बरबस ही 'वाह' और फिर उस गीत के दर्द समझते हुए 'आह' निकल पड़ते हैं।

निष्कर्षतः शिवमूर्ति हमारे समय के प्रेमचंद की परंपरा के एक महत्वपूर्ण कथाकार हैं। शिवमूर्ति का जन्म एक गरीब ग्रामीण परिवार में हुआ था। इसलिए ग्रामीण समाज से उनकी कहानियाँ नाभिनालबद्ध हैं। साथ ही साथ गाँव की गरीबी और उसकी समस्याएँ उनके कथासंसार में प्रमुखता से स्थान पाती हैं। शिवमूर्ति का जीवन बचपन से ही बहुत संघर्षपूर्ण बीता। इसलिए संघर्ष उनकी कहानियों का बीज तत्व है। उन्होंने कुछ कहानियाँ और कुछ उपन्यास लिखकर हिन्दी कथासाहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया, बिल्कुल महान कहानीकार 'चन्द्रधर शर्मा गुलेरी' की तरह। गुलेरी जी तीन कहानियाँ ही लिखकर हिन्दी कथासाहित्य में अमर हो गये, उसी तरह शिवमूर्ति का रचना संसार भी है, कम लेकिन महत्वपूर्ण। शिवमूर्ति का पूरा साहित्य ग्रामीण समाज पर आधारित है। शिवमूर्ति एकमात्र ऐसे हिन्दी कहानीकार हैं जो ग्रामीण जीवन के अलावा और किसी जीवन या समाज के बारे में कुछ लिख ही नहीं पाये हैं।

गाँव से निकलने के बाद शिवमूर्ति ने स्कूल मास्टरी, रेलवे की नौकरी और लखनऊ में अफसर की नौकरी की। इतनी सारी नौकरियों और इनसे प्राप्त अनुभवों को आत्मसात् करने के बावजूद भी शिवमूर्ति सिर्फ और सिर्फ अभी तक गाँव की ही कहानियों को लिपिबद्ध करते आ रहे हैं। इससे शिवमूर्ति की प्रतिबद्धता का हमें पता चलता है।

शिवमूर्ति यदि चाहते तो अपनी नौकरी के अनुभवों को भी कथासाहित्य में पिरो सकते थे। शिवमूर्ति ने ऐसा कुछ भी नहीं किया। शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों में गाँव की आप–बीती को बहुत ही कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है। एक साक्षात्कार में शिवमूर्ति की आत्मस्वीकृति है कि ग्रामीण जीवन की ही इतनी अलिखित कहानियाँ हैं कि मुझे लगता है कि एक जीवन इसके लिए नाकाफी है। कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति हिन्दी कथा–साहित्य के श्रेष्ठ ग्रामीण कथाकार हैं। शिवमूर्ति की कहानियों को पढ़ने का मतलब है कि उत्तर भारत की जनता के जीवन को पढ़ना।

सन्दर्भ –

1. संपादक मयंक खरे,अतिथि संपादक संजीव, मंच, जनवरी–मार्च, 2011 पृष्ठ सं–32
2. वही, पृष्ठ सं–166
3. वही, पृष्ठ सं–58
4. डॉ. शम्भुनाथ, संस्कृति की उत्तरकथा, वाणी प्रकाशन, सं–2000, पृष्ठ सं–46
5. संपादक मयंक खरे, अतिथि संपादक संजीव, मंच, जनवरी–मार्च, 2011 पृष्ठ सं–35
6. प्रधान सं– विजय राय, अतिथि संपादक सुशील सिद्धार्थ, लमही, अक्टूबर–दिसम्बर,2012, पृष्ठ सं–10
7. संपादक मयंक खरे, अतिथि संपादक संजीव, मंच, जनवरी–मार्च, 2011 पृष्ठ सं–164
8. संपादक, रवीन्द्र कालिया, नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008, पृष्ठ सं–109
9. शिवमूर्ति, मेरे साक्षात्कार, पहला संस्करण 2014, पृष्ठ सं–120–121
10. मुक्तिबोध : एक साहित्यि की डायरी, पृष्ठ सं–29–30
11. संपादक मयंक खरे, अतिथि संपादक संजीव, मंच, जनवरी–मार्च, 2011 पृष्ठ सं–203

■ ■ ■

माधवी : मानवाधिकारों की तलाश

डॉ0 शिखा त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
महिला शिल्प कला भवन महाविद्यालय
बी0आर0ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

शोध सारांश

माधवी अपने कर्तव्य का निर्वहन करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करती है। माधवी नाटक को मानवाधिकार की तलाश के रूप देखना चाहिए। किस प्रकार भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में माधवी को उसके अधिकारों से वंचित रखा गया, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण माधवी नाटक में दिखाई देता है। माधवी का कंटेंट इतना सीधा नहीं कि उसे स्त्री के शोषण की कथा कहकर विराम लिया जाये। माधवी तत्कालीन समय में प्रचलित स्त्रियों के जीवन की तथाकथित 'कंडिशनिंग' को तोड़ते हुए आगे बढ़ती है। समाज में स्त्री को मनुष्य के रूप में देखने तथा उसके अधिकारों के प्रति जागरूक एवं सजग होने का संकेत देती है।

सूचक शब्द : निर्वहन, मानवाधिकार, कन्टेन्ट, कन्डिशनिंग

साहित्य में समाज का प्रतिबिंब दिखाई देता है। समाज का निर्माण व्यक्ति के अस्तित्व से होता है। मनुष्य समाज की एक ऐसी ईकाई है जो सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आदि अधिकारों को विकसित कर दृढ़ समाज की नींव रखता है। समाज की इस निर्मिति में स्त्री एवं पुरुष दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज की अवधारणा अत्यंत व्यापक है। समाज की एक मजबूत कड़ी है साहित्यकार। साहित्यकार समाज में रहते हुए जो अनुभव करता है वही अनुभूति उसके साहित्य में अभिव्यक्त होती है। इस संदर्भ में डॉ0 नगेन्द्र लिखते हैं–

''इस सिद्धांत का जन्म 18वीं और 19वीं शती के प्रचार–प्रसार के साथ हुआ। बाद में इस सिद्धांत ने साहित्य की समाजशास्त्रीय संकल्पना में विशेष भूमिका अदा की। इस सिद्धांतानुसार – ''प्रत्येक व्यक्ति साहित्य परिचयता, समाज में रहकर जो उसी को शब्दबद्ध कर समाज के सम्मुख रखता है उसकी रचना के चारों ओर के वातावरण का प्रत्यांकन अनजाने में हो जाता है।''[1]

अतः समाज के समीकरण को, घटित हो रही घटनाओं को साहित्यकार अपनी रचना के माध्यम से उद्घाटित करता है। अब बात समाज की हो रही है तो समाज का एक महत्वपूर्ण पक्ष है, जो व्यक्ति को उसके अधिकारों के प्रति सचेत करता है। जिसे मानवाधिकार के रूप में जाना जाता है। सन् 1984 में भीष्म साहनी द्वारा लिखा गया नाटक 'माधवी' मानवाधिकारों का अन्वेषण करता हुआ दिखाई देता है, जो समाज के समक्ष अपनी अस्मिता को लेकर प्रश्न खड़ा करती है। समाज की संरचना का केन्द्र मानवाधिकार रहा है। मानवाधिकारों की स्थापना के लिए विभिन्न नीतियों का निर्माण किया गया। इतिहास साक्षी है कि व्यक्ति ने इन्हीं अधिकारों के लिए अनेक कुर्बानियाँ दी है। मानवाधिकार को परिभाषित करते हुए डॉ0 पंकज गुप्ता लिखते हैंः–

''मानव अधिकारों का प्रत्यक्ष संबंध मानव के आत्मसम्मान, गरिमापूर्ण जीवन एवं स्वतंत्रता से है।''[2]

सन् 1984 में लिखा गया था माधवी और अपने एक साक्षात्कार में भीष्म साहनी ने स्वीकारा है कि इसे लिखते हुए कोई फेमिनिस्ट विचार उनके मन में नहीं रहा। लेकिन सत्य का शोध लेखक अक्सर लिखने की प्रक्रिया में ही करता है। माधवी का कथानक महाभारत पर आधारित है। माधवी की आवाज को प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से नाटक में दबाया जाता है। माधवी का कथानक भले ही महाभारत से लिया हो, परन्तु आज भी वह प्रासंगिक बना हुआ है। माधवी ययाति की पुत्री है। ययाति दानवीर है। ऋषि विश्वामित्र का शिष्य गालव अपनी शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात गुरु दक्षिणा देने की हठ करता है। ऋषि विश्वामित्र उसके हठी स्वभाव के कारण उससे आठ सौ अश्वमेघ घोड़े को गुरु दक्षिणा के रूप में माँगते हैं। उन्हीं अश्वमेघ घोड़ों की तलाश करते हुए गालव ययाति के आश्रम में पहुँच जाता है और राजपाट से निवृत्त राजा ययाति के समक्ष अपनी प्रतिज्ञा निवेदित करता

है। गालव की प्रतिज्ञा सुनकर ययाति असमंजस में पड़ जाते हैं। अपने अहंकार को बनाए रखने के लिए वे दैवी गुणों से युक्त अपनी एकमात्र कन्या माधवी को यह कहकर उसे दान में देते हैं कि वे किसी भी राजा के पास आठ सौ अश्वमेघी घोड़े मिलें, उनके बदले में वह माधवी को राजा के पास छोड़ दो। माधवी के विषय में विद्वानों ने ऐसी भविष्यवाणी की है कि उसके गर्भ से उत्पन्न बालक चक्रवर्ती राजा बनेगा और अनुष्ठान के पश्चात् माधवी चिर कौमार्य को पुनः प्राप्त कर लेगी। यहीं से माधवी की कथा प्रारंभ होती है और माधवी के जीवन में चुनौतियों का शंखनाद होता है।

माधवी अपने पिता ययाति के इस निर्णय से अचंभित हो जाती है और ययाति से अपने जीवन के विषय में प्रश्न करती है एवं पूछती है–

माधवी – ''आज माँ होती तो क्या वे भी मुझे इस तरह दान में दे देतीं!'' [3]

माधवी का यह कथन पितृसत्तात्मक परंपरा पर चोट करता है। माधवी का यह प्रश्न इस बात का समर्थन करता है कि पुरुषों ने प्रत्येक देश काल में अपने निर्णय एवं अस्तित्व को स्त्रियों से श्रेष्ठ समझा है। अपने भावी जीवन से सशंकित, माधवी की इच्छा न होते हुए भी अपने कर्तव्य के निर्वहन हेतु गालव के साथ चली जाती है।

माधवी, गालव के लिए एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना चाहता है। उसकी लक्ष्य पूर्ति के लिए माधवी सिर्फ निमित्त मात्र है। माधवी को गालव से प्रेम हो जाता है अतः वह स्वयं को गालव को समर्पित कर देती है। इसीलिए गालव की हठी प्रतिज्ञा को, उसके तथाकथित अहंकार को बनाए रखने के लिए अपने स्त्रीत्व की भी बलि दे देती है। परंतु गालव उसके प्रेम एवं समर्पण को नहीं समझता। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए माधवी को तीन राजाओं के निवास में छोड़ देता है। माधवी उसको इस बात का विश्वास दिलाती है कि उसकी प्रतिज्ञा पूरी होगी और उसका आत्मसम्मान बना रहेगा।

गालव – ''इस गुरु दक्षिणा ने मुझे मझधार में झोंक दिया है।''

माधवी – ''मझधार में क्यों, गालव तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करोगे। तुम्हारे लक्ष्य की सिद्धि होगी।''[4]

इस प्रकार माधवी गालव का मनोरथ सिद्ध करने के लिए उसके साथ चली जाती है। एक स्त्री की प्रतिबद्धता ये महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।

अयोध्या में राजा हर्यश्च के दरबार में माधवी के वस्त्रों को देखकर उसके अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाया जाता है। अपने दैवीय गुणों से युक्त अस्तित्व की प्रमाणिकता को सिद्ध करने के लिए उसे अग्नि परीक्षा से होकर गुजरना पड़ता है। राजदरबार में राजज्योतिषी द्वारा अपने चरित्र एवं शरीर का इस प्रकार से निरीक्षण होते देख उसका मन चीत्कार उठता है। वह गालव से कहती है–

माधवी – ''यह क्या हो रहा है गालव?तुम मुझे कहाँ ले लाये हो?मेरे साथ किस जन्म का बैर चुकाने आए हो?मैंने कौन सा ऐसा पाप किया था जिसका यह फल आज मुझे मिल रहा है?''[5]

माधवी का मन पीड़ा एवं असंतोष से छटपटाता है। अपने इस अपमान को भी वह कष्ट के साथ स्वीकार कर लेती है। किसी भी स्त्री के लिए उसका चरित्र ही उसका आभूषण होता है। जब–जब समाज के समक्ष किसी भी स्त्री की चरित्र की प्रमाणिकता को सिद्ध करने की बात उठती है, तब–तब उस असफल समाज का रूप उद्घाटित है, जिसमें स्त्री और पुरुष के समान अधिकार और समभाव की बात कही जाती है।

इस प्रकार अग्नि परीक्षा देने के उपरांत, एक वर्ष तक राजा हर्यश्च के निवास में रहने के पश्चात् उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है। माधवी पहली बार माँ बनती है। एक स्त्री के लिए माँ बनना बहुत सौभाग्य की बात होती है। परंतु नियति को कुछ और ही मंजूर था। माधवी अपने कर्तव्य के समक्ष अपने मातृत्व का भी बलिदान दे देती है। उसका मन इतनी टीस से भरा हुआ है कि चाहकर भी वह अपने पुत्र को नहीं अपना सकती। अपने पिता एवं गालव के प्रति कर्तव्य का निर्वहन करते हुए भी माधवी को यह अपराध बोध कराया जाता है कि स्त्रियाँ किसी भी बड़े काम की जिम्मेदारी नहीं ले सकतीं।

गालव – ''मैं नहीं जानता था कि संतान पैदा हो जाने पर तुम इतना दुर्बल हो जाओगी। इसीलिए शायद स्त्रियाँ जोखिम के काम नहीं कर सकतीं, किसी बड़े काम

का दायित्व वहन नहीं कर सकतीं।''[6]

किसी स्त्री के इतने कठोर त्याग के बावजूद उसे इस तरह की संज्ञा से अभिहित करना अपेक्षाओं की परकाष्ठा है। इस प्रकार इतनी अपेक्षाओं को ढोती हुई माधवी राजा हर्यश्च के निवास से होते हुए क्रमशः काशी नरेश महाराज दिवोदास एवं भोजनगर के वृद्ध राजा उशीनर के निवास में पहुँचती है। इन दोनों राजाओं को माधवी से पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है। और गालव को दो सौ अश्वमेघ घोड़ों की प्राप्ति होती है। इन तीनों राजाओं से प्राप्त कुल घोड़ों की संख्या 600 होती है और गालव की अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए शेष 200 और घोडों की आवश्यकता थी और जैसा कि नाटक में वर्णित है कि वितस्ता नदी में बाढ़ की वजह से सैकड़ों अश्वमेघी घोड़े बह गए और गालव इस बात से बहुत व्यथित हैं। उसे चिंता है कि उसकी प्रतिज्ञा पूरी कैसे होगी? साथ ही माधवी उसे बिना बताए राजा उशीनर के राजमहल से चली जाती है।

और अंततः माधवी वहाँ पहुँच जाती है जहाँ से इसकी पटकथा लिखी गई थी अर्थात् गालव के गुरु ऋषि विश्वामित्र के आश्रम में। ऋषि विश्वामित्र से माधवी निवेदन करती है कि गालव की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए वह माधवी को स्वीकार कर ले और शेष बचे घोड़े जो उनके पास बचें उसे गालव की गुरु दक्षिणा के रूप में ग्रहण करें। माधवी की ये बात सुनकर विश्वामित्र स्तम्भित हो जाते हैं और उससे प्रश्न करते हैं–

विश्वामित्र – ''तुम ऐसा क्यों कर रही हो?''

माधवी – ''गालव ने गुरु–दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा की है, उसकी प्रतिज्ञा मेरी प्रतिज्ञा है, महाराज।''[7]

माधवी के इन वचनों को सुनकर विश्वामित्र उसे स्वीकार कर लेते हैं और गालव की प्रतिज्ञा पूरी होती है।

माधवी के प्रेम की पराकाष्ठा देखकर विश्वामित्र माधवी के समक्ष नतमस्तक हो जाते हैं और कहते हैं–

विश्वमात्रि – ''मैंने गुरु दक्षिणा पा ली, माधवी! मैं गालव का दंभ तोड़ना चाहता था, तुमने मेरा दंभ तोड़ दिया।''[8]

इस प्रकार गालव की प्रतिज्ञा पूर्ण होती है और ययाति अपनी पुत्री के स्वयंवर का आयोजन करते हैं। इस आयोजन में सिर्फ गालव, ययाति एवं विश्वामित्र ये तीनों चर्चा का विषय बने हुए थे। इनका यशोगान हो रहा था परन्तु सबके बीच जो कुछ बहुत महत्वपूर्ण पीछे छूट गया था, वह स्वयं माधवी का अस्तित्व था। गालव स्वयंवर से पहले माधवी से मिलने मंडप में जाता है। माधवी को देखकर वह उसे पहचान नहीं पाता। माधवी अधेड़ उम्र की अनाकर्षक स्त्री लग रही थी। उसके इस आकर्षक विहीन चेहरे को देखकर गालव व्यथित हो जाता है। यहीं पर माधव, गालव के चरित्र की वास्तविकता से परिचित होती है। जब माधवी उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखती है तो गालव असमंजस में पड़ जाता है और माधवी से कहता है, ''मैं चाहता हूँ, तुम अपने आपको स्वतंत्र समझो।''[9]

तब माधवी यह समझ जाती है कि गालव को उसके शारीरिक सौंदर्य से प्रेम था और वह टूट जाती है। वह गालव से कहती है कि ''यह रूप तुम्हें स्वयंवर के लिए उचित नहीं लग रहा। ... मैं अनुष्ठान नहीं करना चाहती। जैसी हूँ, वैसी ही रहना चाहती हूँ।'' इस प्रकार पहली बार माधवी ने अपने वास्तविक रूप को अपने अस्तित्व को सभी भावनाओं से ऊपर रखने का साहस दिखाया।

इसके पश्चात माधवी मानवाधिकार के महत्वपूर्ण पक्षों में से एक 'स्वतंत्रता' पर गालव से संवाद करती है। गालव का माधवी से विवाह प्रस्ताव पर उपेक्षित व्यवहार देखकर वो गालव से कहती है–

''प्रतिज्ञा सम्पन्न हुई गालव, अब हम दोनों स्वतंत्र हैं। ... क्यों गालव, स्वतंत्र होना तुम्हें कैसा लग रहा है?" यहीं से माधवी अपने आप को गालव से तथाकथित कर्तव्यों से मुक्त करने का संकेत देती है। आत्मसम्मान की रक्षा, मानवाधिकार के अंतर्गत एक विशेष पहलू है। माधवी ने अंत तक आते–आते सभी बातों को पीछे छोड़ते हुए, अपने आत्मसम्मान को वरीयता दी। उसने त्याग, समर्पण, ममता, प्रेम आदि भावों की कुर्बानी दी, उसका कोई मूल्य नहीं। वह क्षुब्ध होकर कहती है कि –

''कभी–कभी मुझे लगता है कि मैं कोई दुःस्वप्न देख रही हूँ और मेरे चारों ओर राक्षस और दानव घूम रहे हैं .. कर्तव्यपरायण दानव। .... तुमने मेरे यौवन की आहुति देकर

ISSN : 0975-5403

अपनी गुरु दक्षिणा जुटाई है।''[11]

गालव की प्रतिज्ञा को फलित करने के लिए माधवी ने अपना आत्मसम्मान, चरित्र, ममता, मर्यादा, यौवन आदि सब कुछ न्यौछावर कर दिया। फिर भी गालव ने उसके हिस्से का सम्मान भी नहीं दिया। अतः उन सभी घटनाओं से आहत माधवी अपने भावी जीवन का निर्णय स्वयं लेने का निश्चय करती है। ये ठीक है कि स्त्रियों को ईमानदारी पूर्वक अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए। परंतु एक कर्तव्य उसका स्वयं के प्रति भी है, अपने अस्तित्व और स्वाभिमान को बनाए रखने का। अंततः माधवी गालव से कहती है–

''तुमने अपना कर्तव्य पूरा किया, अब मुझे मेरा कर्तव्य पूरा करने दो। संसार बड़ा विशाल है, गालव! उसमें निश्चय ही मेरे लिए कोई स्थान होगा।''[12]

अतः माधवी आश्रम छोड़कर चली जाती है।

इस प्रकार माधवी अपने कर्तव्य का निर्वहन करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करती है। माधवी नाटक को मानवाधिकार की तलाश के रूप देखना चाहिए। किस प्रकार भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में माधवी को उसके अधिकारों से वंचित रखा गया, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण माधवी नाटक में दिखाई देता है। माधवी का कंटेंट इतना सीधा नहीं कि उसे स्त्री के शोषण की कथा कहकर विराम लिया जाये। माधवी तत्कालीन समय में प्रचलित स्त्रियों के जीवन की तथाकथित 'कंडिशनिंग' को तोड़ते हुए आगे बढ़ती है। समाज में स्त्री को मनुष्य के रूप में देखने तथा उसके अधिकारों के प्रति जागरूक एवं सजग होने का संकेत देती है।

संदर्भ –

1. डॉ0 नगेन्द्र, साहित्य का समाजशास्त्र, पृ0 12
2. डॉ0 पंकज, मानवाधिकार एवं महिलायें, साहित्यागार, संस्करण 2014
3. भीष्म साहनी, माधवी, पृ0 12 राजकमल प्रकाशन दिल्ली, ग्यारहवाँ संस्करण 2016,
4. वही, पृ0 33
5. वही, पृ0 38
6. वही, पृ0 65
7. वही, पृ0 99
8. वही, पृ0 100
9. वही, पृ0 114
10. वही, पृ0 113
11. वही, पृ0 116
12. वही, पृ0 119

■ ■ ■

संत कवि दरियाव के काव्य में नारी चेतना

डॉ. शमा खान,
आचार्य एवं शोध निर्देशिका, हिंदी विभाग
राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर (राज.)

श्यामा राम
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, इटावा (कोटा)
महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियः।।"[1]

ये पंक्तियाँ बचपन से ही सुनते आ रहे है कि जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते है तथा जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती है, वहाँ किये गये समस्त अच्छे काम निष्फल हो जाते है। सृष्टि के विकास में नारी का अहम योगदान माना जाता है। त्याग एवं ममता की दृष्टि से नारी पुरुष से कहीं बेहतर है। हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल कहे जाने वाले भक्तिकाल के संत कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण असंतुलित एवं नकारात्मक रहा है। इन्होंने नारी के दो रूप माने है– 1 कामिनी रूप, 2 भामिनी रूप। संत कवियों ने नारी के भागिनी रूप की प्रशंसा की तथा कामिनी रूप की निंदा की। भक्तिकाल के बाद रीतिकाल के कवियों को तो नारी सौंदर्य के आगे कुछ दिखता ही नहीं था।

"आगे के कवि रीझिहैं, तो कबिताई न तौ।
राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानौ है।।"[2]

रीतिकालिन कवियों की लेखनी सदा नारी के नख–शिख सौंदर्य में रमी रहती थी। वे नारी को तुच्छ एवं विलास की वस्तु मानते थे।

रीतिकालीन समय सीमा के अन्तर्गत राजस्थान में रामस्नेही सम्प्रदाय का उद्भव माना जाता है। रामस्नेही सम्प्रदाय निर्गुण संत काव्य धारा की ही एक शाखा है। रामस्नेही सम्प्रदाय के आदि आचार्य संत कवि दरियाव जी का नारी विषयक दृष्टिकोण सकारात्मक माना जाता है। संत कवि दरियाव जी का जीवनकाल 1676 ई. से 1758 ई. माना जाता है। इस समय सीमा के तहत भारत में मुगलों का आततायी शासन था। जिसका वर्णन भूषण ने अपनी रचना में किया है –

"देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे समै राव–रानै सबै गये लबकी।
गौरा गनपति आप औरंग की देखि ताप,
अपने मुकाम सब मारि गये दबकी।।"[3]

ऐसे संक्रमण काल में दरियाव जी ने अपनी वाणी में नारी के प्रति क्रांतिकारी एवं प्रगतिशील विचार व्यक्त किये। उन्होंने अपनी वाणी में नर व नारी के प्रति समदर्शी दृष्टिकोण अपनाते हुए फरमाया है –

"नारी पुर्ख जो एक मत होई।
जुग–जुग राज करेगा सोई।।"[4]

कबीरदास जी को उनके कुछ दोहों के कारण नारी निंदक कहा जाता है। क्योंकि उनके अनुसार नारी का संसर्ग मनुष्य को भक्ति, मुक्ति एंव आत्मज्ञान इन तीन सुखों से दूर कर देता है –

"नारि नसावै तीनि सुख, जा नर पासै होई।
भगति, मुकति, जिन ग्यान मैं, पैसि न सकई कोइ।।"[5]

उन्होंने नारी के संसर्ग में रहने से इन तीन सुखों की प्राप्ति असंभव मानी है। लेकिन दरियाव जी नारी को साधना में बाधक न मानकर भक्ति के द्वार नर व नारी के लिये समान रूप से खोलते हुए अपनी वाणी में फरमाते है –

"कहे दरिया चित चेतिये, सतगुरु कहा विचारि।
शीतल चरण सरोज रज, भक्ति करहिं नर नारि।।"[6]

दादूदयाल जी जैसे संत ने भी अपनी वाणी में नारी की निंदा करते हुए उसे सर्पिणी की उपमा दी है तथा उसे देखने, उसका नाम लेने एवं उसे सुनने मात्र से भी मना करते हुए कहा है –

"नारी नागिणि जे डसे, ते नर मुये निदान।
दादू को जीवे नहीं, पूछो सबै सयान।।
नारी नैन न देखिये, मुख सौ नाम न लेय।

कानों कामिणि जनि सुणे, यछु मन जाण न देय।।"[7]

कबीरदास जी जैसे साधक ने नारी को नरक का द्वार मानते हुए कहा है –

"नारी कुंड नरक का, बिरला थंमै बाग।

कोई साधु जन ऊबरै, सब जग मूंवा लाग।।"[8]

लेकिन दरियाव जी ने नारी को जगत् की जननी माना है, जो अपनी संतान का पालन–पोषण करके उन्हें बड़ा करती है। दरियाव जी के अनुसार वही मूर्ख संतान जब ईश्वर का नाम भूलने का दोष नारी पर लगाते है, तो ऐसे लोगों को धिक्कारते हुए दरियाव जी फरमाते है –

"नारी जननी जगत की, पाल पोस दे पोल।

मूरख राम बिसार कर, ताहि लगावै दोष।।"[9]

तुलसीदास जैसे भक्त कवि के काव्य में "ढोल, ग्वार, सूद्र, पसु नारी" जैसी कुछ पंक्तियाँ आती है, जिनमें वे नारी को गंवार व पशुवत् मानकर नारी निंदक की उपाधि प्राप्त की है, वही दरियाव जी ने पुरुष व नारी को एक–दूसरे का पूरक माना है। पुरुष को उन्होंने ज्ञान व नारी को भक्ति मानते हुए फरमाया है –

"पुरुष ज्ञान, भक्ति है नारी,

ज्ञान भक्ति बीच नहीं डारी।।

पहिले भक्ति तब होखे ज्ञाना।

पहिले सत तब पुरुष अमाना।।"[10]

उन्होंने नारी को पुरुष से पहले स्थान पर रखकर उसके महत्त्व को माना है। दरियाव जी ने अपनी वाणी में सभी प्रकार के भेदभावों के साथ ही लिंग भेद का पूर्ण रूप से खंडन किया है। सुधा निकेतन रजनी के शब्दों में "हिन्दी साहित्य में मुख्य धारा के कवियों से हटकर हम देखें, तो दरिया साहब (मारवाड़ वाले) सरीखे कुछ संत कवि हमें ऐसे मिलते है जो न केवल जाति और धर्मों के आधार पर होने वाले भेदभाव के खिलाफ है, बल्कि लिंग भेद के आधार पर भी होने वाले भेदभाव के खिलाफ खड़े दिखाई देते है।"[11] दरियाव जी ने अपनी वाणी में स्त्री–पुरुषों से संबंधित सभी प्रकार के लैंगिक भेदभाव समाप्त करने पर बल दिया है। दरियाव जी के समय में रीतिकालीन परिवेश में जहाँ स्त्री को तुच्छ, हीन एवं मात्र भोग विलास की वस्तु समझा जाता था। उस समय में दरियाव जी ने पराई स्त्री को माँ, बहन एवं बेटी के समान समझते हुए कहा है –

"नारी आवै प्रीतिकर, सतगुरु परसे आण।

जन दरिया उपदेस दै, माँय, बहन धी जाण।।"[12]

मध्यकालीन संतों ने तो अपनी शिष्य–मंडली में स्त्रियों को तो जगह तक नहीं देते थे। उनकी मान्यता थी कि स्त्री जब पुरुषों के साथ रहकर भजन–कीर्तन करेगी तो पुरुष शिष्यों पर उसका नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। इसलिए उस समय के अधिकतर संत स्त्रियों को शिष्या बनाने में कतराते थे। लेकिन दरियाव जी का शिष्यत्व प्रदान करने में अलग ही दृष्टिकोण था। वैसे तो उनके बहुत सारे शिष्य थे। रामस्नेही अनुभव आलोककार के अनुसार "श्रीमद् रामस्नेही सम्प्रदायाचार्य चरण जी दरियावजी महाराज के अनेक शिष्यों में बहत्तर (72) शिष्य एवं नौ शिष्याएं थी। इन नौ शिष्याओं में बाला, चेंना, लछा, जामा, जमुना, किस्तूरा, माना, मकतुल्ला तथा धन्नाबाई का नाम उनकी अनुभवगिरा में वर्णित है –

"बाला, चेना, लछा, जामा,

जमुना, किस्तुरा, माना।

मकतुल्ला, धन्नाबाई,

सेवत कदम है।

बहत्तर गुरु भाई,

संग जाके नव बाई।

छई रामसभा मांहि,

खुलै ज्यूँ पदम है।।"[14]

दरियाव जी की रामसभा शिष्य एवं शिष्याओं से मिलकर बनी हुई थी। दरियाव जी का नारी विषयक जो सकारात्मक दृष्टिकोण था, उसे उनके शिष्यों एवं प्रशिष्यों ने भी अपनाकर अपनी शिष्य मंडली में स्त्रियों को स्थान दिया। दरियाव जी के टेमदास जी नामक शिष्य हुए। उनकी शिष्य मंडली में अंभाबाई नाम की एक प्रसिद्ध संत कवयित्री थी। अंभाबाई ने अतः साक्ष्य के रूप में अपनी वाणी में अपने गुरु एवं अपने दादा गुरु का वर्णन किया –

"जन दरिया प्रताप से, मेरा सतगुरू परस्या टेम।

जान डूहूक्यो चौधरी, पूनम चंदा जेम।।"[15]

"दरिया जन दरियाव है, टेम समुद्र में सीप।

मोती निपजे सीप में, नाम अखण्डत दीप।"[16]

दरियाव जी ने अपनी वाणी में अन्य संतों की तुलना में नारी के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखा। उस समय समाज कई परंपराओं से जकड़ा हुआ था तथा स्त्री कई बंधनों से घिरी हुई थी। उस दौर में दरियाव जी के नारी विषयक विचार एक नयी पहल थी। सुधा निकेतन रजनी के शब्दों में "दरिया साहब के स्त्री संबंधी दृष्टिकोण अन्य मध्यकालीन संतों से अलग है। वे स्त्री को समाज के लिए वर्जित या साधना में बाधक कहते नजर नहीं आते है। बल्कि उन्होंने समाज में स्त्री–पुरुष दोनों की सहभागिता, सहविचार और समानता की बात कही है। यह विचार मध्यकालीन जड़ता की नहीं, बल्कि आधुनिकता की मूलभूत इकाई में से एक है।"[17] दरियाव जी को शिष्य परंपरा में वर्तमान में भी स्त्री को पुरुष के बराबर स्थान दिया जाता है। रामस्नेही सम्प्रदाय की रेण पीठ के थांभायत रामद्वारों एवं अन्य रामद्वारों में स्त्रियों को समान महत्व दिया जाता है।

लेकिन 'नारी को अंग' रचना में कुछ साखियाँ प्राप्त होती है। जिनमें नारी की निंदा की गई है। जैसे– उन साखियों को दरियाव जी द्वारा रचित माना जाता है –

दरिया नारी डाकणी, दीष्या पड़त ही खाय।

विष वासन भूं पहर के, नरक द्वार ले जाय

डॉ0 सतीश कुमार इन पंक्तियों को दरियाव जी द्वारा रचित नहीं मानते है। उपर्युक्त पंक्तियों को लेकर उन्होंने अपने ग्रंथ में बताया है कि "लेखक को दरिया साहब विरचित वाणी की प्रकाशित एवं हस्तलिखित प्रचुर प्रतियों का अवलोकन करने का सुअवसर प्रापत हुआ है। किन्तु इनके नाम से ये साखियां अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलती है। जिससे 'नारी को अंग' नामक इस रचना को दरिया साहब की रचना मानने में कठिनाई होती है।"[18]

दरियाव जी का नारी के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण था। डॉ. पूर्णदास के अनुसार "दरिया साहब का नारी के प्रति उदार एवं मानवीय दृष्टिकोण रहा है। उनके विचारों में नारी समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई है, उसे गर्हित एवं निदंनीय बताकर श्रेष्ठ समाज की कल्पना करना बेमानी है।"दरियाव जी ने अपने उपदेशों एवं विचारों में नारी को महत्वपूर्ण स्थान देकर अन्य संतों की तरह नारी निदंक की उपाधि नहीं पायी। उन्होंने नारी को समाज का महत्वपूर्ण अंग मानते हुए, उसे पुरूष का पूरक माना है। अतः दरियाव जी का नारी विषयक दृष्टिकोण सकारात्मक प्रगतिशील एवं उदारवादी रहा।

सन्दर्भ –

1. मनुस्मृति, पृ. सं. 40
2. भिखारीदास कृत 'काव्य निर्णय' पृ. सं. 1/8
3. भूषण कृत 'शिवाबावनी' कवित सं. – 18
4. मधुमती पत्रिका (अंक–नवंबर,2021), पृ.सं. 42
5. डॉ. पुष्पपाल सिंह कृत 'कबीर ग्रंथावली सटीक' पृ. सं.,187/10
6. मधुमती पत्रिका (अंक – नवंबर, 2021) पृ सं. 42
7. श्री दादू अनुभववाणी, पृ. सं. 125
8. डॉ. पुष्पपाल सिंह कृत 'कबीर ग्रंथावली सटीक' पृ. स. 188/15
9. स्वामी हरिनारायण जी शास्त्री कृत 'श्री दरियाव दर्शन' पृ. सं. 106/31
10. मधुमती पत्रिका (अंक नवंबर, 2021), पृ. सं. – 42
11. मधुमती पत्रिका (अंक नवंबर, 2021) पृ. सं. – 42
12. स्वामी हरिनारायण जी शास्त्री कृत 'श्री दरियाव दर्शन, पृ.सं. 106/30
13. श्री रामस्नेही अनुभव आलोक, पृ. सं. – 125
14. श्री स्व. दरियाव जी महाराज की अनुभवगिरा, पृं.सं. –320
15. श्री रामस्नेही अनुभव आलोक, पृ. सं. – 125
16. श्री रामस्नेही संत वाणी एवं भजन संग्रह – पृ. सं. – 190
17. मधुमती पत्रिका (अंक – नवंबर, 2021) – पृ. सं. – 42
18. डॉ. सतीश कुमार कृत 'रामस्नेही संत काव्यः परंपरा एवं मूल्यांकन – पृ. सं. – 190
19. नागौर का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक वैभव – पृ. सं. –90

■ ■ ■

कालिदास त्रिवेदी की प्रयोगधर्मिता

प्रो. प्रियंका गुप्ता
प्रोफेसर एवं शोध निर्देशक, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
एम.एच.पी.जी. कालेज, मुरादाबाद, उ.प्र.

स्वाति सिंह बावरा
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग,
एम.एच.पी.जी. कालेज, मुरादाबाद, उ.प्र.

सम्बद्ध : एम0जे0पी0 रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

रीतिकालीन परम्पराओं का निर्वहन करते हुए भी कालिदास त्रिवेदी अपनी मौलिकता के कारण अपने काव्य विषय व शिल्प में नये—नये प्रयोग करते रहे। यही कारण है कि उन्हें रीतिकाल का प्रयोगशील कवि कहा जाता है। उन्होंने अपने काव्य के विषय का चुनाव तो वही किया, जो रीतिकाल की परम्परा के अनुरूप था, परंतु उन विषयों के भीतर अपने मौलिक भावों की अभिव्यक्ति मौलिक शिल्प के माध्यम से किया। चाहे वे विषय नायिका—भेद का हो, चाहे श्रृंगार रस के वर्णन का या फिर छंद आदि का, सभी में हमें उनके नूतन प्रयोग की स्पष्ट झलक दिखाई पडती है। श्रृंगार के वर्णन में अन्य रीतिकवियों के काव्य में नायक के वियोग में नायिका ही व्यथित दिखती है, वहीं कालिदास त्रिवेदी के काव्य में नायक व नायिका दोनों ही मिलने हेतु समान रूप से व्यथित व अधीर जान पड़ते हैं। राधा के हृदय में सांवरे कृष्ण की ज्योति जलती है —

गोरी के हिये में जैसी साँवरी उजारी जोति
ऐसी तो उजेरी होति रवि की, न चंद की।

कृष्ण के वियोग में भी राधा की अंगकांति से अंधेरे में भी करोड़ों चंद्रमा के जैसे उजाला फैल जाता है —

कारी अंधियारी में सिधारी जहाँ जहाँ प्यारी
फैलत है उजियारी, तहाँ तहाँ कोटि चंद की।

राधा की इस कांति से कृष्ण भी अभिभूत हो जाते हैं। श्यामवर्णी कृष्ण व गौरवर्णी राधा के मिलन को कवि ने मुग्ध भाव से वर्णित किया है —

कुंदन की छरी आबनूस की छरी सों मिली।
सोनजुही माल कैधों कुबलय—हार सों।
कैधों चंद्रकलिका कलंक सों कलित भई
कैधों रति ललित, बलित भई मार सों।
कालिदास कादंबिनि दामिनी मिली है कैधों
अनल की ज्वाला मिल गई धूमधार सों।
केली समै कामिनी कन्हैया सो लपटि गई
कैधों लपटानी है जुन्हैया अंधकार सों।

''राधा व कृष्ण के मिलन हेतु कृष्ण तो नियत स्थान पर पहुँच जाते हैं, किन्तु राधा को आने में विलम्ब होता है। राधा से मिलने में होने वाले विलम्ब से कृष्ण विचलित होने लगते हैं। कृष्ण का विरह—ताप बढ़ता ही जाता है —

बारी भोरी बाल हरै, बिरह बिसाल हिये
साँवरे रसाल के मसाल सी जरति है।

उन्होंने रति के चित्रण में सांकेतिकता का सहारा लिया है। परंतु इस सांकेतिकता में प्रयुक्त साधन भी उनका मौलिक है। घुंघरु विजयगाथा कह रही है, पाजेब पुकार रही है एवं बिछिया बन्दीजन का रूप धर यशोगान कर रही है।''[1]

कालिदास के श्रृंगार वर्णन में मात्र नायक ही रतिविधान का पालन नहीं करता, वरन् उनकी नायिका भी उसमें पूर्ण रुचि दिखाती है। नायक कृष्ण विविध प्रकार से हास—विलास के साथ रतिक्रीड़ा को आगे बढ़ाते हैं। तब नायिका राधा भी रतिक्रीड़ा में पूर्ण रुचि दिखाते हुए कृष्ण का साथ दे रही है। इस प्रसंग का कवि ने मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है —

पियत पियारी दोऊ ओठन सों, धरि धरि
अधर मधुर मधुसूदन रसाल को।
रूपसाहि हू में, सम छकी रंग भू में, कर—
दें कपोल हू में, मुख चूमै नंदलाल को।

कालिदास त्रिवेदी ने अपने श्रृंगार वर्णन में दोनों को रमणोत्सुक व रतिविधानों में लीन दिखाकर भी उसमें अश्लीलता को स्थान नहीं दिया है। जब नायिका को अपने उसका पति से मिलन होता है, तो वह उस मिलन के सहायक जड़ वस्तुओं को भी उनका पुरस्कार प्रदान करती है —

रति—रन विषै जे रहे हैं पति सनमुख
तिन्हें बकसीस बकसी है मैं विहँसिकै।
करनि कों कंकन, उरोजनि को चंद्रहार,
कटि को सुकिंकिनी, रही है अति लसिकै।
'कालिदास' आनन को सादर सों दीन्हों पान

नैनन कों कज्जल रह्यो है नैन बसि कै।
ऐ रे बैरी बार ये रहे हैं पीठि पाछे, यातें
बार–बार बांधति हौं, बार–बार कसि कै।।

कल्पनाशीलता से ये छंद अत्यंत भावप्रवण व मार्मिक बन गये हैं। कालिदास के नायक व नायिका प्रेम के सहज भाव में इतना लीन है कि उन्हें धार्मिक कार्यों की मर्यादा के निर्वहन की भी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती –

कथा सुनिबे को बैठी पति सँग गाँठि जोरि
जी में कहु आनि गाँठि गाँठ ठकिबो करै।
'कालिदास' तहाँ बैठो पास में गोबिंद आछे
रुचि मधुपान सों छबीलो छकिबो करै।
घट नटनागर की मूरति समाई रही
घूँघट की ओट इकटक टकिबो करै।
अटको तिया को मन नवल सुजान सँग
बापुरो पुरोहित पुरान बकिबो करै।।

नायिका का पूर्ण ध्यान तो अपने प्रिय के दर्शन में लगा हुआ है, उसके लिए इससे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। अतः वह धार्मिक अनुष्ठान की भी परवाह नहीं करती।

शृंगार के संयोग व वियोग दोनों ही पक्षों के वर्णन में कवि ने अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है। संयोग शृंगार के अंतर्गत नायिका के विभिन्न अंगों का सौंदर्यमयी वर्णन आता है। कालिदास त्रिवेदी ने भी नायिका के अंगों का वर्णन किया है, किन्तु उसमें भी उनका मौलिक कल्पना छंद को अत्यंत भावप्रवण बना देती है, जैसे नायिका के हाथ देखकर ही नायक मुग्ध हो जाता है।

हाथ हँसि दीन्हो भीति–अंतर परोस प्यारी
हाथ साथ छकी मति कान्हर प्रवीन की।
निकस्यो झरोखा ह्वै कै विकस्यो कमल जैसे
ललित अँगूठी, तामैं चमक चुनीन की।
कालिदास तैसी सोभा मेंहदी के बुंदन की
चारु नख–चंदन की, लाल अंगुरीन की।
कैसी छबि छाजत है, छाप औ कला की, सु
कंचन सुरीन की, जराऊ पहुँचीन की।

नायिका के हाथ की समता कमल के खिलने एवं हाथ में लगे मेंहदी की बुंदों आदि की शोभा का वर्णन एक प्रयोगशील कवि ही कर सकता है।

वियोग शृंगार के वर्णन में भी कवि अन्य रीति कवियों की भाँति उहात्मकता का प्रदर्शन नहीं करते। उनमें कल्पना शक्ति एवं सजीवता ही सर्वत्र विद्यमान है। नायिका अपने प्रिय के दर्शन भी नहीं कर पाती, जिसकी कारुणिक दशा का वर्णन कवि ने किया है –

रोष भरी ननद झरोखे बैठि मूंगे, मेरे–
लोचन भिखारिन कों, चोखे यमराज सों।
चढ़त अटारी, गारी सैंकरन सासु देति,
जेटि बोलै बोल सो हमारे खरसान सों।

यहाँ ननद, सास, जेठ सभी उसकी दशा के लिए उत्तरदायी हैं। अपने प्रिय के न आने पर नायिका को यह शंका होती है, कि उसकी सपत्नी ने उसके प्रिय को आने नहीं दिया है –

'कौन धौं लियो है हरि हिय को सुहाग मेरो
कौन के भइ है भाग बड़ी बरकति है।
'कालिदास' कौन धौं भई है सौति सहज ही
देखि ना सुनी है यातें छाती दरकति है।
मो सों बनमाली सों वियोग ह्वैहै आली अब
एक मेई हिये में खरक खरकति है।
मेरी आँख दाहिनी लगी है फरकन आजु
कौन बाम की धौं बाम आँख फरकति है।।'

नायिका भेद के वर्णन में भी कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा को व्यक्त किया है। 'वधूविनोद' नामक इनका ग्रंथ नायिका–भेद पर आधारित है। नायिका भेद के वर्णन में जहाँ अन्य रीतिकालीन कवि नायिका भेद के बहाने रस का मुख्यतया शृंगार रस का वर्णन करते हैं, वहीं कालिदास त्रिवेदी ने इसमें किसी प्रकार की मिलावट न करते हुए मात्र नायिका के विभिन्न प्रकारों का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है। इसी तरह उन्होंने नायक के भेद आदि को भी अपने इस विषय से दूर ही रखा है। कवि ने नायिका भेद के प्रचलित नामों स्वकीया, परकीया व सामान्या नामक भेदों को अपने यहाँ मान्यता नहीं दिया है। इन नामों से प्रायः अधिकार भावना प्रदर्शित होती है। इनमें स्त्री की अपनी कोई सत्ता न होकर वह पुरुष के अधीन होती है। चाहे फिर वह पुरुष अपना पति ही हो। कालिदास त्रिवेदी ने इन भेदों के स्थान पर स्वकीया के लिए कुलवधू, परकीया के लिए परवधू एवं सामान्या के लिए वारवधू के नाम से उन्हें सम्बोधित किया है। उन्होंने प्रचलित अभिधानों को त्यागकर अप्रचलित अभिधान को ग्रहण किया है। यहाँ नायिका के तीनों भेदों के नाम में एक संगति है, जो कि प्रचलित नामों में नहीं रहती।

यहाँ कवि ने अपनी प्रतिभा के चमत्कार से 'सामान्या' को वारवधू नाम दिया है। नायिकाओं में कवि ने कुलवधू का विशेष ध्यानपूर्वक वर्णन किया है। उन्होंने इनके भी तीन भेद माने हैं – मुग्धा, मध्या एवं प्रौढ़ा। पुनः मुग्धा के अज्ञातयौवना, ज्ञातयौवना, नवोढ़ा एवं विश्रब्धनवोढ़ा चार प्रकार बताया है।

''कवि ने कुलवधू को योगयत्न से सर्वथा अलम्य स्वीकार किया है। साथ ही उन्होंने उसे सरस्वती के लिए 'कलाकोविद', लक्ष्मी के लिए ऐश्वर्यरूप' एवं पार्वती के लिए 'कल्याणी' शब्दों का प्रयोग किया है। यहाँ हमें स्पष्ट दिखता है कि जब अन्य रीतिकवि नायिका को मात्र श्रृंगार व उपभोग की वस्तु के समान मानकर उसका वर्णन करते हैं, वहीं कवि उसे देवी के पद पर आसीन कर उसे पूज्य बना देते हैं। कालिदास जी ने परवधू को छलछद्मों से प्राप्त होने वाली एवं परपुरुषों को रिझाने वाली नायिका कहा है। इसके भी उढ़ा एवं अनूढ़ा दो भेद किया है। तृतीय प्रकार की नायिका वारवधू है। वारवधू को रीतिकाल में 'सामान्या' के नाम से सम्बोधित किया जाता है''[2], किन्तु कालिदास जी ने अपनी मौलिकता के कारण उसे यह नाम दिया है। उन्होंने वारवधू के वर्णन में उसकी वेशभूषा, अंगसज्जा, आभूषण, नृत्यगार कौशल एवं विपरीतरति का भी विधान किया है। ये सभी उनकी मौलिकता को दर्शाते हैं, यथा –

'रुचि लाल जरी पट अंचल की, गिरि में रवि ज्यों छबि चंचल की।

त्रिबली मनु तीनि कला उलही, बन रूप रोमावलि बीच रही।।'

डॉ. नगेन्द्र ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा –''वस्तुतः नायिका भेद कवि का मुख्य उद्देश्य नहीं है। नायिका भेद तो कृष्ण के मन बहलाव के लिए प्रस्तुत किया गया है। नायिका भेद का प्रारम्भ एक आख्यान से होता है। वह आख्यान कृष्ण से सम्बन्धित है। राधिका के आने में विलम्ब के कारण राधा की सखी ललिता कृष्ण को विरह ताप से बचाने हेतु नायिका–भेद का प्रसंग आरम्भ कर देती है। नायिका–भेद का इस प्रकार से प्रारम्भ होना कवि की प्रयोगशीलता को स्पष्ट करता है। इतना ही नहीं, जब नायिका–भेद समाप्त होता है, तभी राधा आ पहुँचती है। अतः नायिका–भेद के विवेचन को विराम देकर कवि राधा–कृष्ण के मिलन का वर्णन प्रारम्भ करता है। यदि कथा नायिका–भेद के समाप्ति पर ही समाप्त हो जाती, तो आख्यान के साथ कवि न्याय नहीं कर पाता एवं आख्यान अधूरा ही रहता। अतः कवि ने दोनों के मिलन का वर्णन कर आख्यान एवं नायिका–भेद दोनों का पूर्ण रूप से निर्वाह किया है।''[3]

''कालिदास त्रिवेदी ने अपने काव्य में शैली की नवीनता को भी स्थान प्रदान किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'जंजीरा' को जंजीराबद्ध शैली में लिखा है। इस शैली में प्रत्येक छंद पूर्ववर्ती छंद के अंतिम अक्षर से आरम्भ होता है। यह उसी प्रकार है, जिस प्रकार जंजीर (लड़ी) की प्रत्येक कड़ी अगली कड़ी से युक्त रहती है। इस सम्पूर्ण कृति में उन्होंने इसी शैली का निर्वहन किया है। यह काव्य में प्रथम प्रयोग है। सवैया एवं कवित्त में यह प्रयोग होता है, किन्तु सम्पूर्ण कृति में ऐसा करना कठिन होता है। उन्होंने अपनी कृति का आरम्भ 'दरसन पाय कारे चोर के पकर पाँय' से की। यह इसका प्रथम छंद है एवं इस छंद की समाप्ति 'सुराधिका रसीली को बिरद–वृंद बरनै' हुई है। पुनः दूसरे छंद का आरम्भ 'बरनै बिरद–बृद राधिका को चंद्रमुखी' से होती है। इसी भांति से यह क्रम पूरी कृति में चलता है। अंतिम छंद का आरम्भ 'लाल घनस्याम के सुरति रीति आठौं जाम' से होता है, जो कि उसके पूर्व छंद की अंतिम पंक्ति 'लखि रोम–रोम राजी, भयो नंदलाल' के 'लाल' से प्रारम्भ हुई है। अपने ग्रंथ 'वधूविनोद' में कवि ने विभिन्न छंदों के प्रयोग के साथ इस शैली का योग किया है। जैसे आश्रयदाता छंद का अंतिम चरण 'जाके बागी होत ही, साहि भयो भयभीत' का अगला छंद हरिगीतिका है, जिसका आरम्भ 'भयभीत दुर्जन रहत है कर गहत को समसेर है' एवं अंतिम चरण 'परसिद्ध जम्बूद्वीप कीन्हो थान जम्बू नगर नगर है' के अगले छंद दोहा की शुरुआत 'नगर सो जम्बूद्वीप में' हुआ है। इस प्रकार कवि ने इस कृति में 14 प्रकार के छंदों के साथ भी इस शैली का समायोजन बहुत ही सुगठित तरीके से किया है।''[4]

ये इस शैली के आविष्कर्ता तो हैं ही, इसका प्रयोग करने वाले एकमात्र कवि भी हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि इस शैली का निर्वाह पूर्ण कृति में करना अत्यंत कठिन कार्य है। इसके उपरांत भी उन्होंने अपनी कृतियों में

इस शैली का प्रयोग कर अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा एवं अपार साहस का परिचय दिया है।

''नूतन शैली के अतिरिक्त नूतन छंदों का भी कवि ने अपने काव्य में प्रयोग किया है। रीतिकाल में काव्य के लक्षण देने हेतु दोहों का प्रयोग एवं उदाहरण के लिए कवित्त एवं सवैया का प्रयोग बहुतायत रूप में होता है। प्रायः सभी प्रसिद्ध कवि–आचार्यों ने इन प्रचलित दोहों से अपना कार्य किया है। कालिदास त्रिवेदी ने भी अपने स्फुट रचनाओं में इन छंदों का प्रयोग किया है, किन्तु अपने ग्रंथों में प्रधानतया लक्षण के लिए दोवै तथा उदाहरण के लिए कवित्त, सवैया के साथ ही अन्य छंदों जैसे – हरिगीतिका, दोहा, छप्पय, नामोल्लेख, ग्रंथप्रयोजन, चौपाई, त्रिभंगी, त्रोटक, भुजंगप्रयात, सरसी का प्रयोग किया है। दोवै जैसे अप्रचलित छंद को अपने काव्य में बहुतायकता के साथ प्रयुक्त किया है। यह सार, ललितपद एवं नरेन्द्र नामों से भी प्रचलित है।''[5]

जहाँ अन्य कवि अपनी भाषा को जीवंत बनाने के लिए उसमें लोकोक्ति व मुहावरों का पुट डालते हैं, वहीं कालिदास त्रिवेदी वर्ण मैत्री के माध्यम से ही यह चमत्कार कर देते हैं। जैसे इस छंद में देखिए –

घनी जंघिनी जोति जागे न जीकै,
सहै भीतरी दारुनी मारु नीकै।
गहे रूप है रोमराजी सुहाये,
किधौं कोप कै काम, लै धाम आये।।

इस प्रकार के प्रयोग के द्वारा भाषा में संगीतात्मकता का प्रवाह हो जाता है।

कालिदास त्रिवेदी के सम्बन्ध में हमारे विचारों की पुष्टि डॉ. नगेन्द्र के मत से भी होती है। 'रीतिकाल में रस–विवेचन के संदर्भ में नायक–नायिका भेद का विवेचन मतिराम, तोष, रसलीन प्रभृति अनेक कवियों ने किया है, किन्तु इस दिशा में सर्वथा भिन्न शैली के उद्‌भावक होने के कारण इस युग के आचार्यों में कालिदास त्रिवेदी का विशिष्ट स्थान है।'

वह पुनः कहते हैं कि 'इसकी विशेषता (वधूविनोद) इसी बात में निहित है कि विवेचन कथा के प्रसंग के माध्यम से प्रस्तुत करने के अतिरिक्त उसके लिए ऐसे छंदों का भी प्रयोग किया गया है, जो इस काल के अन्य कवियों ने नीति–निरूपण अथवा श्रृंगार–वर्णनों के लिए प्रायः ग्रहण नहीं किये।... इन छंदों का प्रयोग इतने कलात्मक ढंग से किया गया है कि कोई भी प्रकृतितः इस विषय के प्रतिकूल प्रतीत नहीं होता।'

स्पष्ट है कि कालिदास त्रिवेदी अपने समय के सबसे अधिक प्रयोगधर्मी कवि रहे हैं। उन्होंने काव्य का जो भी विषय चुना उसमें उन्होंने अपनी कल्पनाशीलता एवं मौलिकता के साथ नूतन प्रयोग किया है। अपने काव्य की अभिव्यक्ति के माध्यम को भी उन्होंने नूतन प्रयोगों के साथ ही प्रस्तुत किया।

संदर्भ –

1. रीतिकालीन कवि कालिदास त्रिवेदी ग्रंथावली : डॉ. रामानन्द शर्मा, पृष्ठ सं.–68
2. काव्यशास्त्र के सिद्धांत : डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, पृष्ठ सं.–137
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ सं.–309
4. हिन्दी रीति साहित्य : डॉ. भगीरथ मिश्र, पृष्ठ सं.–268
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ सं.–387–388

■ ■ ■

राष्ट्रीय चेतना के विकास में हिंदी की भूमिका

डॉ. राजेश कुमारी
पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग
खुन खुन जी गर्ल्स पी. जी. कालेज, चौक, लखनऊ

आज हम आज़ादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं, ऐसे में भारत की आज़ादी की गौरव गाथा में हिन्दी की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। यद्यपि हमारे देश में आज़ादी के संघर्ष के पहले से ही हिन्दी की गौरवशाली परम्परा रही है। हिन्दी का भक्तिकाल स्वर्णयुग रहा है। इतिहास चक्र के अनंतर भारत पर बाह्य आक्रमण होते रहे और अनेक विदेशी प्रजातियाँ यहाँ आती रहीं, उनकी भाषा – अरबी, फारसी, पुर्तगाली, अंग्रेजी आदि के शब्दों का हिन्दी में घालमेल होता गया। इसके अतिरिक्त भारतीय भाषाओं के शब्द भी हिन्दी में मिलते गए। इस प्रकार आज जो हिन्दी का स्वरूप है वह सदियों पुराना नहीं है। वस्तुतः हिन्दी जीवन्त भाषा है। आज़ादी के संघर्ष के दौरान हिन्दी ने बहुत बड़ी भूमिका का निर्वहन किया था। जन में स्वतंत्रता, स्वाभिमान और स्वावलम्बन का भाव इसी भाषा ने जगाया था। किसी ने सोचा भी न होगा कि जिस भाषा ने आज़ादी की देश में हुंकार भरी थी उसकी यह दशा होगी कि आज़ादी के पचहत्तर वर्षों बाद भी हम उसे क्या, किसी भी भारतीय भाषा को राष्ट्रभाषा न बना सके। जिस भाषा में राष्ट्रीय चेतना का प्रचार–प्रसार करने में सामर्थ्य की कोई कमी नहीं थी, आज उसमें कमियाँ ही कमियाँ हैं। हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली की कमी है, उच्च कोटि का शोध हो नहीं सकता है! इंजीनियरिंग की पढ़ाई नहीं हो सकती है, चिकित्सक इसके द्वारा बन नहीं सकते, आदि आरोप लगाकर इसे खारिज करने के निरन्तर प्रयास होते रहे हैं। तात्पर्य यह है कि हम अंग्रेजी अपनाए रहेंगे। भाषायी महत्व की दृष्टि से यह अत्यंत घातक है ।

दुनिया में अनेक देश हैं, जो अपनी ही भाषा में सब कार्य करते हैं। उनकी अपनी– अपनी राष्ट्रभाषा है। वे विकसित भी हैं। चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, फ्रांस, तुर्की आदि देश अपनी भाषा को महत्व देते हैं किन्तु हम बहुत पीछे रह गए। जब अंग्रेजों से टक्कर लेने में समर्थ हिन्दी के खड़ी बोली के स्वरूप को मानक हिन्दी रूप में प्रतिष्ठित किया गया, तब इसी हिन्दी में साहित्य रचना, पत्रकारिता आदि भी होने लगी थी। मात्र उत्तर भारत हिन्दी पट्टी ही नहीं सुदूर बंगाल तथा दक्षिण तक इसके प्रभाव को देखा जा सकता है। उस समय सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बांधने का उपाय एक भाषा हिन्दी ही थी। पश्चिम बंगाल के समाज सुधारक केशवचन्द्र सेन ने लिखा था– ''अभी भारत में जितनी भाषाएँ प्रचलित हैं, उनमें हिन्दी प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। इस हिन्दी भाषा को अपनाने से एकता अनायास हो सकती है।'' अनेक भाषा–भाषी देश में सभी को एक सूत्र में बाँधना चुनौती पूर्ण कार्य था। यह हिन्दी ने किया। वस्तुतः हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं की माँ संस्कृत ही है, इसीलिए हिन्दी बड़ी आसानी से समझी और बोली जाने वाली भाषा बनी। अपनी इसी सामर्थ्य के कारण हिन्दी राष्ट्रीय चेतना का प्रचार–प्रसार करने में सफल रही।

स्वाधीनता आंदोलन की सफलता एकता पर ही निर्भर थी। सन् 1975 ई. में गुजरात निवासी स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिन्दी में की। आगे चलकर बंकिम चन्द्र चटर्जी, नेता जी सुभाष चन्द्र बोस, वीर सावरकर, काका कालेलकर, सरदार बल्लभ भाई पटेल, लोक मान्य तिलक तथा महात्मा गाँधी आदि हिन्दी को ही सम्पर्क भाषा या राष्ट्रभाषा बनाने की वकालत करते रहे। गाँधी जी ने हिन्दी को जन–जन की भाषा बनाने हेतु उत्तर भारत ही नहीं दक्षिण भारत तक अनेक प्रयत्न किए। उन्होंने कहा – 'हिन्दी और केवल हिन्दी ही हमारी राष्ट्र भाषा बन सकती है।' संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी ही वह एक मात्र शक्ति थी जिसने राष्ट्रीय आंदोलन में सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया था। आज़ादी के आंदोलन को गति प्रदान करने हेतु हिन्दी सम्पर्क की भाषा बन गई थी। हिन्दी के रचनाकार, जो अब तक ब्रज और अवधी आदि हिन्दी की उपभाषाओं में सृजनरत थे, अब खड़ी बोली हिन्दी में रचनाएँ करने लगे ।

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, अयोध्या प्रसाद सिंह

'हरिऔध', गणेश शंकर विद्यार्थी, माधवराव सप्रे, बाबू श्याम सुन्दरदास तथा राजेन्द्र प्रसाद सरीखे अनेक विद्वानों ने हिन्दी को प्रतिष्ठित किया। स्वतन्त्रता आन्दोलन का संदेश देश भर में प्रवाहित हुआ। हिन्दी की अनेक संस्थाओं ने सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रीयता की अलख जगायी। सन् 1857ई. को क्रान्ति या स्वाधीनता आंदोलन के बाद लगभग एक दशक तक हिंदी साहित्य और पत्रकारिता में सन्नाटा छाया रहा। इसका एक मात्र कारण क्रांति की विफलता के बाद अंग्रेजों का दमन चक्र था। अंग्रेजों ने उस समय भारतीयों पर हृदय विदारक अत्याचार किए। दिल्ली में खौलते कड़ाह में लोगों को जिंदा जला कर मार डाला गया था। ऐसी कष्टदायक स्थिति में लेखन तो दूर की बात, जबान खोलना भी कोई आसान काम नहीं था। फिर भी इस संकट की स्थिति में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अत्यंत साहस और निर्भीकता के साथ न केवल साहित्य सृजन की पहल की बल्कि समकालीन साहित्यकारों, कवियों, रंगकर्मियों को भी प्रेरित किया।

भारतेन्दु जी ने सत्रह 'वर्ष की ही आयु में सन्1867ई0 से 'कवि वचन सुधा' मासिक पत्रिका निकालना शुरू कर दिया था, जिसका मोटो था—

'खल जनन सों सज्जन दुःखी मति होहिं, हरिपद मति रहै।

अपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुःख बहै।।'

इस प्रकार इस पत्रिका के प्रकाशन का एक मात्र लक्ष्य— भारत का स्वत्व प्राप्त कर पराधीनता से निजात हासिल करना था। उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के नवसंचार तथा स्त्री—पुरुष के समान अधिकार आदि को सुनिश्चित करने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी।

उन्होंने अपनी रचना 'भारत दुर्दशा' में स्पष्ट लिखा है—

'भए अन्ध पंगु सब दीन हीन बिलखाई,
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई,
अंग्रेज राज सुखसाज सजे सब भारी,
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।'

अंग्रेजों के अत्याचार और भारत दुर्दशा देखकर उन्होंने 'कवि वचन सुधा' 16 जुलाई 1974 के अंक में बड़े साहस के साथ लिखा — "अमेरिकी उपनिवेश की तरह भारत भी, अंग्रेजों से आजाद हो जाए। बीस करोड़ भारत वासियों पर पचास हजार अंग्रेज शासन करते हैं। ये लोग प्रायः शिक्षित और सभ्य हैं, परन्तु उन्हीं लोगों के अत्याचार से भारतवासी दुःखी रहते हैं।''

उन्होंने भारतीयों को अपने उद्योग—धंधों को शुरू करने की सलाह देते हुए लिखा— ''धंधे शुरू करो नहीं तो अंत में यहाँ का सब धन विलायत चला जाएगा। तुम मुँह बाए रह जाओगे।'' भारतेन्दु की कुछ पंक्तियों की अपील बहुत दूर तक गई—

'' भीतर भीतर सब रस चूसैं,
हँसि हँसि के तन मन धन मूसैं,
जाहिर बातन में अति तेज
क्यों सखि साजन, नहिं अंग्रेज।''

इस प्रकार भारतेन्दु जी लगभग बाईस वर्षों तक हिन्दी भाषा एवं साहित्य तथा पत्रकारिता से राष्ट्रीय चेतना का संचार करते रहे।

भारतेन्दु मंडल के ओजस्वी साहित्यकार पं. बालकृष्ण भटट् ने 'हिन्दी प्रदीप' का उन्हीं दिनों प्रकाशन किया, जिसका मुख्य उद्देश्य हिन्दी भाषा एवं साहित्य को विकसित और परिवर्धित करने के साथ ही देशवासियों में राष्ट्रीयता और भारतीयता की भावना को प्रबल करना था। 'कर्मयोगी' प्रेस से छपती थी। पं माधव शुक्ल की कविता 'बम क्या है' जैसे ही निकली, उन्हें ब्रिटिश सरकार का कोपभाजक होना पड़ा। पत्रिका और प्रेस दोनों बंद हो गए। इसी समय लखनऊ से प्रकाशित उर्दू 'अवध पंच' की तरह 'हिंदी पंच' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। उत्तर प्रदेश में जनपद प्रतापगढ़ के कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह ने वर्ष 1885 में उत्तर भारत का पहला हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। पं. मदन मोहन मालवीय ने स1887 में इसके संपादक का दायित्व संभाला तो भारत में हिन्दी की एक लहर सी दौड़ गई। इसके माध्यम से हिन्दी द्वारा देश में नवचेतना जागृत करने का एक महाअभियान

प्रारम्भ हुआ। इसके पहले, वर्ष 1871 में 'अल्मोड़ा अखबार' ने हिन्दी भाषा साहित्य के साथ पर्वतवासियों में स्वाधीनता की ललक जगायी तथा कलकत्ता (कोलकाता) से 1878 को 'भारत मित्र' और 'हिन्दी बंगवासी' भी प्रकाशित हुए।

वर्ष 1900 में भारत की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह वह समय था अब हिन्दी भाषा के पठन–पाठन और लेखन के प्रति देशवासियों में अधिक रुचि नहीं थी। सरस्वती के बारहवें अंक में लिखा है 'लेखकों को हिन्दी लिखने की ओर कम रुचि है। कारण यह है कि जो संस्कृत के विद्वान हैं वे हिन्दी की ओर देखते तक नहीं और जो अंग्रेजी के विद्वान हैं, वे हिन्दी लिखना भी अनुचित समझते हैं। लेकिन इस पत्रिका ने हिन्दी में नए प्राण संचारित किए। इसी समय वीर सावरकर ने भी हिन्दी में एक पुस्तक–'1857 का स्वातंत्रय समर' लिखी जो ब्रिटिश शासन द्वारा जब्त कर ली गई थी। सन् 1905 बंग भंग आंदोलन ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम में क्रांतिकारी परिवर्तन उत्पन्न कर दिया था। सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय चेतना और बलिदान का सागर मानो हिलोरें लेने लगा था। उन्हीं दिनों हिन्दी में समाचार पत्रों ने जन–जन में राष्ट्रीय चेतना भर दी थी। स्वराज्य, अभ्युदय, हिन्दी केसरी, आनंद, कर्मयोगी, हंस, आज, अल्मोड़ा अखबार, प्रताप, अवधवासी, शक्ति, चाँद, आर्य मित्र, महारथी, सैनिक, संघर्ष, संग्राम, नव संदेश आदि अनगिनत पत्रों का प्रकाशन हुआ!

इन्हीं पत्रिकाओं के साथ महात्मा गाँधी ने 'सत्याग्रही' का प्रकाशन किया। जबलपुर से पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कर्मवीर' का प्रकाशन किया। ब्रिटिश सरकार ने उनके ऊपर राजद्रोह का आरोप लगाकर जेल भेज दिया। जेल से छूटने के बाद उनकी विचारधारा इतनी उग्र हो गई कि उन्होंने साहित्य सम्मेलन में यह प्रस्ताव रख दिया था कि सभी साहित्यकार अपनी रचनाएँ स्वाधीनता प्राप्त करने के उद्देश्य से लिखें। कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने उनसे प्रेरित होकर 'झाँसी की रानी' लिखा –

'चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी
बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी
खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।'

उनकी इस अकेली कविता ने पूरे देश में हलचल मचा दिया था। स्वयं माखनलाल चतुर्वेदी जी ने 'पुष्प की अभिलाषा' लिखा –

'मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ पर जाएं वीर अनेक।'

यह कविता आज भी राष्ट्रीय चेतना का नाम लेते ही याद आ जाती है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अनेक दिशाओं से प्रयास हुए थे किन्तु सबसे बड़ी साधना हिंदी पत्रकारिता की रही। उसने जन आंदोलन को जिस प्रकार अग्रसर किया वह बड़े गौरव की बात है। हिंदी के ये पत्र न होते तो संभवतः स्वतंत्रता मिलने में कुछ और समय लगता। अनेक भूमिगत पत्र भी चल रहे थे। पता लगाना मुश्किल था कौन चला रहा है, लेकिन राष्ट्रीयता का एक जुनून सा था।

नाटकों के क्रम में भारतेन्दु के बाद जयशंकर प्रसाद जी के राष्ट्रीय भावधारा सम्पृक्त ऐतिहासिक नाटकों का विशेष महत्व है। उनके नाटकों में राष्ट्रीय और स्वातंत्र्य चेतना के स्वर आधिक निर्भीक और ओजस्वी हैं। ब्रिटिश साम्राज्य से आक्रान्त देश में स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त आदि नाटक लिखकर प्रसाद जी ने सामयिक राजनीति की भी एक गुत्थी सुलझायी थी।

स्कन्दगुप्त नाटक का पात्र पर्णदत्त कहता है ''देश के बच्चे भूखे हैं, नंगे हैं, असहाय हैं, कुछ दो बाबा।''

पर्णदत्त आखिर कैसी भीख चाहता है?क्या भीख माँगने से देश का उद्धार होगा?पर्णदत्त कहता हैं ''जो दे सकता हो अपने प्राण, जो जन्म भूमि के लिए उत्सर्ग कर सकता हो जीवन, वैसे वीर चाहिए, कोई देगा भीख में? पर्णदत्त की याचना के उत्तर में पहले स्कन्दगुप्त और फिर जनता में से वीर देश रक्षा के लिए आगे आ जाते हैं।

ये रचनाएं देश की राष्ट्रीय चेतना जगाने का काम कर रही थीं, किन्तु समकालीन रंग निर्देशकों ने कहा प्रसाद के नाटक अभिनय की दृष्टि से उपयुक्त नहीं हैं, इस कारण बहुत कम मंचित हुए, फिर भी, पढ़े तो गये ही।

सन् 1916 की बात है, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागीदारी और नाटकों के

माध्यम से जनता में स्वातंत्र्य चेतना जगाने की भनक जैसे ही शासन को लगी तो उनका स्थानान्तरण इलाहाबाद बैंक कलकत्ता में कर दिया गया।

कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह जी ने एक स्थान पर लिखा है—इन अभिनयात्मक प्रयासों को महामना मालवीय जी का आशीर्वाद और राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन जी का सहयोग प्राप्त रहता था। माधव शुक्ल, रास बिहारी शुक्ल तथा महादेव भट्ट जैसे अभिनेताओं के पीछे पुलिस लगी रहती थी। इसी से हिन्दी के इस युग के नाटकीय प्रयत्नों का वास्तविक रूप समझा जा सकता है।

हिन्दी में भारतेन्दु युग के पश्चात् द्विवेदी युग और छायावाद युग की कविताओं का भी राष्ट्रीय चेतना संचारित करने में बड़ा' योग दान है। मैथिलीशरण गुप्त जी को राष्ट्रकवि कहा गया। उनकी 'भारत—भारती' तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े लोगों का कंठहार बन गई थी। सम्पूर्ण भारत में भारतीय वाणी गुंजायमान होने लगी—

''मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारे आरती,

भगवान भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।''

प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त नाटक में प्रयाण — गीत की रचना की—

हिमाद्रि तुंग शृंग से / प्रबुद्ध शुद्ध भारती

स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती ।

यद्यपि संस्कृतनिष्ठ शब्दावली से युक्त होते हुए भी कविता जन का कण्ठहार बन गयी।

अरुण यह मधुमय देश हमारा

जहाँ पहुँच अंजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

हमारे राष्ट्र—गौरव एवं आत्म—गौरव की स्थापना करता है। उनकी रचना 'महाराणा का महत्व', उनकी राष्ट्रीय भावना को सीधे व्यक्त करती है। 'कामायनी' में भी उन्होंने सभ्यता संघर्ष के व्यापक रूपक को लेकर प्रकारान्तर से राष्ट्रीय चिंतन को व्यक्त किया है।

'लहर' की कविता —

बीती विभावरी जाग री

अम्बर पनघट में डुबो रही ताराघट उषा नागरी

मात्र चित्रात्मक, प्रतीकात्मक गीत ही नहीं है अपितु यह अत्यंत प्रभावशाली राष्ट्रीय चेतना से ओत — प्रोत जागरण गीत है।

राष्ट्रीय चेतना जगाती निराला जी की भी अनेक कविताएं हैं 'जागो फिर एक बार' में वह कहते हैं —

शेरों की माँद में आया है आज स्यार जागो फिर एक बार ।.......

पशु नहीं, वीर तुम, समर शूर, क्रूर नहीं काल चक्र में हो दबे आज तुम राज कुँवर! समर सरताज! पर क्या है, सब माया है— सब माया है, मुक्त हो सदा ही तुम

बाधा विहीन — बन्ध छन्द ज्यों,........

पद— रज—भर भी है नहीं पूरा यह विश्व भार जागो फिर एक बार।

प्रसाद जी की तरह निराला जी ने भी इस गीत के माध्यम से भारतवासियों को अपने गौरवपूर्ण अतीत की स्मृति दिलायी। जागृति का संदेश देती वीर रस से युक्त यह कविता 'राष्ट्रीय चेतना' की दृष्टि से अनुपम और अद्वितीय है। निराला जी की 'बादल राग' कविता भी क्रांति हेतु प्रेरित करती है। प्रायः ऐसी ही विचार धारा के कारण उन्हें विद्रोही / क्रांतिकारी / ओज के कवि रूप में जाना जाता है। अपनी इसी प्राण शक्ति के कारण उनकी कविता प्राणवान नजर आती है। निराला जी के जुझारूपन को देखते हुए हिंदी जगत ने उन्हें महाप्राण की उपाधि से विभूषित किया ।

इसी क्रम में अवधी राग के वृहतत्रयी वंशीधर शुक्ल, बलभद्र प्रसाद दीक्षित, पं0 चन्द्र भूषण त्रिवेदी 'रमईरस' आदि।'पढ़ीस' का भी बहुत योगदान है। शुक्ल जी 1921 से स्वतन्त्रता आंदोलनों में सक्रिय भाग लेने लगे थे। 1928 में उन्होंने 'प्रभात फेरी' कविता का सृजन किया —

'कदम—कदम बढ़ाए जा, खुशी के गीत गाए जा।' यह नेता जी सुभाष चन्द्र बोस की सेना का (मार्चिंग सांग) प्रयाण गीत बन गया था। इसके अतिरिक्त 'प्रभात फेरी' गीत दूर—दूर तक लोकप्रिय हुआ —

उठो सोने वालों सबेरा हुआ है

वतन के फकीरों का फेरा हुआ है।

गाकर जागरण का मंत्र घर – घर फूँका गया और सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय चेतना की एक लहर दौड़ गयी थी।

बाल कृष्ण शर्मा नवीन ने विप्लव गान की रचना की– कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल पुथल मच जाए। रामनरेश त्रिपाठी की रचनाओं में देश प्रेम और त्याग का उच्च आदर्श प्राप्त होता है। उनकी रचनाएँ अत्यंत लोकप्रिय हुईं।

पं0 श्याम नारायण पाण्डेय का काव्य भी स्वातंत्र्य भावना और साम्राज्यवाद से मुक्ति की इच्छा प्रकट करता है। हिन्दी में राष्ट्रीय चेतना के कवि के रूप में रामधारी सिंह 'दिनकर' को सदैव याद किया जाएगा। रेणुका, हुंकार आदि रचनाएँ राष्ट्रीय चेतना के ओजस्वी स्वर लिए हुए हैं। 'कुरुक्षेत्र' में युद्ध और संघर्ष की वर्तमान समाज व्यवस्था में अनिवार्यता व्यक्त की गयी है। वह कहते हैं –

छीनता हो स्वत्व कोई, और तू त्याग तप से काम ले, यह पाप है।

पुण्य है, विच्छिन्न कर देना उसे, बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।

आजादी के संघर्ष के दौरान और भी बहुत सी कविताएँ राष्ट्रीय चेतना युक्त प्रचलित रहीं –

रामनरेश त्रिपाठी ने 'निशीथ–चिंता' में लिखा –

अपना ही नभ होगा, अपने विमान होंगे
अपने ही यान जब सिंधु पार जायेगें
जन्म भूमि अपनी को अपनी कहेंगे हम
अपनी ही सीमा हम अपने रखायेंगे।

रामप्रसाद बिस्मिल का गीत बहुत लोकप्रिय हुआ –

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है ज़ोर कितना बाज़ु–ए क़ातिल में है।
अब न अगले वलवले हैं और न वो अरमाँ की भीड़
सिर्फ मिट जाने की इक हसरत दिल–ए–'बिस्मिल' में है।

एक लोकगीत अत्यन्त लोकप्रिय हो गया था – "गांधी बाबा' ने भारत जगाय दिया है, हमें चरखे का मंतर बताय दिया है।" श्यामलाल पार्षद का –''विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।'' आज भी बडे उत्साह से गाया जाता है। उस समय लोगों का कण्ठहार था। इसके अतिरिक्त भी अनेक गीत खूब गाए गए।

लीलाधर जगूड़ी ने लिखा है – 1930 से 1947 तक हिंदी का रचनाकार आज़ादी की लड़ाई से सीधे अथवा लेखन के स्तर से जुड़ा रहा है।

राष्ट्रीय चेतना की चर्चा में प्रेमचंद का कहानी संग्रह 'सोज़े – वतन' की चर्चा न की जाए तो पूर्णता कहाँ है! प्रेमचंद की पाँच कहानियों का यह संग्रह है। सोज़े–वतन का अर्थ है – 'देश का दर्द'। सभी कहानी उर्दू में थीं। बाद में हिंदी में अनुवाद हुआ। राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत 'सोजे–वतन' में पराधीनता की विवशता और देश प्रेम का संदेश निहित था, नवाबराय के नाम से लिखी गईं थीं। उन्हें थाने में बुलाया गया और कहा गया तुम बगावत फैला रहे हो। कलेक्टर ने मुंशी जी को सख़्त हिदायत दी और छोड़ दिया। उनका मन व्यथित हुआ पर लेखन कार्य से विचलित नहीं हुआ। इसके बाद वे नवाबराय से प्रेमचंद हो गए। प्रेमचंद की 'दो बैलों की कथा' राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में देखी जाती है। इसमें वे देशवासियों की दुर्दशा को ही चित्रित करना चाहते हैं। वह लिखते हैं ''सीधापन, भारतीयों का सीधापन, संसार के लिए उपयुक्त नहीं है। भारतीयों को सीधापन छोड़कर जापान का रास्ता अपनाना चाहिए। देखिए न भारतवासियों की अफ्रीका में क्या दुर्दशा हो रही है। क्यों अमरीका में उन्हें घुसने नहीं दिया जाता? बेचारे शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिए बचाकर रखते हैं।..... ''अगर वे भी ईंट का ज़वाब पत्थर से देना सीख जाते, तो शायद सभ्य कहलाने लगते। जापान की मिसाल सामने है। एक ही विजय ने उसे संसार की जातियों में गण्य बना दिया।''

इस प्रकार कहानी के प्रारम्भ में ही सिद्ध हो जाता है कि प्रेमचंद केवल दो बैलों की कथा नहीं लिख रहे हैं अपितु कहानी के प्रवाह में राजनीति का अन्तरप्रवाह है। जिसमें न केवल अपने देशवासियों की शोषण के जुए के नीचे जुतने

की नियति है अपितु उससे निस्तार पाने के लिए सुलगता विद्रोह भी वाणी पाता है।

ऐसे ही अनेक रचनाकारों की कृतियों में राष्ट्रीय चेतना के स्वर बुलन्द हो रहे थे। महात्मा गाँधी, गोपाल कृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, पं. जवाहरलाल नेहरू, संरदार बल्लभभाई पटेल आदि स्वाधीनता संग्राम सेनानियों के अधिकांश भाषण हिन्दी में ही होते थे। गाँधी जी से प्रभावित अनेक रचनाकार हिन्दी में देश प्रेम की कविताएँ लिखकर राष्ट्रीय चेतना जागृत कर रहे थे। गाँधी जी का गहरा प्रभाव प्रेमचंद की तरह सुमित्रानंदन पंत जी पर भी पड़ा। द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठ भूमि में लिखी गई उनकी 'बापू' शीर्षक कविता युगवाणी की पहली कविता है।

इस प्रकार यदि हम तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना का मूल्यांकन करते हैं तो देखते हैं हिन्दी ने ही भारत में नवीन प्राणों' का स्फुरण किया था। आज भी एक तरफ भारतीय बाजार हैं, जिसमें हिन्दी बिना काम नहीं चलता है, सिनेमा है, हिन्दी बिना काम नहीं चलता है। चुनाव प्रचार है, हिन्दी बिना काम नहीं चलता है, किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी बिना काम नहीं चलता है। कहते हैं अंग्रेजी में ही सामग्री है, हिन्दी में नहीं है! कैसी विडम्बना है कि देश ने कितने उत्साह से हिन्दी को आज़ादी के पूर्व अपनाया था, इसी से काम चलाया था और आशा थी कि आज़ादी के दस–बीस वर्षों बाद हिन्दी ही सम्पर्क भाषा, राजभाषा और उससे बढ़कर राष्ट्रभाषा के रूप में विकसित होगी किन्तु सपना अधूरा रह गया। हम सबको पता है कि दूसरों की भाषा सीखने में जिंदगी चली जाती है! मौलिक कार्य क्या करेंगे! दुनिया में अनेक राष्ट्र हैं जो अपनी भाषा मे काम करते हैं और सफल हैं। उन्हें अंग्रेजी की आवश्यकता नहीं है किन्तु, हम आज भी मानसिक गुलामी ढो रहे हैं।

आज नई शिक्षा नीति से आशाएँ अधिक बंध गईं हैं। मेडिकल और इंजीनियरिंग की शिक्षा हिन्दी में प्रारम्भ हो रही है। मातृभाषा की महत्ता को विद्वानों ने माना है। हम आशान्वित हैं, सम्भवतः आने वाले दिनों में भारत औपनिवेशिक दासता से मुक्त हो सकेगा। जो सपने आज़ादी के दीवानों ने और हिन्दी प्रेमियों ने देखे थे, पूर्ण हो सकेंगे।

■ ■ ■

अविस्मरणीय गीतकार : शकील बदायूनी

डॉ0 अज़ीज़ रज़ा
एसोसिएट प्रोफेसर, एवं अध्यक्ष उर्दू विभाग
जवाहरलाल नेहरू स्मारक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाराबंकी

शकील बदायूनी अपने समय के मुशायरे के कामयाब शायरों में से एक थे। वह स्वयं को 'शायर–ए–शबाब' कहा करते थे। यही नहीं वे अपने जमाने के फिल्मों के व्यस्ततम् एवं सफल गीतकार भी थें। वह मुम्बई गए थे एक मुशायरे में शिरकत करने लेकिन उन्हें क्या पता था कि मुम्बई अब उन्हें वापस जाने नहीं देगी। इसी मुशायरे में फिल्मों के मशहूर निर्देशक ए0 आर0 कारदार भी मौजूद थे। मुशायरे के समापन के बाद कारदार साहब ने शकील को अपनी आने वाली फिल्म 'दर्द' के लिए गीत लिखने की पेशकश की और इस ख्वाहिश को शकील ठुकरा न सके। कारदार, रईस अहमद जाफरी के उपन्यास दर्द पर फिल्म बना रहे थे और इसी फिल्म से शकील बदायूनी का एक गीतकार के रूप में उदय होता है। फिल्म दर्द (1946) से लेकर फिल्म दर्द का रिश्ता (1973) तक शकील ने अनेकों कामयाब गीत लिखे। शकील ने फिल्मों में हर प्रकार के गीत लिखे। प्रेम, विरह, जुदाई और राष्ट्र प्रेम के कई गीत आज भी लोगों की जुबान पर है। उनके गीतों को सुनते समय लगता है कि इनमें भी उनकी गज़लों जैसा मेआर बरकरार है। फिल्मी दुनिया के चकाचौंध माहौल में रहने के बावजूद उन्होंने कभी अपने फ़न और अदब से समझौता नहीं किया।

गीतों का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना कि मानव इतिहास। गीत हर भाषा और साहित्य में पाया जाता है। गीत, कविता की ऐसी विधा है जिसका सम्बन्ध आम और ख़ास दोनों से होता है। रोना और गाना इन्सानी फ़ितरत में शामिल है। जब इन्सान खुश होता है तो दिल के ज़ज़्बात ज़बान पर गीत का रूप धर कर आ जाते हैं, इसीलिए कहा जा सकता है कि गीत की इब्तेदा (प्रारम्भ) तब हुई जब इन्सान पहली बार अपनी मेहनत, अपने, परिश्रम का फल पाकर झूम उठा था और खुशी के मारे गाने लगा था। हमारे प्राचीनतम गीत, वास्तव में वही लोकगीत हैं जो इन्सानी जज़्बात के साथ वजूद में आए।

हर भाषा, हर समाज, हर एक मुल्क और कबीले का अपना अलग–अलग गीत होता है, जो उसकी पहचान बनता है। गीत के लिए कोई विशेष अवसर या खास मौके की आवश्यकता नहीं पड़ती, बल्कि ये कहना उचित होगा कि हर मौके पर गीत गाए जाते हैं शादी के गीत, विरह के गीत, सावन के गीत, चक्की के गीत, देश प्रेम के गीत इत्यादि, हर मौके हर अवसर के लिए हर भाषा में आपको गीत मिल जाएंगें और जिसे गाने के लिए आपको साज की भी आवश्यकता नहीं होगी।

प्रारम्भिक गीतों में ज्यादातर मकामी बोलियों की छाप थी, लेकिन जमाने की तब्दीलियों के साथ–साथ गीतों में भी तब्दीली हुयी और अपनी भाषा शैली और साहित्यिक अन्दाजे बयान के कारण, ये गीत साहित्य का हिस्सा बनते चले गये।

शोध से पता चलता है कि सबसे पहले अमीर खुसरो ने रुख़सती से सम्बन्धित गीत लिखा जो आज प्रसिद्ध हैं। कुली कुतुबशाह, वली दकनी तथा सिराज औरंगाबादी का समय उसी भाषा को प्रस्तुत करता है जो गीतों में पायी जाती है। मोहम्मद शाह रंगीला और नवाब वाजिद अली शाह के समय में गीत की तरक्की ने गीत और उसकी शायरी को नए सिरे से जीवन देकर इसके लिए राहें हमवार कीं। सन् 1857 की क्रान्ति और उसके बाद की सियासी बेदारी ने उर्दू भाषा को नए सिरे से गीत की शैली से आशना किया, और गीतों की शायरी ने फिर अपनी खोई हुई आवाज़ पा लिया। बारह मासा के बाद नज़ीर की नज़्मों में गीत का आहंग मिलता है। इसके बाद हाजी इकबाल, जोश मलीहाबादी और इस्माईल मेरठी के यहाँ गीत का आहंग मिलता है। बीसवीं सदी में तरक्की पसन्द और गैर तरक्की पसन्द शायरों ने इसे वह मकाम दिया जो इसे अभी तक हासिल नहीं था, इस सिलसिलें में आरज़ू लखनवी, सफदर

आह सीतापुरी, तनवीर नकवी, मीराजी, हफीज़ होशियारपुरी, राजा मेहंदी अली खाँ, अर्श मलसयानी, सागरनिजामी, हफीज़ जालन्धरी, अमीर चन्द कैसी, अखतर शीरानी, जिगर मुरादाबादी, जाँ निसार अखतर, साहिर लुधियानवी, मजरूहसुल्तानपुरी, कैफी आजमी और शकील बदायूनी इत्यादि के नाम लिये जा सकते हैं।

शकील बदायूनी का पूरा नाम गफ़्फ़ार अहमद था। वह 3 अगस्त 1916 को उत्तर प्रदेश के बदायूँ शहर में पैदा हुए। उनके पिता का नाम जमील अहमद कादरी था। शकील को एक गज़लगो की हैसियत से कौन नहीं जानता मगर एक गीतकार के रूप में जिस तरह वह शोहरत की बुलन्दियों तक पहुँचे, उसके बगैर उनका पूर्ण परिचय मुमकिन ही नहीं।

शकील ने जिन फिल्मों के लिए गीत लिखे उनमें अधिकतम वही प्रेम कहानियाँ थीं जो सदियों से जिन्दगी की धूप–छाँव में प्रेम और मुहब्बत के गीत गाती रही थी। बचपन का प्रेम, अमीर लड़की–गरीब लड़का, गायक और उसकी प्रेमिका, सिपाही और राजकुमारी, शहज़ादा और कनीज़ इत्यादि इन प्रेम कहानियों में गीत की ज़ज़्बाती शायरी को, दूसरी विधा के मुकाबले में, अधिक अवसर प्राप्त थे और जिनका शकील ने भरपूर फायदा उठाया। फिल्म दर्द से मुगल–ए–आज़म तक शकील के गीत हर उस दिल की पुकार बन गये जिसकी धड़कन जिन्दगी के साज़ पर मुहब्बत और प्रेम के गीत गाती रही है। शकील सन् 1946 में गीत लिखने की ओर माएल हुए और आखरी व़क्त तक गीत लिखते रहे। शकील के गीतों से सजी पहल फिल्म दर्द थी, जिसके रिलीज़ होते ही उनकी शोहरत आसमान छूने लगी। हर एक ज़बान पर उस वक्त यह गीत था –

अफ़साना लिख रही हूँ दिले बेकरार का,
आँखों में रंग भर के तेरे इन्तेज़ार का।।

इस शानदार फिल्म को संगीत से सजाया था महान संगीतकार नौशाद अली ने, फिर इन दोनों की जोड़ी ने फिल्म इण्डस्ट्री को ऐसे ऐसे गीत दिये जिनका जवाब नहीं।

फिल्मी गीत, चरित्र, परिस्थिति और धुन को ज़हन में रखकर लिखे जाते हैं लेकिन इन पाबन्दियों के बावजूद भी इनके गीतों में मस्ती नहीं है बल्कि अदब है। शकील के गीतों से सजी जिन फिल्मों के गीतों को बहुत ज्यादा शोहरत मिली उनमें दर्द, मेला, बाबुल, दीदार, आन, बैजूबावरां, उड़न खटोला, अनोखी अदा, अम्बर, नाटक, दिललगी, चोर बाजार, लैला मजनूँ, मस्ताना, चौदहवीं का चाँद, घूँघट, यादें, सोहनी महीवाल, मदर इण्डिया, कोहनूर, जान–पहचान, गंगा–जमुना और मुगल–ए–आजम, वगैरह ख़ासतौर से काबिले ज़िक्र हैं इन फिल्मों के गीतों ने अपने वक्त में खूब धूम मचायी।

शकील ने उस समय फिल्मी दुनिया में प्रवेश किया जब डी0एन0 मधूक, तनवीर नकवी, केदार शर्मा, कवि प्रदीप, आरज़ू लखनवी, पण्डित नरेन्द्र शर्मा, ज़िया सरहदी, शौकत हाशमी, अली सरदार जाफ़री, भरतव्यास, पी0एल0 सन्तोषी, फिल्मी गीतों की रूह माने जाते थे और ख़ुमार बाराबंकवी, मज़रूह सुल्तानपुरी, नखशबजारचवी, राजेन्द्र किशन, और राजा मेंहदी अली खाँ वगैरह अपनी किस्मत आज़मा रहे थे। शकील को अपने समकालीन गीतकारों में ही अपनी जगह बनानी थी और एक नयी राह निकालनी थी। उन्होंने अपनी फिकरी सलाहियत पर भरोसा करते हुए अपना रास्ता खुद बनाया और उसी रास्ते को अपनाया जिस पर किसी और का साया तक नहीं पड़ा था।

ये ज़िन्दगी के मेले
दुनिया में कम न होंगे
अफ़सोस हम न होंगे।
एक दिन पड़ेगा जाना
क्या वक्त क्या ज़माना
कोई न साथ देगा
सब कुछ यहीं रहेगा।
जाएंगे हम अकेले। (फिल्म मेला)

गाये जा जीत मिलन के, तू अपनी लगन के सजन घर जाना है।

काहे छलके नैनों की गगरी, काहे बरसे जल।

तुझ बिन सूनी साजन की नगरी, परदेसी घर चल।

प्यासे है दीप गगन के तेरे दर्शन के सजन घर जाना है। (मेला)

मेरा सलाम ले जा, दिल का पयाम ले जा
उल्फ़त का ज़ाम ले जा, उड़न खटोले वाले राही (उड़न खटोला)

बचपन के दिन भुला न देना,
आज हँसे कल रुला न देना।
लम्बे है जीवन के रस्ते,
आओ चले हम गाते हँसते।
दूर देश इक महल बनायें।
दीप जलाकर बुझा न देना,
आज हँसे कल रुला न देना।। (दीदार)

मुहब्बत की झूठी कहानी पे रोए,
बड़ी चोट खायी जवानी पे रोए। (मुगल–ए–आज़म)

प्रेम से भरे इन गीतों में शकील ने लोक गीतों और उर्दू ग़ज़ल के ख़मीर यानी मुहब्बत को एक दूसरे से यूँ मिला दिया है कि ये गीत प्रेम रस का खूबसूरत नमूना बन गये है। कुछ और गीत प्रस्तुत हैं –

कोई प्यार की देखे जादूगरी
गुलफ़ाम को मिल गयी सब्ज़परी।। (कोहेनूर)

धरती को आकाश पुकारे, आजा आजा प्रेम द्वारे आना ही होगा,
इस दुनिया को छोड़ के प्यारे, झूठे बन्धन तोड़ के सारे जाना ही होगा। (मेला)

प्यार किया तो डरना क्या, जब प्यार किया तो डरना क्या,
प्यार किया कोई चोरी नहीं की, छुप–छुप आहें भरना क्या।। (मुगल–ए–आज़म)

कृष्ण और राधा की प्रेम गाथा भी गीतों का एक अनमोल ख़ज़ाना है। इनका प्रेम और रास लीला, प्रेम का ऐसा दर्शन है जो सदियों से दिल के आसन पर विराजमान है। राधा और कृष्ण ऐसे पवित्र चरित्र हैं जिन्होंने सदैव प्रेम की ज्योति जगायी है। शकील बदायूनी ने भी ऐसे कई गीत लिखे। जो इन्हीं दोनों के प्रेम संसार का वर्णन करते हैं –

मधुबन में राधिका नाचे रे, गिरधर की मुरलिया बाजे रे,
पग में घुँघुरू बाँध के, घुँघटा मुख पर डार के,
नैनों में कजरा लगा के रे, मधुबन में राधिका नाचे रे। (कोहेनूर)

आज मेरे मन में सखी, बाँसुरी बजाए कोई,
प्यार भरे गीत सखी, बार–बार गाये कोई,
बाँसुरी बजाए सखी रे गाये सखी रे।। (आन)

मोहे पन्घट पे नन्दलाल छेड़ गयो रे,
मोरी नाजुक कलैय्या मरोड़ गयो रे।
कंकरी मोहे मारी, गगरिया फोर डारी,
मोरी सारी अनारी भिगोय गयो रे।। (मुगल–ए–आज़म)

शकील ने फिल्मों की मुनासिबत से हर प्रकार के गीत लिखे। नात, ग़ज़ल, क़व्वाली, भजन, सब कुछ उनके गीतों में है। जिस फिल्म में उन्हें गीत लिखने का अवसर मिला, उसे अपनी रचनाओं और गीतों के द्वारा यादगार बना दिया। शकील के दौर में समाज की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करने वाली फिल्में बहुत कम बनती थीं, यही कारण है कि उन्होंने ऐसी चन्द फिल्मों में ही गीत लिखे है। फिल्म गंगा–जमुना का यह गीत सभी ने सुना होगा –

इन्साफ़ की डगर पे, बच्चों दिखाओ चलके,
ये देश है तुम्हारा, नेता तुम्हीं हो कल के।
दुनिया के रंज सहना, और मुँह से कुछ न कहना,
सच्चाइयों के बल पे, आगे ही बढ़ते रहना।
रख दोगे एक दिन तुम, संसार को बदल के,
ये देश है तुम्हारा, नेता तुम्हीं हो कल के।।

ऐसे फिल्मी गीतों का पहलू यह है कि फिल्म रिलीज़ के बाद तो लोगों की ज़बान पर रहते हैं मगर जैसे ही कोई दूसरी फिल्म रिलीज़ होती हैं, पहले फिल्म के गीत का क्रेज जाता रहता है मगर कुछ गीत ऐसे भी हैं जिनका क्रेज कभी समाप्त नहीं होता, वही गीत अमर होते हैं। याद कीजिए फिल्म बैजूबावरा का गीत, जिसके बारे में कहा जाता है कि इसकी तान लेते वक्त मो0 रफ़ी के गले से खून आ गया था प्रस्तुत है –

भगवान् भगवान् भगवान्
ओ दुनिया के रखवाले सुन दर्द भरे मेरे नाले

आश निराश के दो रंगों से, दुनिया तूने सजायी
नय्या संग तूफान बनाया, मिलन के साथ जुदायी
जा देख लिया हरजायी
लुट गयी मेरे प्यार की नगरी, अब तो नीर बहाले

इसी प्रकार फिल्म 'चौदहवीं का चाँद' के शीर्षक गीत ने भी खूब धूम मचायी। आज का प्रेमी भी अपनी प्रेमिका के लिए यह गीत तो गाता ही होगा –

तुम चौदहवीं का चाँद हो या आफ़ताब हो,
जो भी हो तुम ख़ुदा की कसम लाजवाब हो।।

हमने पहले ही कहा है कि शकील ने फिल्मों में हर प्रकार के गीत लिखे। प्रेम, विरह, जुदाई और राष्ट्र प्रेम के कई गीत आज भी लोगों की ज़बान पर है। उनके गीतों को सुनते समय लगता है कि इनमें भी उनकी ग़ज़लों जैसा मेआर बरकरार है। फिल्मी दुनिया के चकाचौंध भरे माहौल में रहने के बावजूद उन्होंने कभी अपने फ़न और अदब से समझौता नहीं किया, और शायद यही वजह है कि इतने सालों बाद भी उनके द्वारा रचित गीत पसन्द भी किये जाते हैं और गाये भी जाते हैं।

फिल्म 'अमर' के गीत से अपनी बात समाप्त करता हूँ –

इन्साफ़ का मन्दिर है ये भगवान का घर है,
कहना है जो कह दे तुझे किस बात का डर है।।

संदर्भ –

1. डॉ0 मुसर्रत अशरफी – 'शकील बदायूनी : शख्सियत और फन'।
2. डॉ0 शम्स बदायूनी – 'शायर–ए–शबाब शकील बदायूनी'।
3. डॉ0 शकीलुर्रहमान – 'शकील बदायूनी और उनकी रूमानी शकील बदायूनी शायरी'।
4. शकील बदायूनी – 'शबिस्ताँ (ग़ज़ल और गीत संग्रह)

■ ■ ■

डॉ. आम्बेडकर की राजनीतिक चेतना

डॉ0 अभिषेक गौतम
सहायक प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग
जनता महाविद्यालय, अजीतमल, औरैया

प्रजातंत्र में डॉ. आम्बेडकर का अटूट विश्वास था। यही कारण है कि उन्होंने किसी प्रकार की राजनीतिक तानाशाही का विरोध किया। उनके विचार में तानाशाही एवं फासीवाद समाज एवं व्यक्ति दोनों के लिए कष्टप्रद साबित होंगे। वे जनता का राज स्वयं जनता द्वारा तथा जनता के लिए होना चाहिए, ऐसे सिद्धान्तों को पोषक थे। वह राजनीतिक क्रान्ति में विश्वास नहीं रखते थे। लेकिन राजनीतिक सुधारों में उनकी आस्था थी। कई बार विचार–विमर्श में उल्लेख किया कि "भारत को भी चीन के समान किसी डिक्टेटर की आवश्यकता है।"[1]

डॉ. आम्बेडकर का कहना था कि राजनीतिक विप्लव या क्रांति एक बड़ा भयानक कदम है। वे उदाहरण दिया करते थे कि यदि हम एक रुपये के सिक्के को ऊपर उछाल कर नीचे गिरा दें तो इस बात की गारन्टी नहीं दी जा सकती कि रुपये के यों उछाले सिक्के की मूर्ति वाला हिस्सा ही ऊपर आ जाएगा, अपितु उल्टा हिस्सा भी ऊपर आ सकने की सम्भावना है।

इस तरह राजनीति क्रांति के उपरांत राजनीतिक सत्ता किस पार्टी के हाथ में आएगी इसका कुछ भी अनुमान नहीं किया जा सकता। हो सकता है प्रतिक्रियावादी ही क्रांति के बाद सत्ता हथिया कर देश को अंधकार में धकेल दें। अतः उनका विचार था कि जनमत से चुनी गई सरकार ही लाभदायक हो सकती है भले ही उसकी प्रगति बहुत तेज न हो किन्त वे जनहित के लिए बेहतरीन सरकार होगी। हां ! डॉ. आम्बेडकर भारत में सामाजिक क्रांति के पक्षधर थे। वे समझ चुके थे कि सामाजिक सुधार की रफ्तार बहुत ही मन्थर है। समाज का शिक्षित और उच्चजातीय भाग अपने स्वार्थवश समाज का सुधार करना नहीं चाहता। वह केवल राजनीतिक सुधार का हामी है ऐसा उनका विचार था। अम्बेडकर साम्यवाद को रैजमेन्टेशन (Regimentation) का नाम देते थे। वह व्यक्ति की स्वतन्त्रता के पक्षधर थे साम्यवाद की गलाघोंटू दर्शन को वह स्वीकार नहीं करते थे।

भारत के संविधान के मुख्य उद्देश्य (प्रस्तावना) में अपनी राजनीतिक मान्यता को निम्न प्रकार स्पष्ट किया हैः—

"हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में संविधान को पारित करते हैं।

डॉ. अम्बेडकर की राजनीतिक मान्यता से पता चल है कि वह पक्के राष्ट्रवादी थे। वह सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का न्यायपूर्वक समाधान करने के पक्ष में थे। इसमें सन्देह नहीं कि वे भारत में अस्पृश्य, दरिद्र और धनियों में जो अन्तर है उससे बेख़बर नहीं थे। इसीलिए 1949 में संविधान के पास हो जाने पर उन्होंने संसद के दोनों सदनों के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि "आज से हम राजनीतिक तौर पर स्वाधीन हो चुके हैं लेकिन अगर इस देश में प्रचलित आर्थिक और सामाजिक विषमता दूर न हुई तो शोषित वर्ग इस संविधान की धज्जियाँ उड़ा देगा।"[2]

धनियों और दरिद्रों का अन्तर, सवर्ग और पिछड़े वर्गों का अन्तर, जनजातियों का अन्तर और विशेष तौर पर अछूतों के साथ अन्यायपूर्ण सामाजिक और आर्थिक अन्तर को वह अतिशीघ्र मिटा देने के पक्षधर थे। उन्होंने संविधान के तीसरे भाग में सारे भारतवासियों का (1) कानून की नज़र में समता (2) धर्म, मूलवंश, जाति या जन्मजात् आधारों, भेदभाव प्रतिशोधक (3) राज्याधीन नौकरियों के मामले में समान अवसर, (4) अस्पृश्यता का अन्त, (5) अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण चाहा।

डॉ. आम्बेडकर भली–भाँति जानते थे कि प्रजातन्त्र का राजनीतिक सिद्धान्त तब तक सम्यक, रूप में चरितार्थ नहीं हो सकता जब तक सारा देश या राष्ट्र का मतदाता (वोटर) अपना प्रतिनिधि चुनने में पूर्णरूप से शिक्षित या योग्य न हो और उस पर दूसरे व्यक्तियों का किसी प्रकार का दबाव, प्रलोभन और हेराफेरी न हो। भारत के लोकतन्त्र में अभी तक दोनों बातों की कमी है। सवर्ण हिन्दू अछूतों और पिछड़े वर्गों की गरीबी, और बेबसी का पूरा फायदा उठाकर उनके वोट अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए हर तरह के दाँव–फरेब और हेराफेरी से प्राप्त कर सकते हैं।

शताब्दियों से पददलित और शोषित वर्ग को उनकी इच्छा के अनुसार मतदान करने में अड़चनें डालते सकते हैं। इसलिए वह समाज सुधार पर अधिक बल देते थे। उनका मत था कि राजनीतिक चुनाव करने वाले लोगों में सामाजिक समता का होना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा जानते हुए भी वह जनमत में विश्वास रखते थे। उनकी मान्यता थी धीरे–धीरे भारत का वोटर अपना प्रतिनिधि चुनने में यूरोप और अमरीका की भाँति योग्य हो जाएगा। कई बार उनसे यह प्रश्न पूछने पर कि इस समय जो सरमायादार और उच्चजाति वर्ण हैं, उनकी ऐसा स्थिति बने रहने पर निम्न वर्ग के लोगों की प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में उन्नति की आशा करना बालू से रेत निकालने के जैसा है। इस सन्देहात्मक प्रश्न के उत्तर में वह इंग्लैण्ड के कन्जर्वेटिव और टोरियों की तुलना में वहाँ के मजदूरों की परिस्थिति का जिक्र करते थे।

उनकी मान्यता थी कि "इंग्लैंड के प्रजातन्त्रात्मक शासन में सरमायादार टोरियों और कन्जर्वेटिव के शासन में वहाँ के श्रमवर्ण को बहुत से अधिकार प्राप्त हो गए। यही नहीं बल्कि लेबर सरकारें भी कायम हो गईं।"[3]

डॉ. अम्बेडकर मानव मस्तिष्क पर किसी तरह का भी राजनीतिक प्रतिबन्ध या पाबन्दी लगाने के हक में नहीं थे। दरिद्रों और भूमिहीन श्रमिकों और किसानों की आर्थिक उन्नति के लिए वह सरकार से आशा रखते थे कि बड़े–बड़े जमींदारों की भूमि, और कारखानों–फैक्टरियों को भी सरकार अधिगृहीत करके इनको मजदूरों की बेहतरी या कल्याण हेतु इस्तेमाल कर ले। लेकिन यह कदम संसद और विधान सभाओं से पारित किए कानूनों के आधार पर ही होने चाहिए। डॉ. अम्बेडकर का मौलिक विचार था कि व्यक्ति के विकास के लिए उस पर कोई अवैध या नाज़ायज दबाव नहीं पड़ना चाहिए।

वास्तव में बाबा साहब तानाशाही की राजसत्ता को इसलिए सहन नहीं कर सकते थे क्योंकि इससे व्यक्ति का बौद्धिक विकास जो एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, उस पर अंकुश लग जाता है। राजनीतिक और अर्थशास्त्र के पंडित होने के कारण हर तरह की राजपद्धति के गुण–दोषों की पूरी जानकारी रखते थे और इसी अनुभव के आधार पर ही वह तान्त्रिक राजप्रणाली को सबसे बेहतर समझते थे। भगवान् बुद्ध के अनन्य उपासक होने की वजह से भी उनका संघप्रणाली और व्यक्तियों का परस्पर मिलकर आपसी कल्याण पर सोच–विचार करना उन्हें आकर्षित करता था।

भगवान् बुद्ध ने एक बार आनन्द से कहा था कि वज्जियों को कोई भी शत्रु परास्त नहीं कर सकता चूँकि वह अपने सन्थागार (संसद) में जब मिलजुलकर जनकल्याण के लिए फैसला देते हैं। वह संसद के हर सदस्य को अपने विचार प्रकट करने में छूट देते हैं और अन्त में मिलजुल कर ही जो फैसले करते हैं, उन पर आचरण करते हैं। भगवान् बुद्ध का अपना संघ भी मिलजुल कर ही निर्णय करता था। "डॉ0 अम्बेडकर की राजनीतिक मान्यता तानाशाही में न होकर प्रजातन्त्र में थी। उनका यही राजनीतिक उद्देश्य था कि प्रजा का राज, प्रजा द्वारा प्रजा के कल्याण के लिए ही होना लाभकर है। इतना होने के बावजूद भी वह दबी, पिसी, पिछड़ी जनता के उत्थान के लिए यदि कुछ सिद्धान्त अन्य राजप्रणालियों से लेने पड़ें तो उन्हें संकोच नहीं था लेकिन उनकी आस्था पूरी तरह प्रजातन्त्रात्मक राजपद्धति में थी और इसी पद्धति को वह सबसे उत्तम मानते थे।"[4]

अगर यह मासूम हिरनी तीनों खोदे गए गड्डों और अग्निलपटों से बचने के लिए चौथी ओर बैठे शिकारी के सामने आ जाए तो वह उसे अपने जहर बुझे तीरों का निशाना बनाकर मौत के घाट उतार देता है। ऐसी दयनीय दशा होती आ रही है इन अछूतों की। भारत वर्ष गाँवों का देश है। इसमें करीब साढ़े पाँच लाख गाँव हैं। हर एक गाँव के भीतर उच्च जातियों के लोग बसते हैं। उन लोगों के पास

विद्या है। बाहुबल व अस्त्र–शस्त्र हैं, वाणिज्य व्यापार हैं, और खेती उपजाने के उद्देश्य से गाँव के चारों ओर सटी भूमि है। गाँव के बाहर रहने वाले अछूत जिनमे कुछ खानाबदोश (घुमन्तु)) भी हैं, गाँव के स्वामियों की सेवा करते हैं। उनको बेगार देते हैं। उनके घरों के आंगनों में झाड़ू देते हैं। उनके गाय–बैल, पशुओं की खाल उधेड़ते हैं।

ऐसे चमड़े को रंग कर उसके जूते बनाकर अपने मालिकों की सेवा में पेश करते हैं। उनके फटे–पुराने जूतों की परम्मत करते हैं। सम्भ्रांत घरों में से उनके पाखाना उठाते हैं। उनके खेतों में काम करते हैं। फसलों की निकाई करते हैं। फसलें काटते हैं। खलिहनों में काम करते हैं। किसी भी तरह की मेहनत–मशक्कत का काम हो इन गाँवों से बाहर की तरफ रहने वाले इन अछूतों से लिया जाता है।

अगर यह अछूत इतना होने पर भी कभी अपने मालिकों से शिकायत कर बैठें कि इन्हें इनकी सेवा के बदले में सही मजदूरी नहीं मिल रही है तो गाँव के स्वामी इन गरीबों को तंग करके मनमानी मजदूरी पर काम लेने के लिए इन्हें मजबूर कर देते हैं। ऐसे अछूतों को अपने खेत में नहीं घुसने देते हैं। गाँव के जोहड़ों से उनके पशुओं को पानी पीने की इजाज़त नहीं दी जाती।

ऐसे अत्याचारों की रिपोर्ट पुलिस अधिकारियों से की जाती है। लेकिन वह भी उच्च जातियों के रिश्तेदार होने के कारण इनकी रिपोर्टों को या तो लिखते ही नहीं अथवा इस रूप में लिखते हैं और उन पर ऐक्शन लेते हैं, जिसका परिणाम इन अछूतों के हक में नहीं निकलता अपितु उच्चवर्गीय लोगों के ही पक्ष में सही सिद्ध होता है। अछूतों पर होने वाले अन्याय और अत्याचारों की न तो गिनती है और ही सीमा। 'बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि करोड़ों मानवों की इस देश में ऐसी दुर्दशा देखते हुए भी किसी हिन्दू दार्शनिक, साहित्यकार, कवि, लेखक, प्रचारक एवं दयाधर्म का ढिंढोरा पीटने वाले सन्यासी, जगद्गुरु और परमात्मा की दृष्टि में या तत्वज्ञान के हिसाब लगाने वाले हिन्दू तत्वज्ञानी के मस्तिष्क में कभी क्रान्ति की ज्वाला नहीं भड़की कि ऐसे अमानवीय अत्याचार के खिलाफ वह हिन्दू धर्मानुयायी जनता को चुनौती दें। हिन्दू धर्मग्रन्थों ने इन सबको नपुंसक बना रखा है। इसलिए यह कहना पड़ेगा कि इस देश के हिन्दू अग्रगामियों, विद्वानों और कवियों में मानवता का अंश लेशमात्र भी नहीं है। नही तो इस उक्ति को सफल करते कि "यत्र गच्छति न रविः तत्र गच्छति कविः"[5] अर्थात् जहाँ सूर्य की किरण नहीं पहुँच पाती वहाँ कवि की पैनी दृष्टि पहुँचती है। हमें इस सच्चाई को प्रकट करने में कोई हिचक या संकोच नहीं है। कि इस भूखण्ड (भारत) में न कोई कवि है, न मनीषी, न कोई महात्मा और नहीं ही कोई दार्शनिक। यह सारे ढोंगी हैं, वार्ती हैं और नकली या खोटे सिक्के हैं। यदि ऐसा न होता तो सदियों से आज तक मानवता के साथ ऐसा बुरा व्यवहार होते देखकर इन कवियों और अन्य धर्मध्वजियों के हृदय फट जाते और वह भारत में इन्सानियत का साम्राज्य स्थापित कर देते और निर्दोष अछूतों की हमदर्दी का दम भरते, लेकिन यह धर्मध्वजी, पाखण्डी ऐसा नहीं कर सकते। ऐसी परिस्थितियों में अपितु इनसे भी ज्यादा दर्दनाक और गई बीती परिस्थितियों में स्वनाम धन्य, बोधिसत्व बाबा साहब डॉक्टर भीमराव आम्बेडकर का जन्म हुआ। भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक रहने वाले अछूतों को जिन जुल्मों, अभावों, अन्यायों, अपमानों और दरिद्रता का शिकार होना पड़ता है, डॉ. आम्बेडकर को भी इन त्रिशूलों का शिकार होना पड़ा। उनके घर में दरिद्रता का राज रहा। उन्हें बचपन से लेकर उच्च विदेशी शिक्षा से सुशोभित होने पर भी अस्पृश्यता और अपमान के विष–बुझे बाण चुभते रहे और उन बाणों के घाव जीवन भर नहीं भरे। मानव स्वभाव है कि अच्छे दिन आने पर वह अपने भूतकाल के जीवन के संस्मरण भूल जाता है। सख्त कड़ाके की लू और गरमी से मुक्त होकर जब उसे शीतल वायु और जल मिल जाता है, तो वह भूतकाल के दुःखमय संस्कारों को भूल जाता है, किन्तु डॉ. आम्बेडकर ने अपनी जीवन बीती घटनाओं के द्वारा जो पाठ पढ़े वे उन्हें अपनी मृत्युपर्यन्त नहीं भूल सके और उन अत्याचारों और अन्यायों के विरुद्ध सदा संघर्षरत रहे। अछूतों और पददलित शूद्रों में गत शताब्दियों में कई सन्त, महात्मा और भक्त पैदा हुए। उन्होंने अपनी निज की ओर जिस उपजाति में उनका जन्म हुआ उनकी सामाजिक दुर्दशा, दरिद्रता, और हर तरह के अभावों का दिग्दर्शन किया लेकिन इन रोगों का इलाज उनके पास सिवाय प्रभु भजन के कोई दूसरा नहीं था।[6]

डॉ. आम्बेडकर समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास तथा राजनीतिशास्त्र के साथ ही कानून के प्रकाण्ड विद्वान थे। वे यह जानते थे कि व्यक्ति और

व्यक्ति समूह को दुनिया में कैसे जीवित रहना है ? और वह यह भी अच्छी तरह जानते थे कि अछूत और शूद्र वर्ग किसी भी पूर्वजन्म के पापों का फल भोगने के लिए पैदा नहीं हुए हैं। उन्हें मानव प्रकृति का पूरा ज्ञान था अतः वे समझते थे कि भारत में इन करोड़ों शूद्रों, अस्पृश्यों और जनजातियों का शोषक वर्गों या उच्च वर्णों द्वारा शोषण किया जा रहा है। इतिहास की जानकारी के बल पर और मानव विज्ञान के आधार पर वह जान चुके थे कि शताब्दियों से इन पीड़ित, शोषित और हर तरह के मानवीय अधिकारों से वंचित अछूतों और दलितों का कल्याण तब तक नहीं हो सकेगा जब तक इनमें स्वयं संघर्ष करने की प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं होगी। संघर्ष करने वाले व्यक्ति के लिए सबसे पहले शिक्षित होना आवश्यक है। बिना शिक्षा या ट्रेनिंग के जैसे अच्छा सैनिक नहीं बना जा सकता, इसी प्रकार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अखाड़े में उतरने के लिए उच्च शिक्षा और दृढ़–संकल्प–शक्ति ही बड़े प्रबल शस्त्र हैं।

2 मार्च 1936 में कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह, नासिक के समय गांधी जी ने कहा था कि वे धर्म स्थानों में अछूतों के लिए धरना देने या सत्याग्रह करने के पक्ष में नहीं हैं। वह सिर्फ सवर्ण हिन्दुओं को उपदेश देकर उनका हृदय परिवर्तन करने के हामी हैं। गांधी जी सत्याग्रह का शस्त्र सिर्फ विदेशी सरकार (अंग्रेज) के विरुद्ध ही इस्तेमाल करने के पक्ष में थे। अछूतों का हिन्दू होते हुए भी मंदिरों में प्रवेश का अधिकार प्राप्त करना; सार्वजनिक उनकी विचारधारा के हिन्दू सुधारकों के लिए काफी नगण्य और तुच्छ सा मामला था और वास्तव में मामला तो विदेशी सरकार को निकाल कर स्वराज्य स्थापित करना ही था।

गांधीजी तथा अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दू विदेशियों से अपने अधिकार लेने के लिए सत्याग्रह करते थे और जेलों में जाने के लिए हर समय तैयार रहते थे। लेकिन उन सवर्ण हिन्दुओं ने अछूत हिन्दुओं के जो सामाजिक अधिकार छीन रखे थे, उन्हें दिलवाने के लिए गांधीजी जैसे महात्मा और नेतागण इसे घरेलू मामला मानकर सिर्फ उच्च जातियों के हृदय परिवर्तन की चालबाजी को नंगा करके अछूतों को अपनी मुक्ति के लिए स्वयं अकेले संघर्ष करने हेतु तैयार किया। बाबा साहब ने अपनी जनता में जागृति फैलाने हेतु 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत' और 'जनता' नामक पत्र निकाले और 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' कायम की । जब अपने लोगों में जागृति के लक्षण दिखाई देने लगे तो हिन्दू धर्मशास्त्र मनुस्मृति की होली जलाई।

मैनचेस्टर के बने कपड़ों की गाँधीजी होली जलाते थे चूँकि यह विदेशी कपड़े अंग्रेज शासकों के देश से बनकर आते थे। बाबा साहब अम्बेडकर ने उस धर्मशास्त्र को अग्नि की भेंट किया जिसने शताब्दियों से शूद्रों, अछूतों और आदिम जातियों से सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक अधिकार छीनने के लिए द्विजों और सवर्ण हिन्दुओं को आदेश दिए और भारत की इस निरीह जनता से मानवता का सारा सुख छीन लिया। पाठक स्वयं विचार करें कि गाँधी जी का स्वराज और डॉ. अम्बेडकर के अछूतों को अधिकारों के लिए संघर्ष इन दोनों में कौन सा अधिक न्यायसंगत था ? बम्बई असेम्बली में उनके मनोनीत मेम्बर बन जाने पर उन्होंने योग्यतापूर्वक वहाँ अछूतों का शूरवीरता से प्रतिनिधित्व किया। डॉ. आम्बेडकर के प्रति हिन्दू समाज में घटी इन घटनाओं से वे कदापि विचलित नहीं हुए और इनके छोटे–मोटे प्रहार और आक्रमण को बिना डरे सहते रहे और अपने समाज के हित में आगे बढ़ते रहे। अतः कह सकते हैं कि डॉ. आम्बेडकर ने अपने वैदुष्य और बहुआयामी व्यक्तित्व के साथ राजनीतिक सूझ–बूझ का परिचय देते हुए बहुजन समाज के लिए कल्याणकारी कार्य किया।

सन्दर्भ :

1. डॉ. भीमराव अम्बेडकर–मनोज कुमार, रवि रंजन, पृ. 12
2. वही, पृ. 15
3. बाबासाहेब डॉ. आम्बेडकर की सांस्कृतिक देन– डॉ. अगनेलाल, पृ. 94
4. वही, पृ. 96
5. वही, पृ. 97
6. डॉ. भीमराव आम्बेडकर–मनोज कुमार, रवि रंजन, पृ. 42

■ ■ ■

असमानताओं से जूझता भारतीय लोकतंत्र

दरख्शाँ शहनाज़
एसो. प्रोफेसर व प्रभारी अर्थशास्त्र विभाग
जवाहरलाल नेहरू मेमो. पी.जी. कालेज, बाराबंकी

सार

दुनिया के सभी देशों में किसी न किसी प्रकार की असमानताएँ व्याप्त हैं, किन्तु भारत में विभाजनों व विषमताओं का एक ऐसा मकड़जाल है जो इसे दूसरे देशों से अलग करता है। शायद ही किसी देश को जाति, वर्ग, धर्म, लिंग सहित इतनी विषमताओं का सामना करना पड़ा हो। भारत में जाति विषमता की बड़ी भूमिका है जो इसे बाकी के देशों से अलग करती है, जाति जैसी संस्था ने लोगों को खानों में बाँट दिया है, (यद्यपि जातिगत भेदभाव को गैरकानूनी घोषित करने के लिये कई कानून बनाए गये हैं) भारत में स्त्री–पुरुष असमानता भी बहुत है विशेषकर उत्तर और पश्चिम भारत के क्षेत्र में महिलाओं पर अत्याचार बहुत व्यापक हैं जिसने एक दमनकारी सामाजिक व्यवस्था को जन्म दिया है, जिसके कारण भारत में विभिन्न प्रकार की विषमताएं उत्पन्न हो गयी हैं, उदाहरण स्वरूप जाति, धर्म, लिंग, वर्ग के अतिरिक्त आय के वितरण में भी असमानता देखने को मिलती है, पिछले कुछ वर्षों में आर्थिक विषमताओं में वृद्धि के प्रमाण बढ़ते जा रहे हैं। इन प्राचीन व गहरी जड़ें जमाई हुइ असमानताओं का भारतीय समाज व राजनीति पर बहुत प्रभाव है जिनमें कुछ तो कम हुई हैं परन्तु कुछ नई जन्म ले रही हैं, जैसे पिछले कुछ वर्षों में भारत में कारपोरेट की बढ़ती ताक़त से उत्पन्न विषमताएं। इस शोधपत्र में हमें इस प्रश्न का उत्तर तलाशना है कि भारत में जो विषमताएं व्याप्त हैं उनका हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था ने क्या समाधान निकाला है ।

मुख्य बिंदु

सामाजिक तथा आर्थिक विषमताएं, भेदभाव, आर्थिक विभाजन, कारपोरेट शक्ति, लोकतंत्र ।

प्रस्तावना

जहाँ भारी असमानताओं के समूह ने एक बहुत शोषणकारी सामाजिक व्यवस्था को जन्म दिया है वहीं अभावग्रस्त लोग अधिकारविहीनता की दशा में जीवन जीने के लिये विवश हैं। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत के कुछ क्षेत्रों में बहुसंख्यक ब्रह्मण पुरुष अधिकतम 73 प्रतिशत साक्षर थे तो दूसरी ओर अधिकांश क्षेत्रों में दलित महिलाओं में साक्षरता दर शून्य थी, यह स्थिति लगभग प्रत्येक समुदाय में स्त्री–पुरुषों की साक्षरता में असमानता को दर्शाती है अर्थात् शिक्षा पर पुरुषों का एकाधिकार था। यद्यपि जातिगत भेदभाव 20वीं सदी में कुछ कम हुआ है। भारत में अतीत में जिस तरह का जातिगत भेदभाव था उसको देखते हुए स्थितियाँ बहुत सुधरी हैं। प्राचीन समय में भारत के कुछ बड़े भागों में दलितों को चप्पल न पहनने देना, अपमानित व प्रताड़ित करने, मंदिरों में प्रवेश करने, कुर्सी पर सामने बैठने की छूट न देने के उदाहरण देखने को मिलते हैं। ''शिक्षा के प्रसार, आर्थिक विकास, सामाजिक सुधार आंदोलनों, संवैधानिक सुरक्षा के कारण यह भेदभाव बहुत कम हो गया है। अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता न देना जैसे जातिगत पूर्वाग्रह आज भी समाज में व्याप्त हैं, जाति आज भी भारतीय समाज की एक बड़ी ताक़त है हालाँकि इसकी भी पुरानी बर्बरता में कमी आई है, सार्वजनिक संस्थाओं में ऊँची जातियों की पकड़ आज भी बनी हुई है वह चाहे प्रेस क्लब हो, विश्वविद्यालयों की फैकल्टी हो, बार एसोसिएशन हो, पुलिस विभाग के ऊँचे ओहदे या मजदूर संघों के बड़े पद हों इन संस्थाओं के 75 प्रतिशत पद इन जातियों के क़ब्जे में हैं। यह आँकड़ा इलाहाबाद शहर के सर्वे से प्राप्त हुआ है जो अंकित अग्रवाल, ज्याँ दरेज, आशीष गुप्ता ने अगस्त 2012 में एकत्र किये थे।''[1]

भारत में शैक्षिक असमनताएं भी अपने आप में महत्वपूर्ण हैं जो वर्ग, जाति, व लिंग सम्बंधी असमानताओं को आंशिक रूप से परिलक्षित करती हैं, इनका अपना प्रभाव होता है जो स्कूल तक पहुँच, सीखने की क्षमता व माता–पिता को ओर से शिक्षा में अंतर को बताता है। एक ही परिवार के बच्चों की शिक्षा में अंतर होता है। ''भारत में एक

और महत्वपूर्ण सामाजिक विभाजन है जैसे अंग्रेजी भाषा जानने वाले लोगों व न जानने वाले लोगों के बीच विभाजन, इस पर सामाजिक विचारक डॉ. राममनोहर लोहिया ने कहा है कि ऊँची जाति, धन दौलत व अंग्रेजी का ज्ञान–ऐसी विशेषताएं हैं जिनमें से दो भी यदि किसी के पास हैं तो वह शासक वर्ग में शामिल हो सकता है। यह विभाजन स्कूली व्यवस्था में दिखाई देता है जो अंग्रेजी भाषा व गैर अंग्रेजी भाषा में बँटी हुई है। इस तरह बहुत सी सामाजिक विषमताएं अन्य दूसरी असमानताओं को मजबूती प्रदान करती हैं। स्त्री–पुरुष असमानता भी भारतीय समाज की एक बड़ी सच्चाई है लड़कों की तुलना में लड़कियों की मृत्यु दर का अधिकतम होने का कारण कन्या भ्रूण हत्या तथा बच्चियों के स्वास्थ्य तथा पोषण की उपेक्षा है। भारत के अलग–अलग हिस्सों व क्षेत्रों में लड़कियों के प्रति व्यवहार में बहुत अंतर है। अखिल भारतीय आँकड़ों से प्राप्त होने वाली छवि सदमें में डालती है। भारत में पितृसत्तात्मक सांस्कृतिक व सामाजिक संबंधों के कई रूप हैं, संपत्ति का उत्तराधिकारी पूरी तरह से पितृवंशीय है, विवाह के बाद निवास पितृस्थानीय होता है, महिलाओं की गतिविधियाँ प्रतिबंधित हैं, घरेलू हिंसा एक बड़े क्षेत्र में व्याप्त है, दहेज प्रथा 20वीं शताब्दी में उन समुदायों में भी प्रारंभ हो गई जहाँ पहले नहीं थी। ऐसा लगता है कि आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक जीवन के बेहद महत्वपूर्ण पक्षों में स्त्री–पुरुष समानता का लक्ष्य हासिल करना अभी दूर है हालाँकि कुछ मामलों में इस असमानता में कमी देखी गई है 100 वर्ष पूर्व लड़कियों को (ऊँची जातियों समेत) शिक्षा व्यवस्था से दूर रखा जाता था किन्तु अब वह देश भर में स्कूलों में जा रही हैं, आज महिलाएँ शिक्षा जगत से लेकर सभी पेशों में, राजनीति से लेकर साहित्य, कला, संगीत में महत्वपूर्ण पदों पर तैनात हैं। भारत लगभग स्त्री–पुरुष असमानता को समाप्त करने की राह पर है।''[2]

भारत में हाल के वर्षों में आर्थिक असामनता में वृद्धि देखी जा रही है उदाहरण के तौर पर प्रति व्यक्ति खर्च के आँकड़े बताते हैं कि गाँव व शहरों के मध्य तथा शहरों में भी असमानता बढ़ा रही है, तीव्र आर्थिक विकास का लाभ शहरों के समृद्ध तबके को हुआ है सम्पत्ति संबंधी आँकड़े आर्थिक सुधार के बाद के दौर में बढ़ती असमानता की ओर इशारा करते हैं। ''विश्व बैंक के अध्ययन के अनुसार भारत में आर्थिक असामनता ब्राजील व दक्षिण अफ्रीका में व्याप्त ऊँची आर्थिक असमानता जैसी ही है, तीव्र आर्थिक विकास का लाभ गरीबों को नहीं मिलता। भारत की उन्नति के सामाजिक सरोकार लगभग ना के बराबर है। आर्थिक विषमता को लेकर चिंता के और भी कारण हैं जिसके कई प्रतिकूल सामाजिक प्रभाव होते हैं उदाहरण के तौर पर आर्थिक असमानता बढ़ने से अपराध भी बढ़ते हैं ये विषमताएँ सामाजिक एकता के लिए भी ख़तरा है और नागरिक सहयोग को कमजोर करती हैं, धन का केंद्रीकरण करती हैं तथा कुछ विशेषाधिकार प्राप्त लोगों को राजनीतिक ताक़त देती है। इसने विशेष अधिकार प्राप्त वर्ग और शीर्ष समाज के बीच और गहरा विभाजन कर दिया है। समता के सिद्धांत का उल्लंघन मात्र यही नहीं है कि धनी और अधिक धनी के पास अकूत संपदा है बल्कि ये है की एक बहुत बड़ी आबादी अभी भी सम्मानजनक जीवन जीने के लिए रोटी, मकान, कपड़ा, शिक्षा, स्वास्थ्य, दवाई जैसी बुनियादी जरूरतों के लिए तरस रही है।''[3]

क्षेत्रीय असमानता

भारत जैसे विशाल देश में राज्यों के बीच भी असमानताएँ पाई जाती है। शिक्षा, स्वास्थ्य व गरीबी से संबंधित मूलभूत विकास सूचकांकों के नमूने बताते हैं कि अभी भी भारी क्षेत्रीय विषमताएँ व्याप्त हैं। बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्य प्रदेश, ओडिशा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में जनसंख्या के एक बड़े भाग में रहन–सहन का एक निराशाजनक स्तर है। अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भारत के कुछ राज्य मनुष्य की अभावग्रस्तता के मामले में कुछ अफ्रीकी गरीब देशों से भिन्न नहीं हैं। इन्हें हम मोजाम्बिक और सिएरा लियोन की श्रेणी में रख सकते हैं''[4] वहीं दूसरी ओर केरल, हिमाचल प्रदेश, तमिलनाडु मानव विकास के मामले में अपेक्षाकृत अपनी ऊँची उपलब्धियों के साथ खड़े हैं, हालाँकि ये 50 के दशक से पूर्व गरीब ही थे किन्तु 50 और 60 के दशक में इन राज्यों ने तेजी से विकास करके लोगों के रहन–सहन, प्रति व्यक्ति आय और मानव क्षमता को बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर ली है ।

जाति, लिंग, वर्ग, आय और संपत्ति की असमानता,

क्षेत्रीय असंतुलन के अतिरिक्त कुछ अन्य नई उभरती असमानताएँ भी गरीबी के दुष्चक्र को मजबूत कर रही हैं उदाहरण के लिए पिछले 20 वर्षों में भारत में कार्पोरेट ताक़त में भारी वृद्धि हुई है जो मुनाफे की अनियंत्रित चाह से प्रेरित है। सार्वजनिक नीति और लोकतांत्रिक संस्थाओं पर कार्पोरेट हितों का बढ़ता प्रभाव नीतियों को अभावग्रस्त लोगों की आवश्यकताओं के हिसाब से तय करने में मदद नहीं करता। 'द वेल्थ ऑफ नेशंस' (1776) नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में एडम स्मिथ ने सार्वजनिक नीति में व्यापारिक हित के दख़ल के बारे में चेताया था। "व्यापार या उत्पादन की किसी भी शाखा में डीलरों के हित हमेशा जनता के हितों से भिन्न व उल्टे होंगे। "[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में तमाम तरह की विषमताएँ हैं कुछ लोग तुलनात्मक रूप से अमीर हैं और आरामदायक जीवन जी रहे हैं, तो कुछ को थोड़ा हासिल करने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ रही है, कुछ लोग राजनीतिक ताक़त रखते हैं, तो कुछ लोग अपने आस–पास ऐसा कोई प्रभाव नहीं रखते, कुछ के जीवन में आगे बढ़ने के अवसर हैं तो कुछ के पास नहीं, कुछ लोगों के साथ पुलिस सम्मानजनक तरीके से पेश आती है जो असर–रसूख रखते हैं और कुछ को संदेह के आधार पर ही प्रताड़ित किया जाता है। ''साधन संपन्न लोगों और अभावग्रस्त लोगों के बीच एक विभाजन रेखा है जो समस्या के विश्लेषण का महत्वपूर्ण अंग है। जो बताती है कि एक बड़ा विभाजन है जो भारतीय समाज को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, यह भारत में समता की स्थापना के लिए एक बड़ी चुनौती है।''[6]

समाज की बेहतरी, अन्यायों तथा असमानताओं को समाप्त करने के लिए लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को एक सामाजिक औज़ार के रूप में देखने पर, भारतीय लोकतंत्र की उपलब्धियों पर गंभीर सवाल उठाए जा सकते हैं। भारत में तरह–तरह की असमानताओं का जारी रहना और उसमें बढ़ोत्तरी होना भारतीय लोकतंत्र को उपलब्धियों के लिहाज़ से पर्याप्त सफल नहीं मानने के काफी सबूत हैं, भारत को जो उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं उनको और कैसे बढ़ाया जा सकता है तथा उनसे लोगों के जीवन की असमानताओं और शोषण को कैसे कम किया जा सकता है इसके जवाब तलाशने होंगे। आज हम आजादी का 75वाँ अमृत महोत्सव मनाने की ओर अग्रसर हो रहे हैं, लगभग 74 वर्षों के भारतीय संविधान (1950) ने प्रत्येक व्यक्ति को मौलिक अधिकारों की गारंटी दी है जिनमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संगठन बनाना, क़ानून के समक्ष सब की बराबरी और भेद–भाव से आजादी के अधिकार शामिल हैं जिनके लिए अदालत का दरवाज़ा खटखटाया जा सकता है। अनुच्छेद 32 के तहत प्राप्त अंतिम मौलिक अधिकार–मौलिक अधिकारों के हनन की दशा में उच्चतम न्यायालय में अपील की भी गारंटी दी जाती है। भारत के लोकतांत्रिक संविधान निर्माताओं ने ये आशा की थी कि भारतीय क़ानून व्यवस्था समाज की अस्वीकार्य असमानताओं को समाप्त करने में सहायक होगी उन्होंने इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए चुनावों सहित अन्य लोकतांत्रिक साधनों के प्रयोग की भी व्यवस्था की थी।

संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों में इन मौलिक अधिकारों के अलावा कई आर्थिक व सामाजिक अधिकार शामिल किए गए हैं जैसे–रोजगार, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य के अधिकार। जिनके लिए अदालत की शरण में नहीं जाया जा सकता क्योंकि नीति–निर्देशक सिद्धांतों के ठीक पहले के अनुच्छेद 37 में कहा गया है कि इस भाग में दर्ज़ प्रावधानों को अदालत के द्वारा लागू नहीं करवाया जा सकता। अनुच्छेद 37 में ही संविधान कहता है देश की शासन व्यवस्था चलाने में यह नीति निर्देशक सिद्धांत बुनियादी महत्व रखते हैं और सरकार का दायित्व है कि वो कानून बनाने में इन सिद्धान्तों का उपयोग करे। यदि सरकार ये नहीं करती है या इसमें विफल होती है तो भारत की लोकतांत्रिक मतदान प्रणाली इसका समाधान कर देगी। बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर ने संविधान सभा की बैठक में कहा था कि " इसके उल्लंघन पर भले ही सरकार को अदालत में सफाई न देनी पड़े मगर उसे चुनाव के दौरान मतदाताओं को जरूर सफाई देनी पड़ सकती है "[7]

भारत में जो आर्थिक व सामाजिक विषमताएँ पाई जाती है उनका हमारी लोकतांत्रिक प्रणाली ने क्या आवश्यक समाधान किया है ? जिसकी संकल्पना हमारे संविधान निर्माताओं ने की थी निःसंदेह जवाब न ही में मिलेगा। हालाँकि भारत ने उस प्रकार की विफलता से खुद

को बचाया है जिसके कारण चीन में महान ऊँची छलांग की विफलता के कारण भारी अकाल पड़े। जिसमें लगभग तीन करोड़ लोगों की मृत्यु हुई। भारत सरकार पर मीडिया की नज़र, विपक्षी दलों के प्रति जवाबदेही ने राजनीतिज्ञों व सत्ता दलों को जनता के जीवन के प्रति उपेक्षाओं से रोका है, भीषण आपदाओं के समय लोकतंत्र एक जवाब देही तय कर देता है जिसने भारत में इन आपदाओं की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, इसने एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में लोगों के जबरन विस्थापन को भी रोका है। जो समाज में आतंक का प्रतीक बनती है, जैसा कि चीन में सांस्कृतिक क्रांति के समय हुआ। इस सकारात्मक पहलू से ज्यादा बड़ा सवाल ये हैं की जवाब देही को कितना विस्तार दिया गया है जिसके दायरे में अभावग्रस्तता व असमानता जैसी अन्य सभी समस्याएं आ जाएँ जो अकाल की तरह महत्वपूर्ण तो नहीं पर आम नागरिकों के जीवन को प्रभावित ज़रूर करती हैं विशेषकर स्कूली शिक्षा, प्रारंभिक स्वास्थ्य, पोषण, सार्वजनिक सुविधाएँ देने में विफलता का लोकतांत्रिक व्यवस्था के जरिए हल नहीं निकाला जा सका, जबकि चीन ने जनता के कल्याण के लिए किए गए उपायों में चीनी नेतृत्व ने काफी कुछ अधिक हासिल करके दिखाया है जो भारतीय लोकतंत्र के शोरगुल में कहीं गुम है।

शोध पत्र का उद्देश्य

1.) भारत की आर्थिक व सामाजिक विषमताओं का अध्ययन करना।

2.) लोकतांत्रिक प्रणाली द्वारा उसके समाधान के तरीक़ों की खोज करना।

शोध प्रविधि

समंक संकलन : अंतरराष्ट्रीय तुलना के आंकड़े विश्व विकास सूचकांक, केंद्रीय सांख्यिकी संगठन, राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण, भारतीय मानव विकास सर्वेक्षण और राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण से लिए गए हैं। शोध पद्धति विश्लेषणात्मक शैली पर आधारित है।

निष्कर्ष

हम इस बात से नज़र नहीं चुरा सकते कि भारतीय लोकतंत्र आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र की तमाम समस्याओं और चुनौतियों का सामना करने में विफल रहा है, विशेषकर इस विषय में भारत की जनता को जिन मूलभूत असमानताओं का सामना करना पड़ रहा है उसे दूर नहीं किया जा सका है। विफलता के कारणों की जाँच होनी चाहिए तथा भारतीय लोकतंत्र को और अधिक विस्तार देने के उपायों पर विचार किया जाना चाहिए। तभी इस देशव्यापी समस्या का समाधान सम्भव है।

संदर्भ –

1. ज्याँ दरेज व अमर्त्यसेन सेन 2013 "इन्डिया एन्ड इट्स कन्ट्राडिक्शन" ।
2. लक्ष्मण गायकवाड़ 1998, ओमप्रकाश वाल्मीकि 2003, बी. आर. अम्बेडकर 2011, शर्मीला रेगे 2006, शाह एवं अन्य 2006 ।
3. अग्रवाल व अन्य 2013, दरेज, पी एन्ड गुप्ता 2013 "नोट्स आन द कमपोजीशन ऑफ पब्लिक इन्स्टीट्यूशन्स इन इलाहाबाद " डिपार्टमेंट ऑफ इकनामिक्स, इलाहाबाद विश्वविद्यालय ।
4. वेल व अन्य 2011, इमरान एवं शिल्पी, "ए निव डाटा सेट ऑन एजूकेशनल इनकिवलिटी इन द वर्ल्ड " 1950–2010, गिनी इंडेक्स ऑफ एजुकेशन बाइ एज ग्रुप स्रोतः–http://www-education&inequality-com1Article/BHK]%2020IL-pdf
5. एडम स्मिथ : द वेल्थ ऑफ नेशंस, 1776 लंदन, पेज–292
6. डीटन एवं दरेज 2002, जय देव व अन्य 2007 वर्ल्ड बैंक 2011, एशियन डेवलपमेंट बैंक 2012 "पावरटी एन्ड इनकिवलिटी इन इन्डियारू ए रिइकजामिनेशन" इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 7 सितम्बर 2002, कनफरनटिंग राइजिंग इनकिवलिटी इन एशिया (मनीला : ADBI)
7. द टेन्थ इयरली वेल्थ डाटा फार इन्डिया स्रोत : एन एस एस, द डाटा फ्राम 1961–2012 स्रोत : द वेल्थ इनइक्विलिटी डाटा बेस, एन्ड 2020 स्रोत :

■ ■ ■

मैत्रेयी पुष्पा : व्यक्तित्व एवं रचना संसार

रंजीता राय
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
जवाहरलाल नेहरू मेमो. पी.जी. कालेज,
(सम्बद्ध : डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उ0प्र0)

वर्तमान साहित्य में जहाँ इक्कीसवीं सदी की चर्चा हो रही है वहीं साहित्यकारों की कृतियों की उपज भी आधुनिक महानगरों के जीवन व वैज्ञानिक प्रगति से प्रभावित आज के मानव के जन–जीवन व उसकी मानसिकता का चित्रण रहा है।

आधुनिक महानगरों के निवासी समस्त आधुनिक उपकरणों से लैस जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति को यदि गँवार या गाँव के समान समझा जाये तो उसे अपनी अवहेलना महसूस होती है। आधुनिक मनुष्य चाँद के अलावा अन्य उपग्रहों में जाने का प्रयास कर रहा है। नित आगे और आगे दौड़ना चाह रहा है। ऐसे परिवेश में हिंदी साहित्य में सम्पूर्ण ग्रामीण परिवेश की कथाओं को लेकर मैत्रेयी पुष्पा आती है तब सभी को ताज्जुब होता है 'अब पीछे कौन देखता है' या 'अब गाँवों में क्या रखा है' आदि–आदि। परन्तु एक के बाद एक कहानी, उपन्यास द्वारा एक प्रदेश की समस्या व सम्पूर्ण जीवन की समग्रता लिए जब 'मैत्रेयी पुष्पा' जी ने अपनी अमिट पहचान बना दी तब साहित्य जगत के सभी हस्ताक्षरों ने स्वीकृति दी कि आधुनिक समय में गाँवों की समस्या क्या है?

साहित्य में साहित्यकार के व्यक्तित्व की झाँकी प्रतिबिम्ब होती है। इसलिए मैत्रेयी पुष्पा के कृतित्व को जानने से पहले उनके व्यक्तित्व, उनकी सोच और समझ को, उनके व्यक्तित्व को बनाने वाली उन स्थितियों और परिवेश को जानने के लिए निम्न बातें आवश्यक हैं–

जन्म–मैत्रेयी पुष्पा का जन्म 30 नवम्बर सन् 1944 ई0 में अलीगढ़ जिले के सिर्कुरा गाँव (उ0प्र0) में हुआ किसी भी गाँव में व्यक्ति का जन्म हुआ हो तो उसकी उस गाँव से आत्मीयता जरूर रहती है। सिर्कुरा गाँव का उल्लेख उनकी कृतियों में बार–बार आया है। मैत्रेयी की माता का नाम कस्तूरी देवी था पिता हीरालाल नाम से जाने जाते थे घर का वातावरण मध्यम वर्गीय स्तर का रहा है। घर की आर्थिक स्थिति ख़राब थी। मैत्रेयी जब अट्ठारह मास की थीं तब मोतीझला (छोटी शीतला) की बीमारी से पिता तड़प–तड़प कर मृत्यु को प्राप्त हो गए। आखिरी वक्त ऑसू भरे हुए नेत्रों से अपनी बच्ची की तरफ देखा तो उनके आवाज में जो अंतिम ध्वनि थी, वह थी मै....त्रे....यी।

व्यक्तित्व– गोरा रंग, बड़ी आँखे, लम्बा सा कद, दुबली–पतली देह की स्वामिनी मैत्रेयी जी हैं। इनका रहन–सहन काफी सादगी से भरा है। अदम्य साहसी निर्भीक व्यक्तित्व की धनी मैत्रेयी का अन्तर्मन अत्यंत संजीदा है। एक स्वतंत्र चेता, युगधर्मी, रचनाकार के अभिनव रूप में आप पिछले तीन दशकों से साहित्य जगत की सिरमौर हैं। मैत्रेयी ने अपनी सर्जनात्मक ऊर्जा से साहित्य तथा समाज में क्रांति के बीज बो दिये हैं। स्त्री विमर्श को मैत्रेयी ने स्त्री शक्ति का अनूठा उदाहरण दिया है।

मैत्रेयी ने बचपन से अपने गाँव में भारतीय समाज की वर्ण भेद की कुप्रथा को देखा है। स्वयं ब्राह्मण कुल में जन्मी, उन्होंने निम्न वर्ण के लोगों की आत्मपीड़ा को करीब से देखा–समझा है। दिल्ली महानगर में रहते हुए सभ्य व आधुनिक समाज के भव्य ढ़कोसलों से भी वे परिचित हैं। अपने जातीय जिंदगी में वे इस व्यवस्था का पूर्ण रूप से खण्डन करते हुए अपनी सबसे छोटी बेटी सुजाता का विवाह निर्भीक होकर निम्न जाति के युवक डॉ0 नवल से पूरे आत्मविश्वास के साथ सम्पन्न करती हैं।

आधुनिक प्रगतिकामी ग्रामीण समाज की कुप्रथाओं तथा स्त्रियों के पक्ष में दोहरे मापदण्डों का खण्डन मैत्रेयी ने तटस्थ होकर किया है। शहरी स्त्रियों, नौकरी पेशा स्त्रियों के जीवन की उथल–पुथल, वाह्य आडम्बर तथा सामाजिक दशा को इन्होंने अपने विचारशील एवं बौद्धिक चिन्तन में एक स्वस्थ दिशा दी है। कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि मैत्रेयी के समग्र साहित्य एवं आत्मकथाओं का अध्ययन–मनन कर यही नतीजा निकलता है कि– उनकी व्यक्तिगत लड़ाई, समष्टिगत लड़ाई सिद्ध हो चुकी है जो आज के परिवर्तनशील संक्रमणकाल के समाज तथा व्यक्ति–व्यक्ति की कहानी है।

यों तो मैत्रेयी का राशि के अनुसार नाम पुष्पा है। परन्तु मरते वक्त पिता ने रूधी आवाज में मै....त्रे....यी कहा था। खुर्जा वाले पण्डित जी ने 'मैत्रेयी पुष्पा' नाम रखते वक्त बताया था कि मैत्रेयी कौन थीं? ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी। जिस तरह से हम मैत्रेयी को 'याज्ञवल्क्य की पत्नी' के नाम से नहीं वरन भारतवर्ष की महान ऋचिकाओं में से एक विदुषी महिला 'मैत्रेयी' के नाम से जानते हैं। आज उसी प्रकार हिन्दी साहित्य जगत में 'मैत्रेयी पुष्पा' भी एक प्रबुद्ध चेतना सम्पन्न जागरूक महिला एवं विख्यात साहित्यकार के रूप में जानी जाती हैं।

राजेन्द्र यादव आपके लेखन के विषय में कहते हैं, ''मैं सचमुच विश्वास करता हूँ कि मैत्रेयी ने जिस तरह हिन्दी कथा साहित्य को नगरों, महानगरों में बन्द और दुहराव पीड़ित दुनिया से निकालकर गाँवों, खेतों में पहुँचा दिया है वैसा पहले किसी हिन्दी लेखिका ने नहीं किया''।

मैत्रेयी पुष्पा का रचना संसार–

अपने पहले कहानी संग्रह के साथ ही न केवल चर्चित बल्कि वरिष्ठ रचनाकारों में शामिल होने का गौरव मैत्रेयी पुष्पा से पहले संभवतः किसी रचनाकार को हासिल नहीं हुआ होगा।

मैत्रेयी पुष्पा का 'किताबघर' से प्रकाशित पहला कहानी संग्रह 'चिन्हार'(1992) न केवल चर्चित रहा बल्कि हिन्दी अकादमी से पुरस्कृत भी किया। इसके बाद 'ललमनिया' (1996), 'गोमा हँसती है' (1998) में प्रकाशित हुई हैं।

मैत्रेयी पुष्पा का कहानी–संग्रह 'चिन्हार' जिसका शाब्दिक अर्थ है– पहचान की कहानी जो कि कैलाशो देवी को संतान के प्रति अत्याधिक प्रेम होने के कारण अपने ही घर से बेगाना होना पड़ा। इस कहानी के माध्यम से मैत्रेयी जी ने यह संदेश दिया है कि ज़ायदाद के मामलों में महिलाओं को अपने हकों या अधिकारों के प्रति सचेत रहना चाहिए और साथ में चेतावनी भी दी है कि अगर वह जागरूक नहीं है तो उसे बुढ़ापे में बहुत बुरे हाल, उपेक्षाओं से गुजरना पड़ता है।

इसके बाद एक के बाद एक नये उपन्यास प्रकाशित होते गये और मैत्रेयी आधुनिक साहित्य जगत की प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यासकार के सिंहासन पर विराजमान हो गईं। उपन्यास– 'बेतवा बहती रही'(1993) 'इदन्नमम' (1994) 'चाक' (1997) 'झूलानट' (1999) 'अल्मा कबूतरी' (2000) 'अगनपाखी' (2001) 'विजन' (2002) में प्रकाशित हुई। इप उपन्यासों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

'बेतवा बहती रही' : इस उपन्यास की कहानी मात्र एक उर्वशी की नहीं बल्कि भारतीय ग्रामीण, गरीब परिवारों की समस्त कन्याओं की कहानी है। राजगिरी में रहने वाली उर्वशी के घर घोर विपन्नता थी, घर में रोज खाने के लाले पड़ते थे परन्तु उर्वशी अपूर्व सुन्दरी थी। उसकी सहेली मीरा अपने नाना–नानी के यहॉ पड़ोस में रहती थी घर में घोर कंगाली होने के कारण उर्वशी स्कूल न जा सकी। पढ़ने का अधिकार लड़का होने के कारण सिर्फ उसके बड़े भाई अजीत को मिला फिर भी उर्वशी कुछ पढ़ना–लिखना सीख गई। बेतवा का किनारा उसका स्कूल बन गया और मीरा उसकी गुरु। इसके पश्चात उर्वशी का विवाह सर्वदमन से होता है परन्तु दुर्भाग्यवश कुछ दिनों के पश्चात एक्सिडेन्ट में सर्वदमन की मृत्यु हो जाती है। पुनः उर्वशी का विवाह मीरा के पिता बरजोर सिंह से कर दिया जाता है इस विवाह से उर्वशी का मन विरक्त हो जाता है। उर्वशी धीरे–धीरे बीमार रहने लगती है। वास्तव में बरजोर सिंह ने वैद्य की दवा में मिलाकर धीमी गति से असर करने वाला उसे जहर पिलाया था। उर्वशी अपने पति सर्वदमन की देहरी तक जाने की विनती करती है और सिरसा का सिवान आते ही वह दम तोड़ देती है। यह करुण अन्त केवल उर्वशी का ही नहीं, ऐसे कई उर्वशियों का यह अन्त है जो पाठकों के हृदय को झकझोर कर रख देता है।

इदन्नममः यह एक आंचलिक उपन्यास है। यथार्थ की धरातल पर लिखा हुआ सार्थक और सफल उपन्यास, जिसमें विन्ध्य की माटी की सुबास है। श्यामली और सोनपुरा गाँव पूरे विन्ध्याचल का प्रतिनिधित्व करते हैं। ''इदन्नमम में बुनी है, तीन पीढ़ियों की बेहद और संवेदनशील कहानी। कहानी जो बऊ (दादी) प्रेम (माँ) और मन्दा (उपन्यास की नायिका) तीनों को समानान्तर रखने के साथ–साथ एक दूसरे के विरुद्ध खड़ा भी करती है। विरोधाभास की इस प्रतीति को लेखिका ने सक्षमता, सूक्ष्मता और पारदर्शी भाषा जाल से बुना है जो अत्यन्त पठनीय है और अपने स्वर में मौलिक भी है''। उपन्यासकार के रूप में मैत्रेयी की सच्ची पहचान 'इदन्नमम्' के प्रकाशन के बाद ही हुई है।

चाक : मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' एक सामाजिक उपन्यास है। इसका कथानक जन–जीवन पर आधारित है। इस उपन्यास में लेखिक ने ग्राम्य जीवन के विविध पहलुओं को बड़े रोचक और स्वाभाविक ढ़ंग से उभारा है। उपन्यास

की मुख्य पात्र सारंग के माध्यम से भारतीय ग्रामीण नारी की उस समस्या को उभारने का प्रयत्न किया है जिसके कारण उसका सबसे अधिक शोषण होता आया है और वह है पुरुषों की 'कामवासना'। स्वंय मैत्रेयी कहती हैं— अतरपुर गाँव को, उसमें रहने वाली किसान— पत्नी सारंग को भी ढ़ालकर नया बना रहा है 'चाक' लेकिन बनाना एक यातना से गुजरना भी तो है। न चाहते हुए भी सारंग निकल पड़ी है, ढाले जाने की इस यात्रा पर। इसी यात्रा की कहानी यह उपन्यास है।

झूला नट : यह एक विशिष्ट लघु उपन्यास है इसमें मैत्रेयी पुष्पा ने शीलो की कहानी उठायी है। 'झूला नट' बुन्देलखण्ड की एक गाँव की सामाजिक यथा स्थिति को उकेर कर हमारे सामने लाता है। चिरगाँव के समीपस्थ गाँवों की सामान्य कथा है जो हर परिवार की निजी दास्तान है। उपन्यास में कोई उल्लेखनीय विजन नहीं है। माँ और पत्नीवत् भौजाई के सम्बन्धों के पाठ में पिसते एक भोले युवक को मानसिक उद्वेग ही उपन्यास में प्रमुख है। सास बहू के सम्बन्धों के चित्रण के साथ—साथ शीलो के रूप में एक ग्रामीण युवती ने परम्परागत मूल्यों को चुनौती दी है जो भारतीय समाज की स्त्री संहिता अथवा नियम परम्पराओं को सहजता से नकार देती है।

अल्माकबूतरी : 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में अल्मा के विद्रोह की कहानी है। अल्मा अपने पिता राम सिंह के साथ गोरामछिया में रहती है। रामसिंह घूमन्तू जीवन में ठहराव लाने और उन पर से जन्मजात रूप से जुड़े अपराधी समुदाय का तमगा हटाने का प्रयास करता है। इसके लिए उसे शिक्षक की नौकरी से हाथ धोना पड़ता है। उसकी पत्नी ने कुपोषण के कारण प्राण त्याग दिये थे अतः अल्मा के पालन—पोषण में वह जुट जाता है। मरोड़ादुर्द में रहने वाला राणा को वह अपने पास बुला लाता है क्योंकि उसके मन में पढ़ने की इच्छा थी। न कब्जा, न कबूतरा इस प्रकार उसकी अवस्था थी। कदम्बबाई पर हुए बलात्कार का नतीजा था 'राणा'। अल्मा कुँवारी माता बनने का साहस दिखाती है। भारत में आज भी कुछ ऐसी जातियाँ हैं जो अस्तित्वहीन हैं, जिनकी अपनी कोई पहचान नहीं है। समाज में आज भी उन्हें निरंतर अपराधी घोषित कर अपमान एवं तिरस्कार मिल रहा है।

विजन : मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखित 'विजन' उपन्यास वर्तमान शहरी समाज का आईना है। इस उपन्यास में लेखिका ने 'नेत्र चिकित्सा' को विशेष क्षेत्र में चुना है। इस उपन्यास में उन्होंने स्त्री शक्ति के नये आयाम खोजने और खोलने का एक साहसिक प्रयोग किया है।

कस्तूरी कुण्डल बसै : यह मैत्रेयी जी का औपचारिक आत्मकथा है जिसके अन्तर्गत इन्होंने जन्म से लेकर अस्त—व्यस्त बचपन और युवास्था का आत्मवृत्त प्रस्तुत किया है। अपनी माताजी 'कस्तूरी देवी' के दृढ़ निश्चय, उद्यमशील, संघर्षमयी जीवट माँ जो निर्धन एवं सामान्य जीवन से क्रमशः आत्मनिर्भर एवं समाज में अपना विशिष्ट स्थान बनाती हैं। उस सिद्धान्तवादी माँ का इनके जीवन पर प्रभाव और लगाव का वृत्तान्त कहती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानी एवं उपन्यास की नायिका इन सब प्रश्नों से गुजरती है। अपनी कृतियों में से नारी जीवन के पहलुओं को उजागर करने में लेखिका सफल रही है। इन्हीं मुद्दों के आधार पर उनकी कहानियों और उपन्यास को बारी—बारी देखने से पता चलता है कि आज भी हम आधुनिक युग की बात करते हैं पर नारी के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया है। वह आज भी शोषित, पीड़ित है। फ़र्क सिर्फ प्रकार का है, समय का है।

अन्ततः मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य का अध्ययन करने के पर यह ज्ञात होता है कि मैत्रेयी नारी स्वतंत्रता की पक्षधर हैं। वह नारी व्यक्तित्व की रक्षा के लिए प्रयत्नशील हैं। आर्थिक आत्मनिर्भरता, शिक्षा, सामाजिक जागृति, पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव, परिवेशगत परिवर्तन आदि के कारण नारी में नया आत्मविश्वास निर्मित हुआ है। वह स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनकर अपने निर्णय लेने में सक्षम बन रही हैं। इसके कारण परिवार, पारिवारिक संबंध और समाज में संघर्ष करती, टूटती, बिखरती तो कहीं अपने आपको स्थापित करती नारी का रूप कहानियों में उभर रहा है। घर की चाहरदीवारी से बाहर निकलकर नारी जीवन के हर क्षेत्र में अपनी भूमिका निभा रही हैं। उसके अनुभव क्षेत्र व्यापक हो रहे हैं? और अपनी नयी भूमिका और नये कार्य—क्षेत्र में वह अग्रसर है। वह पुरुष से स्पर्धा नहीं समान अवसर और सहयोग चाहती है। स्त्री—पुरुष की प्रतिष्ठा लिंग के आधार पर नहीं बल्कि गुणों के आधार पर हो ऐसी उसकी इच्छा है। वह समाज में अपने व्यक्ति रूप की प्रतिष्ठा चाहती है। वह परम्परागत जीवन—मूल्यों का केवल अनुकरण करने के बजाय उन्हें तर्क की कसौटी पर कसना चाहती है। अनुचित रूढ़ियों, परम्पराओं एवं गलत मूल्यों को नकारने का साहस उसमें उत्पन्न हुआ है। जिसके कारण समाज और संस्कृति में मूल्यों का संघर्ष निर्मित हो रहा है। व्यक्ति स्वातंत्र्य,

बंधुत्व, मानव समानता और न्याय के प्रति उसकी आस्था बढ़ी है। वह परम्परागत अनुचित मूल्यों को अस्वीकृत कर नये मूल्यों के निर्माण के लिए प्रयत्नशील है। आज की नारी के कदम भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं जिसमें वह नई व्यवस्था का निर्माण एवं स्त्री–पुरुषों की साझा मानवीय संस्कृति चाहती है।

मैत्रेयी ने अपनी रचनाओं में नारी मन को विशेष महत्व दिया है। नारी–मन की सूक्ष्म अभिव्यक्ति उनकी कृतियों की पहचान है। नारी शरीर, नारी मन, और नारी भावनाओं की अपनी विशेषता होती है जिसे इनकी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। गर्भधारण, शिशुजन्म इत्यादि से संबंधित अनुभूतियों की अभिव्यक्ति केवल महिला रचनाकारों द्वारा ही सम्भव है। पुरुष रचनाकार इन जीवनानुभवों की अभिव्यक्ति प्रमाणिक रूप में कर ही नहीं सकते, मैत्रेयी ने सक्षम प्रासांगिक, प्रखर और तीखे स्वर में अपने विचार व्यक्त किये हैं। गीतों, मुहावरों, लोकोक्तियों, लोककथाओं, फागों, गालियों वाली मैत्रेयी की भाषा सच्चे व्यक्ति के हृदय तक पहुँचने में देर नहीं लगाती।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि नारी की नई पहचान बनाने में मैत्रेयी सफल साहित्यकार हैं। भविष्य की मानव सभ्यता और मानव संस्कृति के निर्माण में मैत्रेयी का साहित्य नारी जीवन को नया आयाम देगा।

संदर्भ –

1. 'कस्तूरी कुण्डल बसै' मैत्रेयी पुष्पा, पृ0 25, 25, 30, 255
2. 'गुड़िया भीतर गुड़िया', मैत्रेयी पुष्पा, पृ0 138, 141, 340
3. 'इदन्नमम', मैत्रेयी पुष्पा, भूमिका से झ ू ल ा न ट ' मैत्रेयी पुष्पा, भूमिका से (राजेन्द्र यादव)
4. 'चाक', मैत्रेयी पुष्पा, मुख पृष्ठ से
5. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का अनुशीलन – डॉ0 सावित्री ढ़ोले
6. मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी जीवन – डॉ0 शोभा यशवंते
7. मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम – डॉ0 दया दीक्षित

■ ■ ■

'दोहरा अभिशाप' कितना दोहरा? एक पड़ताल

डॉ0 विजय कुमार वर्मा,
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
जवाहरलाल नेहरू मेमो0 पी0जी0 कालेज, बाराबंकी

सारांश

कौसल्या बैसंत्री लिखती हैं – 'बहुत अत्याचार होने पर मैंने कोर्ट में देवेन्द्र कुमार पर केस दायर किया। आज दस वर्ष से कोर्ट में केस अटका पड़ा है, मुझे हर माह 500 रुपए मेंटेनेंस के मिलते हैं। देवेन्द्र कुमार इसे देने में भी देर लगाता है। चार–चार महीने नहीं भेजता........। अपने लड़के के पास रह रही हूँ।'' कानून तो यह सही हैं, लेकिन लेखिका के पीछे माँ और नानी की महान परम्परा और दलित स्त्री संघर्ष, वह भी ब्रिटिश भारत में पढ़ी हुयी दलित स्त्री पर कितना दोहरा सिद्ध होता है। एक पड़ताल है।

सूचक शब्द : आत्मकथा, संघर्ष, तिरस्कार, भूख

कौसल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' 1990 ई0 में प्रकाशित दलित महिला जीवन के जीवन संघर्षों का चिट्ठा है। यह आत्मकथा अन्य आत्मकथाओं की भॉति अत्यधिक पीड़ा, घृणा, तनाव, जुगुप्सा आदि भावों का संचालन ही नहीं करती बल्कि लेखिका के संघर्षों के साथ उनके माँ–बाप के संघर्षों से भरे जीवन का भी चित्रण करती है।

आत्मकथा लेखन में स्वयं की कथा के साथ अपने अन्य निकटतम सम्बन्धियों की कथाओं का आ जाना, लेखिका के मन में चल रहे अन्र्तद्वन्द्व को उजागर करने में पूर्ण रूप से सफल रहा है। लेखिका के जीवन में आये दो पुरुष प्रथम पिता और दूसरा पति थे। एक ने उनकी राहों से काँटे हटाये और दूसरे ने उसी राह पर काँटें डालने में कोई कसर न छोड़ी।

प्रभा खेतान ने लिखा है – ''दलित आन्दोलन इसलिए ज्यादा सशक्त है क्योंकि वहाँ काशीराम हैं, डॉ. धर्मवीर हैं, इसलिए नहीं कि वहाँ मायावती या कौसल्या बैसंत्री है।''[1]

डॉ0 धर्मवीर 'दोहरा अभिशाप' पर प्रश्न–चिह्न लगाते हुए कहते हैं कि 'दोहरा अभिशाप' का शीर्षक इसलिए अधूरा है क्योंकि कौसल्या बैसंत्री की माँ के साथ अपने पति को लेकर ऐसा कोई अभिशाप नहीं था, उनकी माँ ने ऐसा कोई अभिशप्त जीवन नहीं जिया। मैं तो कहता हूँ उनकी बाकी तीनों बहनों ने भी कोई अभिशप्त जीवन नहीं जिया। कौसल्या बैसंत्री ब्रिटिश भारत के कालेज में पढ़ने के बाद पति से झगड़ रहीं हैं। और पति से गुजारा भत्ता माँग रहीं हैं ''जबकि उनकी छोटी बहन मधु फैमिली प्लानिंग विभाग में राजपत्रित अधिकारी के पद पर नौकरी करती रही।''[2] दूसरी छोटी बहन ''पार्वती कार्पोरेशन के स्कूल में हेड मिस्ट्रेस के पद से रिटायर हुयी।''[3] सबसे छोटी बहन ''अनुराधा ने महाराष्ट्र सरकार के सूचना और प्रसारण विभाग में नौकरी की और बाद में एक प्राइवेट स्कूल में नौकरी की।''[4] इन तीनों का जीवन दोहरा अभिशाप सिद्ध नहीं हुआ। ''लेखिका की तरह तीनों के पति नौकरी में थे, मधु के पति आई.ए.एस. अधिकारी थे, पार्वती के पति रेलवे में अच्छे पद पर थे और अनुराधा के पति पोटेटो रिसर्च इंस्टीट्यूट में वैज्ञानिक थे।''[5] लेखिका की माँ के लिए लेखिका के पिता कभी दोहरा अभिशाप साबित नहीं हुये। लेखिका उन दोनों के बारे में लिखती हैं – ''माँ–बाबा बहुत कष्ट उठाते थे हमें पढ़ाने के लिए, बाबा कभी किसी डाक्टर का या वकील का बोर्ड दीवार पर ठोंकने जाते थे, और भी कुछ काम मिले तो मिल से आने के बाद करते थे, माँ भी अब चूड़ियाँ, कुंकुम, शिकाकाई बगैरह बेचने लगीं। वह सिर्फ रविवार को ही गड्डीगोदाम, अपनी बस्ती और पास वाली पॉश कालोनी में यह सामान बेचने जाती थीं, यह काम माँ रामदास के पेट में जाने से पहले करती थी।''[6] जबकि लेखिका की माँ नागपुर के एक्प्रेस मिल में स्थायी रूप से काम करती थी। चुड़ियों, कुमकुम आदि बेचना उसका मिल में जाने से पहले अतिरिक्त काम था।

लेखिका संघर्षशील स्त्री की छवि चाहती है बिल्कुल दबंग जैसी, लेकिन पति भी मिले पढ़े–लिखे कोई दब्बू नहीं। लेखिका के शब्दों में – ''यह विद्यार्थी उस वक्त एम.ए., एल.एल.बी. करके डी.लिट्. कर रहा था। यह कानपुर से निकलने वाले हिन्दी अखबार 'सावधान' और मद्रास से

निकलने वाले एक अंग्रेजी में लेख लिखता था .... मैंने उसके लेख पढ़े थे .... वह यू.पी. शेड्यूल कास्ट फेडरेशन का अध्यक्ष भी था।''[7] लेखिका खुद पढ़ी–लिखी थी और पति भी इतने पढ़े–लिखे थे। लेकिन वह पति से अलग हो गयी। अगर दोनों साथ मिलकर काम करते तो कुछ मुकाम हासिल कर सकते थे। यहाँ न लेखिका ही कुछ कर पायी और न उनके पति ही कुछ ख़ास हासिल कर सके। यह बात जरूर है कि उन्होंने अपनी नौकरी पूरी की, स्वतन्त्रता सेनानी रहे, ताम्रपत्र प्राप्त व्यक्ति थे और राजनीति में भी सक्रिय रहे।

दलित परम्परा के अनुसार पति–पत्नी एक दूसरे पर बोझ नहीं बनते। द्विज परम्परा में अलग होना कठिन है, लेकिन दलितों के यहाँ ऐसा नहीं है। दलित स्त्री अलग होकर या साथ ही मेहनत के बल पर चार पैसे कमाकर अपना जीवन–यापन करती रहती है। यहाँ लेखिका के मन की उड़ानें ऊँची हैं, वे लिखती हैं – ''बैडमिंटन बहुत अच्छा लगता था मुझे''[8] आगे वह कहती हैं – मैंने एक्ट्रेस बनने का सपना भी देखा था।''[9] और उसके लिए वो प्रयास भी करती हैं। वे लिखती हैं – ''मेरी शालिनी नाम की एक ईसाई सहेली थी, उसने और मैंने देविका रानी को पत्र लिखा था, कि हम फिल्मों में काम करना चाहती हैं, शालिनी ने ही बांबे टाकीज का पता वगैरह ढूँढा था, कुछ दिनों के बाद बांबे टाकीज से हम दोनों को अपने फोटो भेजने के लिए पत्र आया। हम दोनों ने अपने फोटो भेजे, परन्तु हमारे फोटो फोटोजेनिक नहीं हैं, ऐसा उनका पत्र आया, हमें निराशा ही हाथ लगी।''[10] लेखिका की असफलता के पीछे पति का हाथ न होते हुए भी वह उसकी कमायी पर सभी सुख–सुविधा भरी जिन्दगी जीना चाहती थी, जो एक संघर्षशील दलित पति को गँवारा नहीं होता था।

क्या कोई दलित स्त्री ऐसा कह सकती है, जो कहते हुए लेखिका लिखती हैं – ''नौकरानी कपड़े धोंती थी, उसे भी देवेन्द्र (पति) ने छुड़वा दिया, मुझसे कहता कि मैंने तुम्हें पालने का ठेका नहीं लिया है। मैंने कहा, शादी के बाद पत्नी को पालने की जिम्मेदारी पति की होती है, मैं भी मुफ्त में नहीं खाती, यहाँ काम करती हूँ, तब कहता, बाहर जाकर काम करो और खाओ। पत्नी को वह स्वतन्त्रता सेनानी भी एक दासी के रूप में देखना चाहता था। मैं कपड़े नहीं धोती थी, इसलिए वह साबुन भी आलमारी में बंद रखता, चीनी भी बंद, थोड़ी–थोड़ी रोज लड़के के लिए, चाय के लिए एक कटोरा में रख देता। अब खुद राशन, दूध–सब्जी आदि लाता। पकाने के लिए सब्जी टेबल पर निकालकर रख देता। मैं सिर्फ खाना पकाकर रखती, घर में किसी को एक साथ टेबल पर बैठकर खाना खाने की आदत नहीं रही। जो आता वह अपने लिए खाना निकालकर खा लेता था। मैं खाना बन जाने पर खा लेती थी, तब उसने यह शिकायत मेरे भाई से की कि मैं उससे पहले खाना खा लेती हूँ, कोई जरूरी नहीं कि पत्नी सबसे पीछे खाना खाए। जिसे जब भूख लगे वह खाए, जब उस ने साबुन आलमारी में रखना शुरू किया, तब छोटे लड़के ने अपने पैसे से मुझे सर्फ का पाउडर खरीदकर दिया और राशन की चीनी चुपचाप निकालकर दी जो मैंने अपनी आलमारी में रख ली, मुझे घर आने वाली सहेलियों को चाय वगैरह पिलानी पड़ती थी।''[11] लेखिका आगे कहती है कि – ''(मैंने) कपड़े धोना बंद कर दिया, क्योंकि मैं कपड़े बैठकर नहीं धो सकती, मुझे, बहुत गम्भीर गठिया है।''[12]

यहाँ ये गौर करने की बात है कि लेखिका ने कहा है कि शादी के बाद पालने की जिम्मेदारी पति की होती है। यह उन पर द्विज प्रभाव दिखाई पड़ता है जहाँ बचपन में पिता, जवानी में पति और बुढ़ापे में पुत्र रक्षा करता है, जहाँ एक स्त्री को स्वतन्त्रता योग्य नहीं समझा जाता है। सहेलियों के साथ घर पर पार्टी करना एक पढ़ी–लिखी दलित नारी का घर पर बैठकर बेगारीपन करना है। गठिया के लिए भी लेखिका को उसकी सावधानी एवं परहेज करते हुए अम्बेडकर के संघर्षों से प्रेरणा लेनी चाहिए।

लेखिका का यह भी आरोप है कि – ''देवेन्द्र कुमार (मेरे पति) को पत्नी सिर्फ खाना बनाने और उसकी शारीरिक भूख मिटाने के लिए चाहिए थी। मुझे किसी चीज की जरूरत है, इस का उस ने कभी ध्यान नहीं दिया।''[13] अब आप देखिए यदि पत्नी कुछ बाहर का काम नहीं करती तो क्या वह यह अपेक्षा करती है कि पति आफिस से आने के बाद खाना बनाये और उसे खिलाये। जहाँ तक शारीरिक भूख की बात है तो यह उसकी खूबी है, उसके सद्गुण हैं कि इस हालात में भी वह किसी रखैल या वेश्या के पास नहीं जाता। यह उसका दाम्पत्य प्रेम ही है।

इस सबके बावजूद लेखिका का मानसिक संघर्ष चलता रहता है। जहाँ सवर्णों में विधवा विवाह को मान्यता नहीं दी जाती। वहीं दलित समाज में विधवा अगर दुबारा विवाह करे तो कोई रोक–टोक नहीं है। उसे विवाह न कह कर 'पाट' कहा जाता है। लेखिका की आजी (नानी) का भी पाट हुआ था। जहाँ उसका विवाह हुआ था वह घर ठीक–ठाक था। आजोबा (नाना) एक साहूकार थे। पहली

पत्नी से उनके एक बेटा और एक बेटी थी। उनकी पहली पत्नी लेखिका पर रौब झाड़ती रहती थी। नाना बहुत गुस्सैल स्वभाव के थे और कभी—कभी नानी पर हाथ भी उठा देते थे। नानी बहुत सुन्दर और साहसी महिला थी। रोज—रोज के झगड़े से तंग आकर एक दिन नानी तीनों बच्चों को लेकर घर से चुपचाप निकल जातीं हैं। लेकिन बीच वाली बच्ची को रास्ते में ही बुखार हो जाता है, और वह रास्ते में ही दम तोड़ देती है तो ''आजी ने अपने दिल पर पत्थर रखा। मन को काबू किया। पास में ही गड्ढे में दफ़ना दिया।''[14] आजी वापस नहीं लौटती। वह किसी तरह नागपुर पहुँच जाती हैं और दिहाड़ी मजदूरी में ईंट—पत्थर ढोने का काम करती हैं। रोज कमाना और उससे खाना दलितों की जिन्दगी है। इसी के कारण दलितों के बच्चे पढ़ नहीं पाते। लेखिका की माँ चाहती थी कि बच्चे पढ़े—लिखे क्योंकि उस पर अम्बेडकर के भाषण का प्रभाव था। उसकी माँ पर 'पढ़ो—लिखो शिक्षित बनो और आगे बढ़ो' का प्रभाव पड़ चुका था। वह पति के साथ सारे दिन मेहनत करती थी लेकिन बच्चों की पढ़ायी में बाधा नहीं होने देती। समय का अभाव होने के कारण अन्य दलित महिलाओं की भाँति लेखिका की माँ भी बच्चे को सुलाने के लिए अफ़ीम खिला देती थी जिससे वह लम्बे समय तक सोये और वह घर का सारा काम निपटा ले। लेखिका लिखती है — ''अफीम खिलाने से अहिल्या (लेखिका के माँ की ग्यारहवीं संतान) बहुत चिड़चिड़ी हो गई थी और बहुत रोती थी। उसका जिगर बढ़ गया था। एक दिन उसको तेज बुखार हुआ। माँ ने उस दिन मिल से छुट्टी ली। मूर मेमोरियल अस्पताल हमारे स्कूल के रास्ते से हटकर था। माँ ने कहा, इसे अस्पताल ले जाकर लाइन में खड़े रहना, क्योंकि बाद में बहुत बड़ी लाइन लग जायेगी। मैंने अहिल्या को पीठ पर लिया और छोटी बहन मधु ने दोनों बस्ते पकड़े। माँ ने कहा कि वह घर का काम खत्म करके अस्पताल पहुँच जाएगीं। तब हम स्कूल चले जाएंगे।''[15] लेकिन माँ के स्कूल पहुँचने से पहले ही अहिल्या की मौत हो जाती है। यह एक लाचार और मज़बूर माँ की स्थिति थी जो काम के दबाव में बच्चे को इलाज का भी समय नहीं दे पाती।

लेखिका अपने पिता के बारे में बताती है कि बाबा बहुत परिश्रमी थे और उन्हें खाली बैठना बिल्कुल पसंद नहीं था। वे कभी ढीली खाट कसते तो कभी यहाँ—वहाँ कील ठोकते। कभी घर के खपरैल टूट जाते तो नए खपरैल डालकर छत दुरस्त करते थे। वे माँ के किसी काम में दखल नहीं देते थे अलबत्ता घर के अनेक कामों में उनका हाथ बँटाते थे। वे रोज मिल से आने के बाद सीने का काम करते थे। वे थोड़ी बढ़ईगीरी भी जानते थे। उन्होंने बच्चों के पढ़ने के लिए एक टेबल बनाया जिसके नीचे किताबें रखने के लिए अलमारी भी बनाई थीं। उन्होंने एक स्टूल भी बनाया था जिसे घर के एक कोने में रखा गया था तथा जिस पर जनाबाई का काढ़ा हुआ मेज़पोश बिछाया था और काँच के गिलास में कागज के फूल सजाकर रखे थे। लेखिका के कहने पर बाबा ने घर का नाम मनोहर सदन रखा था तथा उन्होंने एक लोहे की पट्टी पर घर का नाम लिखकर बाहर टाँग दिया था।''[16] स्पष्ट है कि लेखिका के घर में पढ़ाई को बहुत तरजीह दी जाती थी यही कारण है कि उनकी बाकी बहनें भिन्न—भिन्न पदों पर सेवारत रहीं।

भारतीय समाज में स्त्री अपनी बात रखने की अधिकारी नहीं थी चाहें व दलित हो या सवर्ण स्त्री। वह पुरुष की दासी मात्र थी। स्त्री को बाहर कार्य करते समय सवर्ण पुरुष के शोषण के साथ पति के भी शोषण का शिकार होना पड़ता था। लेखिका लिखती है — ''सखाराम की औरत दिहाड़ी पर मजदूरी कर रही थी। वह सीमेंट—ईंट ढोकर मिस्तरी को देती थी। वह देखने में सुन्दर थी। मिस्तरी बदमाश था। वह आते—जाते उसे छेड़ता था। एक दिन उसने सीमेंट का गोला बनाकर उसकी छाती पर मारा। उस औरत ने उसे गालियां दी परन्तु वह बेशर्म हँसता रहा। साथ में खड़े मजदूर भी यह देखकर हँस रहे थे। यह बात उस औरत ने अपने पति से कही। पति का काम था जाकर उस बदमाश को डाँटे फटकारे। परन्तु उसने अपनी औरत को ही डाँटना शुरू किया, मारा और कहने लगा कि और औरतें भी तो वहाँ काम करती हैं, उन्हें वह कुछ नहीं कहता और तुम्हें ही क्यों छेड़ता है? तुम ही बदचलन हो, यह कहकर उसे रात भर घर के बाहर रखा। वह बिचारी घर के पीछे रात भर डर—डर के रही और सबेरे उसे गधे पर बैठाया गया। बस्ती से बाहर निकालने के बाद वह बेचारी झाड़ी में छिपी रही, क्योंकि उसके बदन पर कपड़े नहीं थे। रात में वह बस्ती के कुएं में कूद गई। सबेरे उसका शरीर पानी के ऊपर तैर रहा था। उसके माँ—बाप आए और कहने लगे कि इसने हमारी नाक कटवाई, अच्छा ही हुआ कि यह कुलटा मर गई।''[17] दलित स्त्री का जीवन—संघर्ष किसी त्रासदी से कम नहीं था। भूख से लड़ाई, अस्मिता की रक्षा, अपमान, शोषण आदि उसके जीवन का अंग बन चुका था।

लेखिका अपने प्रसूति के दिनों को याद करते हुए

ISSN : 0975-5403

कहती है कि यह जानते हुए कि प्रसव के दिन समीप हैं वह (पति) दौरे पर चला जाता है। बड़ी मुश्किल से वह अपने को प्रसव के लिए तैयार करती है और किसी को दाई को बुलाने के लिए भेजती है। किसी तरह गाड़ी का बंदोबस्त भी स्वयं करती है और अस्पताल में भर्ती होती है। वही एक बेटे को जन्म देती है। पति सबेरे–सबेरे दौरे से वापस आता है और पता चलने पर अस्पताल आता है। लेखिका लिखती है – ''मुझे जनरल वार्ड के पलंग पर लिटा दिया गया था। अब मुझे थोड़ा होश आने लगा था। सिर भारी हो गया था। आँखें भी नहीं खुल रही थी। तब देवेन्द्र की थोड़ी आवाज सुनायी दी। वह डाक्टर से कह रहा था कि इसे प्राइवेट वार्ड में रखो। मैं बड़ा आफिसर हूँ, इसकी शान उसे दिखानी थी .... देवेन्द्र जैसे आया वैसे ही चला गया। मुझे मिला ही नहीं। न मेरी हालत के बारे में पूछा। और जाते वक्त मात्र तीस रुपये देकर गया था।''[18] यह तीस रुपये तीन रुपये रोजाना के हिसाब से दस दिन का हास्पिटल का किराया था। बाकी खर्चें के बारे में लेखिका के हालत पर छोड़ दिया यह भी नहीं सोचा कि उसकी और दूसरी जरूरतें भी हो सकती हैं।

लेखिका कहती है कि – ''क्या ऐसे पति से प्यार, श्रद्धा हो सकती है?इस प्रसंग को याद आते ही मेरा खून खौलने लगता है।''[19] स्पष्ट है कि दलित स्त्री सर्वण पुरुषों के द्वारा प्रताड़ित हुई। उसी प्रकार दलित पुरुषों के द्वारा भी विभिन्न प्रकार के आरोप–प्रत्यारोप लगाये जाते रहे हैं।

इस प्रकार इस आत्मकथा में पुरुष प्रधान समाज में स्त्री का निरंतर शोषण, उसके अस्तित्व और अस्मिता का संकट तथा उसका संघर्ष आदि महत्त्वपूर्ण पहलू उभर कर सामने आते हैं। लेखिका की माँ सच में कमाल की दलित महिला के रूप में चित्रित है। लेखिका और उसकी माँ के संघर्षों के अन्तर को समझा जा सकता है। लेखिका का संघर्ष अपने घर में पति के साथ अधिक रहा है और माँ अपने पीढ़ी के बेहतर भविष्य के लिए अनपढ़ होकर भी एक बेहतरीन माँ–शिक्षिका का रोल अदा करती रहती है। लेखिका कहती है – ''माँ किसी से सुनकर आई थीं कि डायरी लिखना अच्छा रहता है बस, मेरे पीछे पड़ गई कि डायरी लिखा करो। मैंने थोड़े दिन लिखी थी, फिर छोड़ दी आलस के मारे। अब मुझे पश्चाताप् होता है कि मैंने डायरी लिखना क्यों छोड़ा?''[20]

'दोहरा अभिशाप' लेखिका की आजी नाम की विधवा नानी के पुनर्विवाहित एक दलित विधवा के परिवार की कहानी है। इसमें लेखिका की माँ एक सशक्त संघर्षशील दलित स्त्री के रूप में दिखायी पड़ती है। जो शिक्षा के बल पर अपनी अगली पीढ़ी को बेहतर भविष्य की सोच रखते हुए आगे बढ़ती है जिसमें वह सफल भी होती है। भले ही लेखिका उस परम्परा को भली–भाँति आगे बढ़ाने और सफलता पाने में पूर्ण समर्थ न दिखायी देती हो, लेकिन सिर्फ सवर्ण पुरुष ही नहीं बल्कि दलित स्त्री–पुरुष को दोहरे चरित्र इस आत्मकथा के माध्यम से प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल हुई है। लेखिका के कथन से यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है कि दलित स्त्री का शोषण सवर्ण पुरुषों द्वारा ही नहीं बल्कि उसके अपने पति व परिवारों द्वारा भी होता है। यही विडम्बना पूर्ण दलित स्त्री जीवन की कथा 'दोहरा अभिशाप' में उभर कर सामने आया है।

संदर्भ –

1. सवर्ण पति बनाम दलित पति, प्रभा खेतान, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा0लि0, दिल्ली जून 2003, पृ0 56
2. दोहरा अभिशाप, कौसल्या बैसन्त्री, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ0 107
3. वही, पृ0 107
4. वही, पृ0 107–108
5. वही, पृ0 107–108
6. वही, पृ0 63
7. वही, पृ0 94–95
8. वही, पृ0 86
9. वही, पृ0 66
10. वही, पृ0 66
11. वही, पृ0 106
12. वही, पृ0 106
13. वही, पृ0 104
14. वही, पृ0 20
15. वही, पृ0 56
16. वही, पृ0 83–84
17. वही, पृ0 56
18. वही, पृ0 118
19. वही, पृ0 119
20. वही, पृ0 74

■ ■ ■

राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में चित्रित स्त्री–पुरुष संबंध

डॉ0 बृजेशधर दुबे, शोध–निर्देशक
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
सस्वती विज्ञान महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

अभयराज सिंह
शोध छात्र, हिंदी विभाग
सस्वती विज्ञान महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सम्बद्ध : अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म0प्र0)

स्त्री–पुरुष संबंधों से संबंधित बहुत सी कहानियाँ हमें प्राचीन ग्रन्थों में मिल जाती है जो जायज़ या नाजायज़ रिश्तों की तुला पर तौली जाती है। इस तुला का आधार क्या है? यह बात सोचने की है। इन संबंधों के मापदण्ड निर्धारित कौन करता है? क्या समाज द्वारा स्वीकृत संबंध को जायज़ और न स्वीकृत संबंध को नाजायज़ ठहरा देना उचित है? क्या संबंधों का निर्वाह कर रहे दोनों व्यक्ति की इच्छा का महत्व है? क्या स्त्री–पुरुष को संबंधों को अपनाने और त्यागने का अधिकार है या नहीं? इस लिहाज से देखा जाए तो स्त्री को संबंधों को न तो अपनाने का अधिकार था न ही त्यागने का। भले ही ग्रंथों से कुछ छिट–पुटे उदाहरण देकर इस बात को गलत साबित किया जाता है। समकालीन समय में संबंधों के विविध रूप लिव–इन–रिलेशनशिप, समलैंगिकता जैसे संबंध इसी तरह की धारा के परिणाम हैं जिसे जायज़–नाजायज़ की तुला पर अभी तौला जा रहा है। साहित्य में विशेष कर आधुनिक विधाओं कहानी, उपन्यास, आत्मकथा में स्त्री–पुरुष के इन्हीं संबंधों को विविध दृष्टियों से रेखांकित किया जा रहा है। महिला व पुरुष कथाकार दोनों अपने–अपने दृष्टिकोण से स्त्री–पुरुष संबंधों को निर्धारित करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हिन्दी उपन्यासों में स्त्री–पुरुष संबंधों का प्रतिपादन मुख्यतः दो स्तरों पर किया जाता है– पारिवारिक स्तर पर, सामाजिक और मानवीय स्तर पर। राजेन्द्र यादव ने अपने लेखन में स्त्री–पुरुष संबंधों को पारिवारिक स्तर पर रेखांकित किया है।

स्त्री–पुरुष संबंधों को पारिवारिक स्तर पर समझने के लिए उनकी सामाजिक परिस्थितियों को भी दृष्टि में रखना पड़ता है। राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में प्रेम को स्त्री–पुरुष संबंधों की स्थापना के आधार के रूप में दर्शाया गया है। करुणा, दया की भांति प्रेम भी भावात्मक मूल्यों की श्रेणी में आता है। स्त्री–पुरुष संबंधों को जोड़ने वाले अर्थ, काम तथा सामाजिक आवश्यकताओं में प्रेम को सर्वोपरि माना जाता है। स्त्री–पुरुष के प्रेम संबंधों को दो रूपों में हम देख सकते हैं– विवाह सापेक्ष प्रेम संबंध, विवाह निरपेक्ष प्रेम संबंध स्त्री–पुरुष संबंधों को टूटना और टूटने के बाद फिर बनने की तलाश राजेन्द्र के उपन्यासों की कथावस्तु का केन्द्रीय स्वर है। पारस्परिक संदर्भों से अलग हटकर उन्होंने इन संबंधों को रेखांकित किया। ''सारा आकाश' उपन्यास में पति–पत्नी के बीच की संवादहीनता की स्थिति बनी रहती है। इसमें राजेन्द्र यादव बतलाते हैं कि हमारा समाज पुरुष प्रधान रहा है। स्त्री की अस्मिता को आज भी स्वीकारा नहीं जाता। पुरुष ने अपने दंभ के कारण स्त्री को सदा नकारा साबित किया है। एक लड़की अपने मन में न जाने कितने इंद्र धनुषी कल्पनाओं को समेटे आती है। प्रभा भी वैसे आयी पर समर ने उसे दिया केवल तिरस्कार, अपमान।''[1] पर जब सब बातें साफ हो जाती है, तब उनके स्नेह को भी उपन्यासकार ने बहुत अपनेपन से बाँधा है। इसमें मध्यवर्गीय जीवन की विषमताओं का चित्रण भी किया गया है। संयुक्त परिवार के लोग पति–पत्नी के संबंधों को बनाने बिगाड़ने में कितना दख़ल देते हैं। दहेज न दे पाने के दुष्परिणाम क्या होते है, आदि प्रश्नों के उत्तर में समर की पत्नी प्रभा के चरित्र को रखा गया है। 'उखड़े हुए लोग' में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से प्रभावित स्त्री–पुरुष संबंधों का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में लेखक स्वतंत्र भारत में रूढ़ परम्पराओं का उन्मूलन करने निकले शरद और जया की कथा का चित्रण करते है। ''जया शरद प्रेम करते हैं, पर अपनी शर्तों पर प्रेम को वह नितांत वैयक्तिक अनुभूति मानते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि जैसे समाज व्यवस्था से इसका कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। वह दोनों घर से जाने का निर्णय लेते हैं। दोनों ही बिना विवाह किये साथ रहने का प्रयोग करते हैं।''[2] क्योंकि उनकी मान्यता है कि व्यक्तिगत फैसलों में या सोच में समाज को बाधक बनने का कोई हक नहीं है। वह विवाह को मात्र एक समझौता मानते हैं जो उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता में बाधक हो सकता है। 'कुलटा'

उपन्यास में मध्यवर्गीय खोखले जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने स्त्री–पुरुष संबंधों के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए यह बताने का प्रयत्न किया है कि अनेक प्रकार की बंदिशों तथा स्त्री के आचरण के कारण वैवाहिक संबंध कैसे तनावपूर्ण होते–होते अंत में टूट जाते हैं।

''शह और मात' में उदय प्रकाश और सुजाता के माध्यम से रचनाकर्म में संलग्न सह–यात्रियों के पारस्परिक संबंधों का अंकन है।''[3] 'अनदेखे अनजाने पुल' में राजेन्द्र यादव ने मनोवैज्ञानिक ढंग से कुछ स्त्री–पुरुष पात्रों को विश्लेषित कर उन्हें अपनी कथावस्तु के केन्द्र में रखकर नारी के प्रति अपने विचारों को अभिव्यक्ति दी है।

'एक इंच मुस्कान' में अतृप्त महत्वाकांक्षाओं और नैतिक मूल्यों के ह्रास के कारण स्त्री–पुरुष संबंधों के विघटन को जीवंत संदर्भों में दर्शाया है। 'मंत्रविद्ध' उपन्यास में प्रेम रूप माँग से बंधे हुये युवक–युवती का चित्रण किया गया है। इस प्रकार राजेन्द्र यादव ने अपने उपन्यास लेखन में स्त्री–पुरुष संबंधों को विविध संदर्भों में, विविध स्तरों पर विश्लेषित करने का प्रयत्न किया है। इन उपन्यासों की कथावस्तु की संरचना स्त्री–पुरुष के विवाह पूर्व व विवाहोत्तर संबंधों की संश्लिष्टता को जीवंत संदर्भो में संप्रेषणीय बनाने के उद्देश्य से की गई है। ''स्त्री–पुरुष के संबंधों पर युगीन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक परिवेशगत विडंबनाओं के प्रभाव को यथार्थ के धरातल पर दर्शाया गया है।''[4] विवाह पूर्व व विवाहेत्तर संबंधों का अंकन करने के संदर्भ में उपन्यासकार ने मनोविज्ञान का सहारा लेकर संबंध–विघटन के कारणों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। स्वेच्छाचार और दमित वासनाओं की अतृप्ति के कारण नारी की मानसिकता को परखने में उपन्यासकार ने अपनी गहन समझ का परिचय दिया है। इन उपन्यासों में स्त्री–पुरुष के चरित्रों को सामाजिक मान्यताओं तथा परम्पराओं के नीचे दबने नहीं दिया। राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में स्त्री–पुरुष संबंधों पर पारिवारिक, सामाजिक जीवन स्थितियों के प्रभाव को देखा जा सकता है। पात्र संयुक्त परिवार में आस्था–अनास्था के कारण तनावपूर्ण वैवाहिक संबंधों को झेलने के लिए अभिशप्त होते हैं। राजेन्द्र यादव ने विशेष रूप से स्त्री–पुरुष के वैवाहिक जीवर पर प्रकाश डालते हुए तनाव व विघटन के कारणों को जीवंत संदर्भों में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। ''अनमेल विवाह के कारण दाम्पत्य जीवन में अभाव, असामंजस्य व प्रेमहीनता की स्थिति को विवेच्य उपन्यासों में चित्रित किया गया है।''[5] वैवाहिक जीवन में नैतिकता के अभाव के प्रति चिंता प्रकट की गई है। 'सारा आकाश' में पति–पत्नी के संबंधों और कौमार्य संबंधों के दुष्प्रभाव को दर्शाया गया है। 'मंत्रविद्ध' उपन्यास युवा पीढ़ी की कई समस्याओं तथा स्त्री–पुरुष संबंधों को प्रभावित करने वाली ताकतों का जिक्र करते हुए अंतर्जातीय वैवाहिक बंधन में बँधकर अपने भविष्य के निर्माण के लिए स्वतंत्र रूप से मार्ग का चयन करने और समाज की लांछना का तिरस्कार कर अपने वैवाहिक संबंधों को आदर्शमय बनाने में युवा पीढ़ी की चारित्रिक दृढ़ता को प्रस्तुत किया गया है। 'सारा आकाश', 'कुलटा' और 'एक इंच मुस्कान' उपन्यासों में रूढ़िगत सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध क्रांतिकारी कदम के रूप में पुर्नविवाह को समर्थन दिया गया है। उपन्यासकार ने स्त्री–पुरुष संबंधों से जुड़े विविध पक्षों जैसे सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक का अपनी रचनाओं में अंकन किया है। सारा आकाश, एक इंच मुस्कान, मंत्रविद्ध, और उखड़े हुए लोग उपन्यासों में स्त्री–पुरुष संबंधों पर कई पारिवारिक तथा सामाजिक स्थितियों, परम्परागत जीवन–मूल्यों व आदर्शों के प्रभाव को दर्शाया गया है। 'उखड़े हुए लोग' उपन्यास में जातिगत संस्कारों की भिन्नता को वैवाहिक संबंधों के कारण के रूप में दर्शाया गया है। आलोच्य उपन्यासों में स्त्री–पुरुष संबंधों पर महानगरीय परिवेश के हादसों और आर्थिक तंगी के दुष्प्रभावों को भी दर्शाया गया है। युगीन सामाजिक गतिविधियों, आर्थिक विडंबनाओं, धार्मिक व सांस्कृतिक स्थितियों के दबाव के कारण स्त्री–पुरुष के संबंधों और संघर्ष को चित्रित करना राजेन्द्र यादव के उपन्यासों का उद्देश्य रहा है जिसकी प्रस्तुति में उपन्यासकार पूर्णतः सफल रहा है।

सन्दर्भ :

1– राजेन्द्र यादव, सारा आकाश, राज कमल प्रकाशन, दिल्ली, 1959 पृ.सं.–53

2– उखड़े हुए लोग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1956, पृ.सं.–85

3– शह और मात, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, 1959, पृ. सं.–105

4– अनदेखे अनजाने पुल, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, 1963, पृ.सं.–90

5– एक इंच मुस्कान, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, 1963, पृ.सं.–163

■ ■ ■

एस. आर. हरनोट की कहानियों में चित्रित स्त्री चेतना

डॉ. रेखा श्रीवास्तव
आचार्य एवं शोध निर्देशक, हिंदी विभाग
इन्दिरा गाँधी पी.जी. कालेज, अमेठी, उ.प्र.

सिमरो देवी
शोधार्थी, हिंदी विभाग
इन्दिरा गाँधी पी.जी. कालेज, अमेठी, उ.प्र.

(सम्बद्ध : डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र))

एस. आर. हरनोट जी किसी पहचान के मोहताज़ नहीं है, हरनोट जी सहज सरल व्यक्तित्व के मालिक हैं । वे हिमाचल के ऐसे एकमात्र कहानीकार हैं जिन्होंने अपनी लगन व परिश्रम से कथावस्तु ,शिल्प, भाषा आदि के आधार पर हिंदी साहित्य में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। उनका का मानना है कि आज की भाग–दौड़ भरी जिंदगी में बहुत सी चीजें ऐसी हैं, जिन्हें हम पीछे छोड़ते जा रहे हैं। हरनोट जी को कई राष्ट्रीय और अंतरर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से भी नवाजा गया है। हरनोट जी एक ऐसे कथाकार हैं जिनके साहित्य को आज देश में ही नहीं बल्कि विश्व में भी पढ़ा व सराहा जा रहा है। विभिन्न भाषाओं में इनकी कहानियों का अनुवाद किया जा रहा है। अनेक विश्वविद्यालयों ने इनकी कहानियों को पाठ्यक्रम में शामिल किया है। बहुत से शोधार्थी इनकी कहानियों पर शोध कर रहे हैं और बहुत से शोधार्थी शोध कर भी चुके हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में कड़वे यथार्थ का वर्णन किया है। हरनोट की कहानियों में स्त्रियों का एक विशिष्ट स्थान है। हरनोट जी की प्रत्येक कहानी में स्त्री की एक विशेष भूमिका होती है। फिर वह भूमिका चाहे एक माँ के रूप में, पत्नी के रूप में, दादी के रूप में, बेटी के रूप में हो। स्त्री–विमर्श उनकी कहानी का एक महत्वपूर्ण पहलू रहा है। हरनोट जी की कहानियों में प्रायः स्त्री का मुखर रूप ही परिलक्षित होता है।

स्त्री अस्मिता की लड़ाई को लेकर हरनोट जी की नवीनतम् कहानी है –भागा देवी का चाय घर' भागा देवी को अपनी मजबूरी में चाय बेचकर गुजारा करना पड़ रहा है क्योंकि उसका पति विकलांग है।लेकिन जो लोग चाय पीने के लिए आते हैं वे चाय कम पीते हैं और भागा देवी के शरीर को ज्यादा घूरते हैं। बाहर बैठे लोग कनखियों से भागा के रंग–रूप और पहनावे को झाँकते नहीं थकते उनकी निगाहें चाय पर कम भागा पर ज्यादा जमीं रहती हैं।"[1] अपने पति के विकलांग हो जाने पर भागा घर की जिम्मेदारी उठाती है तथा बच्चों को भी पढ़ाती है। उनकी पढ़ाई के लिए दिन –रात मेहनत करती है अपनी इन परिस्थितियों के सामने भागा घुटने नहीं टेकती बल्कि कड़ी मेहनत करती है। भागा की चाय की दुकान भी ऐसी जगह थी जहाँ माफिया लोग व विभिन्न कंपनियों के लोगों का आना–जाना लगा रहता था।

भागा के पति भी अब उन कंपनी वालों के साथ आते रहते थे। "कुछ दिन से भागा के पति के साथ कई मोबाइल कंपनियों के कर्मचारी और अधिकारी भी आने लगे थे। वे इस प्रयास में थे कि उनका नेटवर्क पहाड़ों के दूरदराज इलाकों तक पहुँचे। हर घर में उनके मोबाइल हों।"[2]

इन कंपनियों ने भागा के जिस्म के हर भाग के लिए बोली लगा दी है। "कंपनियों ने आपस में करार कर लिया है कि शरीर का कौन सा भाग किस कंपनी का होगा 'जी' और 'ए' कंपनी का बैनर छाती पर लगेगा 'बी' का सिर और माथे पर। 'वो' का पेट और 'आर' कंपनी का कमर से नीचे की ओर। भागा पति के मुँह से यह बात सुनकर अचंभित हो जाती।"[3]

लेकिन भागा किसी भी हालत में बिकने को तैयार नहीं है। उसे यह मंजूर नहीं कि कोई उसे गंदी नज़रों से घूरे। इज्ज़त और आबरू को लेकर स्त्री की संवेदनशीलता हरनोट की कहानियों की प्रमुख विशेषता रही है। यह 'भागा देवी का चाय घर' की इन पंक्तियों में साफ झलकता है अपने पति द्वारा अपने शरीर के हर अंग पर पोस्टर चिपकाने को लेकर इतनी गुस्सा होती है कि अपने पति को ही धक्का मार कर फेंक देती है। "भागा को स्वयं पता नहीं चलता कि वह पति के मुँह पर एक जोरदार तमाचा कब धर देती है। तमाचा इतने जोर का पड़ता है कि वह भागा के पास से कई फुट दूर लुढ़कता हुआ दरवाजे के पास जा गिरता है।"[4]

इस प्रकार स्त्री परिस्थितियों के अनुसार कब दुर्गा –काली का रूप धारण कर लेती है। कहानी में भागा ने भली–भाँति समझा दिया है।

स्त्री मेहनत व इज्ज़त से अपने पूरे परिवार को पालने की क्षमता रखती है। लेकिन जब उसे लगे कि उसकी इज्ज़त पर प्रहार हो रहा है तो वह किसी को भी नहीं छोड़ती

है।

स्त्री जीवन के संघर्षों से जुड़ी हरनोट जी की एक महत्वपूर्ण कहानी 'दारोश' है। 'दारोश' का अर्थ है जबरदस्ती या बलपूर्वक विवाह। 'दारोश' कहानी में हरनोट जी ने कहानी की स्त्री पात्र कानम को इस प्रथा के विरुद्ध समाज से लड़ते हुए दिखाया है। हिमाचल प्रदेश में प्रचलित एक प्रथा में लड़की के साथ पहले जबरदस्ती की जाती है और फिर उसे विवाह के लिए जबरन मजबूर किया जाता है। लेकिन कानम एक बहुत ही निडर व संघर्षशील लड़की है। वह इस प्रथा के आगे कमजोर नहीं पड़ती है बल्कि इस प्रथा का विरोध करती है। कानम ने इस प्रथा का किस प्रकार विरोध किया इन पंक्तियों में साफ झलकता है। "कानम किस तरह से उनकी गिरफ्त से अलग हुई किसी को पता नहीं चलता। उसके बाद लातों–घूसों और सिर से कानम ने उनकी जिस तरह पिटाई की, वह किसी के लिए भी हैरत में डाल देने वाली थी। दूसरी औरतों ने कानम को पकड़ा न होता तो क्या पता वह उसे जान से ही मार देती।"[5]

इस प्रकार हरनोट जी ने अपने प्रत्येक कहानी में नारी की ताक़त का चित्रण बहुत ही सशक्त ढंग से किया है। हरनोट जी ने अपनी कहानियों में सिद्ध कर दिया कि आधुनिक स्त्रियाँ न केवल मानसिक रूप से अपितु शारीरिक रूप से भी अपने ऊपर हो रहे अत्याचार का करारा जवाब दे सकती हैं। 'दारोश' जैसी कहानी से तो आज की हर लड़की प्रेरणा ले सकती है।

हरनोट जी की बहुत सी कहानियों में माँ के अलग–अलग रूप भी देखने को मिलते हैं। माँयें नामक कहानी में हरनोट जी ने पाँच प्रकार की माँओं का वर्णन किया है। पाँचों माँयें अपनी–अपनी भूमिका निभाती हैं पहली माँ बंदरिया के रूप में भूमिका निभाती है जो अपने बच्चे को हमेशा अपनी छाती से चिपकाए रखती थी अपने मरे हुए बच्चे को तब तक अपने हाथ में उठाए रखा जब तक उसका शेष कुछ भी उसके पास नहीं बचा। "अब उसका हाथ ही खाली नहीं था जैसे जीवन ही खाली –खाली हो गया हो कोई उसकी आँखों में झाँक कर देखता तो जानता कि उस बच्चे के खोने का कितना दर्द उन छोटी–छोटी आँखों में भरा रहता।"[6]

दूसरी माँ ने कई बच्चे जने,लेकिन वह उन्हें न रहने को मकान दे सकी और न पेट भरकर रोटी क्योंकि यह माँ एक भिखारिन थी और उसके बच्चे भी भिखारी बने।

तीसरी माँ ने जब बच्चा जना तो वह इतनी परेशान हो गई कि उसे पैदा होते ही कचरे के ढेर में फेंक दिया क्योंकि उसके घरवाले चाहते थे कि उनके घर बेटा पैदा हो। जब 8 महीने हुए तो उसके पति ने एक क्लीनिक में खूब पैसे देकर यह पता लगवा लिया कि उसकी पत्नी के पेट में लड़का नहीं बल्कि लड़की ही है। फिर क्या था पूरे घर में जैसे तूफान आ गया। जिस दिन उस माँ ने उस नन्हीं सी जान को जन्म दिया उसी दिन अस्पताल से घर आते वक्त उन्होंने उसको एक कचरे के ढेर में फेंक दिया। बहुत ही जघन्य अपराध किया उन्होंने बच्ची को फेंककर। आज भी बहुत से परिवारों में लड़के की चाहत में न जाने कितनी लड़कियों को कोख में ही मार दिया जाता है। हमें बेटियों की कीमत को पहचानना होगा, बेटियाँ अनमोल हैं। आज तो किसी भी क्षेत्र में बेटियाँ बेटों से पीछे नहीं बल्कि दो कदम आगे ही हैं। यह बात हरनोट जी ने माँयें कहानी में बखूबी बताई है।

स्त्री विमर्श से संबंधित एक और कहानी है 'लाल होता दरख्त' इस कहानी में हमें लोक–परंपरा और बाल–विवाह दोनों ही दिखाई देते हैं। इसे सामाजिक कुरीति कहें या अंधविश्वास या हमारी सड़ी–गली कुप्रथाएँ जिनको हमारा समाज अभी भी कुछ जगहों पर निभा रहा है। आज भी अपनी झूठी शान और दिखावे के लिए छोटी–छोटी बालिकाओं का विवाह करा दिया जाता है क्योंकि उनकी सोच होती है कि अगर इनका विवाह नहीं किया तो यह बड़ी होकर खानदान की नाक न कटा दें। वैसे भी बेटियाँ पराया धन होती हैं उनको पराए घर तो जाना ही है।"बेटी पराए घर का धन है उसे घर का सारा काम आना चाहिए इसलिए इस छोटी सी उम्र में मुन्नी घर के हर काम में आगे है।"[8]

इस कहानी में मुन्नी को जब पता चलता है कि उसके विवाह की चिंता में उसके पिता रात–दिन डूबे हैं लेकिन विवाह के लिए उनके पास पैसा नहीं है। जो ज़मीन थी वह भी रहन रखी हुई थी। तो मुन्नी ने अपने माता–पिता की खुशी के लिए पीपल के पेड़ से शादी कर ली। छोटी उम्र में लड़कियों का विवाह कर देना राष्ट्र के विकास के लिए ख़तरनाक साबित होता है साथ ही उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। छोटी उम्र में ही वे कई भयानक बीमारियों की शिकार हो जाती हैं, जो कि राष्ट्र की उन्नति के लिए अच्छा नहीं है। इसी कहानी में लोक–परंपरा के माध्यम से पेड़–पौधों के साथ छोटी लड़कियों का विवाह करवा देने की प्रथा को दिखाया गया है। "आँगन की तुलसी का विवाह विधि पूर्वक बेटी के विवाह जैसा होता है इसे बड़ा धर्म माना है।"[9]

 ISSN : 0975-5403

हरनोट जी के अनुसार पहाड़ी अंचलों में आज भी प्राचीन परंपरा अनुसार पीपल का विवाह बेटे की तरह होता है जैसे की कहानी में मुन्नी का विवाह पीपल के पेड़ से हो गया था। कहानी में बताया गया है कि बेटियों को पढ़ाने की अपेक्षा उनके विवाह की ज्यादा चिंता होती है। जिन माता पिता को बेटी की शिक्षा के लिए धन इकट्ठा करना चाहिए था,वे दहेज के लिए पाई –पाई जोड़ते हैं। समाज को समझ लेना चाहिए कि इन कुप्रथाओं से कभी भी समाज प्रगति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता।

हरनोट जी की कहानियों की ही तरह उनके उपन्यासों में भी स्त्री का कोई न कोई रूप उभर कर सामने आया है। हरनोट जी के उपन्यास 'नदी रंग जैसी लड़की' में भी सुनमा देई नामक लड़की के माध्यम से एक निडर, साहसी औरत की व्यथा का वर्णन हुआ है। उस समय लड़कियों को स्कूल जाने की मनाही थी,ऐसे समाज में सुनमा देई जैसी औरतों का अपने पति स्वयं शमशान पर ले जाकर अंतिम संस्कार में भाग लेना परंपरा से चली आ रही रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास एक सराहनीय कदम है। उपन्यास में एक बात साबित कर दी है कि एक ओर जहाँ लोग चाँद पर ज़मीन खरीदने की बात कर रहे हैं। वहीं दूसरी तरफ लड़कियों के प्रति अपनी घटिया मानसिकता बनाए हुए हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में आज भी लोगों का मानना है कि माँ–बाप का अंतिम संस्कार बेटा ही करेगा। लेकिन सुनमा देई ने इसका खंडन करके समाज को एक नई दिशा दी है। लोगों ने सुनमा देई का स्वयं सभी क्रिया–कर्म करने पर बहुत विरोध किया, किन्तु सुनमा ने किसी की परवाह नहीं की– "मैं अपने बालक राम को अपनी साँसो में जिंदा रखना चाहती हूँ.... अपने भीतर बसाये रखना चाहती हूँ ....वह क्यों लावारिस की तरह इस अंतिम यात्रा में जाए और क्यों अपने साथी के होते हुए अकेला जाए.... माना हमारे बेटा नहीं है जिसे इन संस्कारों को करना था.... मैं बालक राम की पत्नी ही नहीं बेटा भी हूँ ,उसका भाई भी ,पिता भी। सोचो दादा, जब दादी जिंदा थी.... उन के कितने रूप हमारे घर में थे.... मेरे लिए बालकराम उसी तरह है और रहेगा।"[10]

सुनमा देई की बेटियों व दामादों ने अंतिम संस्कार की सारी रस्में की। सुनमा देई ने अपने रीति– रिवाजों के मुताबिक सभी संस्कार स्वयं पूरे किए थे। उसने यह हक़ किसी को नहीं दिया। जबकि यह बात किसी के गले नहीं उतरी। घर– घर में सभी लोगों ने इस कर्म की तीखी भर्त्सना की। जिसके मन में जो आया बकता कहता गया । लेकिन सुनमा से किसी की भी कोई बात करने की हिम्मत हुई और न ही इन शोक के दिनों में कोई उसके घर आने से रुका। सुनमा ने अपने पति का पिंडदान भी खुद ही किया। इस उपन्यास में सुनमा देई परंपरागत सामाजिक मान्यताओं से स्वयं को अलग करते हुए एक नई लीक पर चलती है। हरनोट जी ने एक स्त्री सुनमा देई के माध्यम से समाज की कुरीतियों व अंधविश्वासों पर करारा प्रहार किया है जो कि आज की जरूरत भी है।

हरनोट जी की कहानियों में माँ, बेटी, बहन के जिन स्त्री रूपों का वर्णन हुआ है, उनमें एक ओर माँ के अकेलेपन को दिखाया है। बेटा माँ को छोड़कर शहर जाकर बस गया लेकिन माँ फिर भी खुश है क्योंकि बेटा खुश है।तो दूसरी तरफ कानम व भागा जैसी बहादुर व निडर स्त्रियाँ देखने को मिलती हैं, जो कि विवशता व मजबूरी के सामने माथा नहीं टेकतीं बल्कि उनका निडरता के साथ सामना करती हैं। हरनोट जी ने अपनी कहानियों में स्त्रियों के जीवंत रूप का वर्णन किया है इस प्रकार स्त्री –संघर्ष आदि सभी का समावेश हमें हरनोट जी की कहानियों में मिलता है। हरनोट जी स्त्रियों को उनकी सुप्त अवस्था से निकालने के लिए निरंतर प्रयत्नशील हैं। उनकी लेखनी में जो प्रवाह है वह उनकी अभिव्यक्ति को प्रकट करता है, यही कारण है कि वे पाठकों के दिलों में बसते हैं और हमारे लिए गौरव का विषय है कि ऐसे चिंतनशील साहित्यकार हमारे बीच उपस्थित हैं।

संदर्भ –

1. एस0 आर0 हरनोट, कीलें, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 15
2. एस0 आर0 हरनोट, कीलें ,वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 21
3. एस0 आर0 हरनोट, कीलें, पृष्ठ संख्या 25
4. एस0 आर0 हरनोट, कीलें, पृष्ठ संख्या 26
5. एस.आर.हरनोट, दारोश तथा अन्य कहानियाँ, पृष्ठ संख्या 128
6. एस.आर हरनोट, लिटन ब्लॉक गिर रहा है, पृष्ठ संख्या 84
7. एस.आर हरनोट, लिटन ब्लॉक गिर रहा है, पृष्ठ संख्या 86
8. एस.आर.हरनोट दारोश तथा अन्य कहानियाँ, पृष्ठ संख्या 70
9. एस.आर.हरनोट दारोश तथा अन्य कहानियाँ, पृष्ठ संख्या 71
10. एस.आर. हरनोट, नदी रंग जैसी लड़की, पृष्ठ संख्या–55

■ ■ ■

संत कबीर नगर जनपद में फ़सल वितरण प्रारूप : एक प्रतीक अध्ययन

डॉ. अमर सिंह गौतम
एसोसिएट प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग
ही.रा.पी.जी. कालेज, ख़लीलाबाद, संत कबीर नगर

बृजेश कुमार,
शोध छात्र, भूगोल विभाग
ही.रा.पी.जी. कालेज, ख़लीलाबाद, संत कबीर नगर

सम्बद्ध : सिद्धार्थ विश्वविद्यालय कपिलवस्तु, सिद्धार्थ नगर, उ.प्र.

प्रस्तावना :– कृषि प्राचीन काल से ही मानवीय अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग रहा है। प्रारंभ में मानव आखेट व वन्य संसाधनों पर निर्भर था। परन्तु धीरे–धीरे पशुओं और वनस्पतियों का घरेलूकरण कर पशुपालन एवं कृषि करने लगा। वर्तमान में मानव सभ्यता के अस्तित्व के लिए कृषि व कृषि आधारित व्यवसाय करना आवश्यक है। आधुनिक कृषक फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए उन्नतशील बीजों, आधुनिक तकनीकों एवं यंत्रों, रासायनिक खादों तथा कृषि की नवीन पद्धतियों का उपयोग कर रहें हैं। जिसके परिणाम स्वरूप फसल प्रारूप में परिवर्तन होता आ रहा है।

फ़सल प्रारूप का अर्थ–"किसी दिये गए समय में विभिन्न फ़सलों के लिए उपयोग किये जा रहे क्षेत्र का अंश।" अर्थात् कृषि प्रतिरूप समय और स्थान के बदलने पर बदलते रहते है। यह एक गतिशील धारणा हैं, जिनमें समय–समय पर परिवर्तन होते रहते हैं।

अध्ययन क्षेत्र :– जनपद संत कबीर नगर उत्तर प्रदेश के बस्ती मण्डल का नवसृजित जिला है। जिसका विस्तार 26°31′ उत्तरी अक्षांश से 270°10′ उत्तरी अक्षांश एवं 82°45′ पूर्वी देशान्तर से लेकर 83°15′ पूर्वी देशान्तर तक है। जनपद का कुल क्षेत्रफल 1,646.00 वर्ग किमी0 है। वर्ष 2011 के जनगणना के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 17,06,706 है जनपद में घनघटा, मेंहदावल एवं ख़लीलाबाद तीन तहसील तथा सेमरियांवा, ख़लीलाबाद, मेंहदावल, बघौली, हैंसर बाजार, नाथनगर, सांथा, पौली, एवं बेलहर कलां 9 विकासखण्ड हैं।

अध्ययन का उद्देश्य :– प्रस्तुत अध्ययन का निम्नलिखित उद्देश्य है–

अध्ययन क्षेत्र में परिवर्तनशील फसल प्रारूप का विश्लेषण करना।

फसल प्रारूप से संबंधित समस्याओं एवं सुझावों से अवगत कराना।

समंक स्रोत एवं विधि तंत्र :– प्रस्तुत शोधपत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक समंकों पर आधारित है। प्राथमिक सूचनाओं के संकलन हेतु सामूहिक वार्तालाप, द्वितीयक आकड़ों के लिए जिला सांख्यिकी पत्रिका, कृषि भू–अभिलेख विभाग आदि से एकत्रित किये गये हैं। आकड़ों एवं सूचनाओं को एकत्रित करके व्यवस्थित कर उनकों सारणीबद्ध किया गया है। तत्पश्चात् विश्लेषण कर मानचित्र एवं आरेखों के माध्यम से प्रदर्शित एवं विश्लेषित किया गया है।

जनपद संत कबीर नगर में फसल वितरण प्रारूप

किसी भी क्षेत्र का फ़सल प्रारूप ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया का परिणाम है। भारत में फसली प्रारूप विविधता का प्रदर्शन करता है, क्योंकि यहाँ स्थाकृतिक, जलवायुविक एवं मृदा में पर्याप्त विविधता है। भारत में विभिन्न प्रकार के खाद्य एवं गैर खाद्य फ़सलों की खेती की जाती है, जिनकी मुख्यतः रबी, ख़रीफ़ एवं ज़ायद तीन फ़सलों में खेती की जाती है। प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान क्षेत्र रहा है। यहाँ मुख्यतः रबी, ख़रीफ़ एवं ज़ायद तीनों प्रकार की फ़सलें पैदा की जाती हैं।

 ISSN : 0975-5403

सारणी क्रमांक–01
फ़सल वितरण प्रतिरूप : जनपद संत कबीर नगर
वर्ष 2001–2022

सकल बोया गया क्षेत्र	वर्ष 2001–2002		वर्ष 2011–12		वर्ष 2021–22	
	क्षेत्रफल (हेक्टेयर)	क्षेत्रफल (प्रतिशत)	क्षेत्रफल (हेक्टेयर)	क्षेत्रफल (प्रतिशत)	क्षेत्रफल (हेक्टेयर)	क्षेत्रफल (प्रतिशत)
रबी	95473	48.874	102119	49.097	112133	49.064
ख़रीफ	94611	48.432	101678	48.885	122088	49.045
ज़ायद	3884	1.988	4196	2.017	4258	1.863
कुल	195345	100	207993	100	228540	100

स्रोत–1. कृषि भू–अभिलेख विभाग, जनपद संत कबीर नगर
2. अर्थ एवं सांख्यिकी प्रभाग, जनपद संत कबीर नगर।

उपर्युक्त सारणी क्रमांक 01 के अनुसार शोधार्थी ने पाया कि अध्ययन क्षेत्र का सकल बोये गए कुल क्षेत्रफल 2001–02 (195345 हेक्टेयर) से लगातार वृद्धि दर्ज की गया, जो वर्ष 2011–12 में 207993 हेक्टेयर तथा वर्ष 2021–22 में बढ़कर 228540 हेक्टेयर हो गया है। इसी प्रकार रबी फ़सल का क्षेत्रफल 2001–02 में कुल क्षेत्र के 48.87 प्रतिशत था जिनमें वर्ष 2011–12 (49.10 प्रतिशत) में वृद्धि दर्ज किया गया। परन्तु वर्ष 2021–22 (49.06 प्रतिशत) में थोड़ी कमी दर्ज किया गया है। जिसका मुख्य कारण वर्षा का नवम्बर–दिसम्बर में होना है। जनपद में रबी के मौसम में मुख्यतः गेहूँ, चना, मटर, सरसों आदि प्रमुख फ़सलों का उत्पादन किया जाता है।

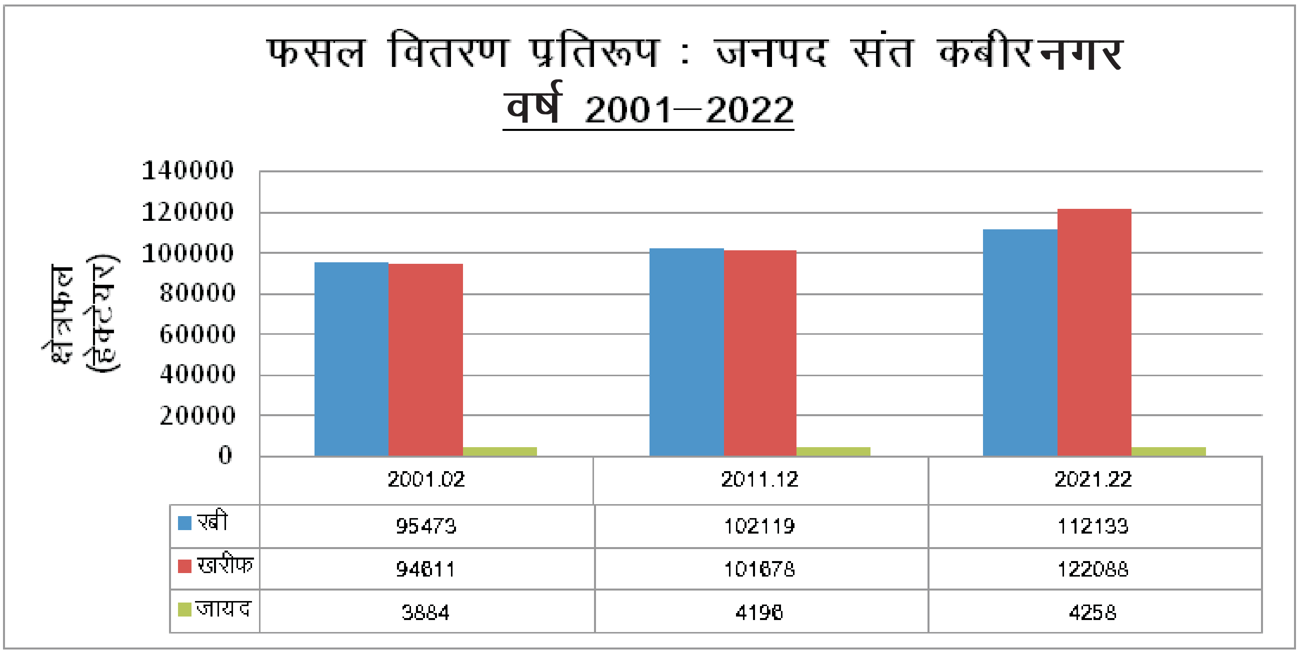

चित्र सं. 01

ख़रीफ फ़सल के क्षेत्रफल में भी लगातार वृद्धि देखने को मिलता है। जो वर्ष 2001—02 में कुल क्षेत्रफल के 48.43 प्रतिशत क्षेत्र, वर्ष 2011—12 में 48.88 प्रतिशत तथा वर्ष 2021—22 में 49.04 प्रतिशत हो गया। ख़रीफ फ़सल के मौसम में सर्वाधिक क्षेत्रों पर मुख्यतः धान की खेती की जाती है। जबकि जनपद के कुछ हिस्से में मक्का, तिल, मूँगफली आदि की भी कृषि की जाती है। जनपद में छिट—पुट जायद फसल की भी कृषि की जाती है। चित्र सं. 01 में प्रदर्शित है कि वर्ष 2001—02 में जनपद के कुल क्षेत्रफल के 1.99 प्रतिशत क्षेत्र ज़ायद फसल की खेती किया गया था। जिनमें वर्ष 2011—12 (2.02 प्रतिशत) में वृद्धि हुई थी, परन्तु वर्ष 2021—22 (1.86 प्रतिशत) में कमी दर्ज किया गया है। ज़ायद के अन्तर्गत मुख्यतः खीरा, ककड़ी, तरबूज, खरबूज, मक्का एवं सब्जियों आदि की खेती की जाती है।

विकासखण्डवार फसल वितरण प्रारूप : जनपद संत कबीर नगर सारणी क्रमांक 02 में शोधार्थी ने पाया कि जनपद में विकासखण्ड स्तर पर व्यापक विविधता है। अध्ययन में सुविधा के अनुसार शोधार्थी ने वर्ष 2021—22 के फसल प्रतिरूप का अध्ययन निम्न भागों में विभाजित कर किया है।

1. रबी फसल के क्षेत्र
2. ख़रीफ फसल के क्षेत्र
3. ज़ायद फसल के क्षेत्र

सारणी क्रमांक—2

विकासखण्डवार फसल वितरण प्रारूप : जनपद संत कबीर नगर

वर्ष 2021—2022

क्र.	ब्लॉक	सकल बोया गया क्षेत्र							
		रबी		खरीफ		जायद		कुल	
		क्षेत्रफल (हेक्टेयर)	क्षेत्रफल (प्रतिशत)	क्षेत्रफल (हेक्टेयर)	क्षेत्रफल (प्रतिशत)	क्षेत्रफल (हेक्टेयर)	क्षेत्रफल (प्रतिशत)	क्षेत्रफल (हेक्टेयर)	क्षेत्रफल (प्रतिशत)
1.	सेमरियांवाँ	15530	50.467	14781	48.033	454	1.475	30772	100
2.	मेंहदावल	11654	46.882	12658	50.921	540	2.172	24858	100
3.	बघौली	11421	49.740	10972	47.785	562	2.447	22961	100
4.	खलीलाबाद	13338	47.341	14334	50.876	495	1.759	29174	100
5.	नाथनगर	13067	47.129	14152	51.042	499	1.799	27726	100
6.	हैंसर बाजार	12901	48.314	13200	49.434	595	2.228	26702	100
7.	सांथा	10583	48.807	10724	49.458	370	1.706	21683	100
8.	बेलहर कला	11499	51.546	10445	46.821	358	1.604	22308	100
9.	पौली	11201	52.158	9924	46.211	343	1.597	21475	100
ब्लॉक योग		112133	49.064	111190	49.045	4258	1.863	228540	100

स्रोत—1. कृषि भू—अभिलेख विभाग, जनपद संत कबीर नगर।

1. रबी फसल के क्षेत्र :— उपर्युक्त सारणी क्रमांक 02 के अनुसार अध्ययन क्षेत्र में रबी फसल के अन्तर्गत सकल बोये गये क्षेत्र (228540 हेक्टेयर) के 49.06 प्रतिशत (112133 हेक्टेयर) पर की जाती है। जिनमें सर्वाधिक क्षेत्र सेमरियांवाँ विकासखण्ड (15530 हेक्टेयर) में है। परन्तु सकल बोये गये क्षेत्र के प्रतिशत के आधार पर प्रथम स्थान पौली विकासखण्ड (52.16 प्रतिशत), द्वितीय स्थान पर बेलहर कलां विकासखण्ड (51.55 प्रतिशत), तृतीय स्थान पर सेमरियांवाँ विकासखण्ड (40.47 प्रतिशत) तथा बघौली विकासखण्ड (49.74 प्रतिशत) चतुर्थ स्थान पर

है। बाकी विकासखण्डों में औसत (49.06 से कम क्षेत्रफल पर रबी फ़सल की कृषि की जाती है। जिनका क्रम है, सांथा विकासखण्ड (48.81 प्रतिशत), हैंसर बाजार विकासखण्ड (48.31 प्रतिशत), ख़लीलाबाद विकासखण्ड (47.34 प्रतिशत), नाथनगर विकासखण्ड (47.13 प्रतिशत), तथा मेंहदावल विकासखण्ड (46.88 प्रतिशत), अन्तिम स्थान पर है।

विकासखण्डवार फसल वितरण प्रारूप : जनपद संत कबीर नगर
वर्ष 2021–2022

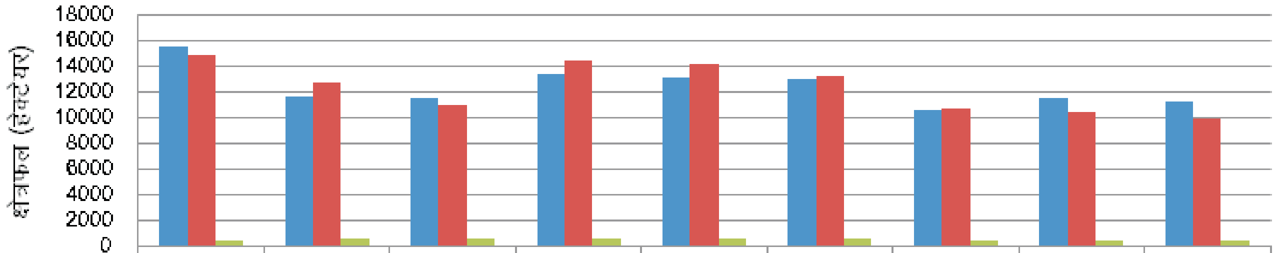

	सेमरियांवा	मेंहदावल	बघौली	खलीलाबाद	नाथनगर	हैंसर बाजार	सांथा	बेलहर कला	पौली
रबी	15530	11654	11421	13338	13067	12901	10583	11499	11201
खरीफ	14781	12658	10972	14334	14152	13200	10724	10445	9924
जायद	454	540	562	495	499	595	370	358	343

चित्र सं. 02

2. ख़रीफ़ फसल के क्षेत्र :– सारणी क्रमांक 02 के अनुसार अध्ययन क्षेत्र में ख़रीफ फ़सल के अन्तर्गत सकल बोए गये क्षेत्र (228540 हेक्टेयर) के कुल 49.05 प्रतिशत भूमि पर ख़रीफ़ फ़सल की खेती की जाती है। ख़रीफ़ फ़सल के अन्तर्गत कुल प्रतिशत के आधार पर प्रथम स्थान पर नाथनगर विकासखण्ड (51.04 प्रतिशत), द्वितीय स्थान पर मेंहदावल विकासखण्ड (50.92 प्रतिशत), तृतीय स्थान पर ख़लीलाबाद विकासखण्ड (50.88 प्रतिशत), चतुर्थ स्थान पर सांथा विकासखण्ड (49.46 प्रतिशत), तत्पश्चात् हैंसर बाजार विकासखण्ड (49.43 प्रतिशत) का स्थान है। परन्तु क्षेत्रफल की दृष्टि से सेमरियावाँ विकासखण्ड (14781 हेक्टेयर) प्रथम स्थान पर, द्वितीय स्थान पर ख़लीलाबाद विकासखण्ड (14334 हेक्टेयर), एवं तृतीय स्थान पर नाथनगर विकासखण्ड (14152 हेक्टेयर) है। जबकि औसत से कम ख़रीफ़ फ़सल की खेती सेमरियांवा विकासखण्ड (48.03 प्रतिशत), बघौली विकासखण्ड (47.79 प्रतिशत), बेलहर कलां विकासखण्ड (46.82 प्रतिशत) एवं सबसे कम पौली विकासखण्ड (46.28 प्रतिशत) में होती है।

जनपद में ख़रीफ फ़सल मुख्यतः वर्षा द्वारा सिंचाई पर निर्भर होता है अतः उन क्षेत्रों में ख़रीफ़ फ़सलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल अधिक है। जहाँ सिंचाई की सुविधा पर्याप्त रूप से उपलब्ध है।

ज़ायद फ़सल के क्षेत्र :– उपर्युक्त सारणी क्रमांक 02 के अनुसार अध्ययन क्षेत्र में रबी फ़सल के अन्तर्गत सकल बोये गये क्षेत्र (228540 हेक्टेयर) के 01.86 प्रतिशत (4258 हेक्टेयर) पर की जाती है। जिसमें सर्वाधिक ज़ायद की खेती हैंसर बाजार विकासखण्ड (02.23 प्रतिशत), में होती हैं। इसी क्रम में बघौली विकासखण्ड (02.45 प्रतिशत), मेंहदावल विकासखण्ड (02.17 प्रतिशत) में औसत से अधिक तथा नाथनगर विकासखण्ड (01.80 प्रतिशत), ख़लीलाबाद विकासखण्ड (01.76 प्रतिशत), सांथा विकासखण्ड (01.71 प्रतिशत), बेलहर कलां विकासखण्ड (01.60 प्रतिशत), पौली

विकासखण्ड (01.60 प्रतिशत) तथा सेमरियांवा विकासखण्ड (01.48 प्रतिशत) में सबसे कम क्षेत्रफल पर ज़ायद की खेती की जाती है।

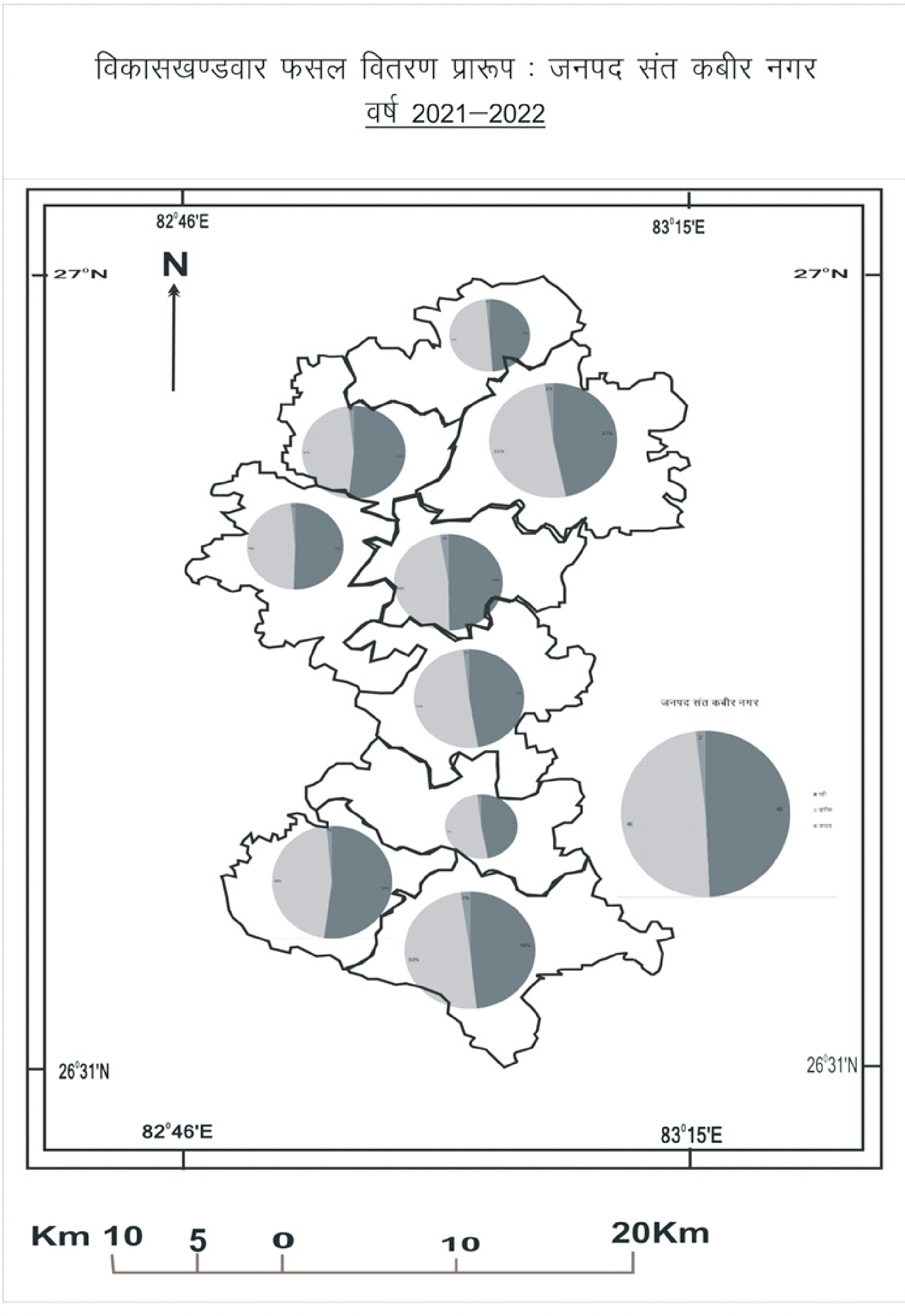

चित्र सं. 03

समस्याएं एवं सुझाव :–

अध्ययन क्षेत्र के अर्थव्यवस्था के विकास में कृषि क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। यहाँ की सर्वाधिक जनसंख्या कृषि कार्य में संलग्न है। वर्तमान में बढ़ती महँगाई, उच्च जनसंख्या, सिंचाई के लिए मानसून पर निर्भरता, वैश्विक तापन एवं जलवायु परिवर्तन, वर्षा की अनिश्चितता, आदि के कारण कृषि ख़तरा भरा व्यवसाय हो गया हैं। अध्ययन क्षेत्र की प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित है–

- शोधार्थी ने पाया कि अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक गरीब एवं सीमांत कृषक है जो पूँजी के अभाव में आधुनिक तकनीकों, उन्नतशील बीजों का उपयोग पर्याप्त नहीं कर पा रहे हैं।
- छोटे व सीमांत कृषक सरकारी योजनाओं के लाभ का पर्याप्त उपयोग नहीं कर पा रहें हैं।
- बैंक ऋण का सही ज्ञान व पहुँच के अभाव में कृषकों को विचौलियों व साहूकारों से मद्द लेने व साहूकारों से ऋण के लिए विवश हैं।
- कृषक प्राचीन कृषि पद्धति को अपनायें हैं क्योंकि कृषि में नवीन पद्धतियों के प्रयोग का ख़तरा नहीं लेना चाहते है।
- सिंचाई के लिए मानसून पर निर्भर रहना। जहाँ नहरों का निर्माण किया गया है वहाँ नहरों में पानी समय से नही आता हैं।
- कृषि उत्पाद के लिए भण्डारण की कमी है।
- जलवायु परिवर्तन व असमय वर्षा होने से खड़ी फ़सल बर्बाद हो जाती है, जिससे फ़सल उत्पादन कम हो रहा है।
- उचित प्रशिक्षण व शोध का अभाव है।

उपर्युक्त समस्याओं के बावजूद जनपद संत कबीर नगर एक कृषि प्रधान क्षेत्र है। वर्षा की अनिश्चितता के कारण सिंचाई के लिए ज्यादा से ज्यादा नहरों व सौर ऊर्जा संचालित पम्पिंग सेट व ट्यूबल का उपयोग किया जाना चाहिए। गरीब व छोटे किसानों के पहुँच तक सरकारी योजनाओं को लाया जाना चाहिए ताकि ऊँचे, मध्यम एवं निम्न तीनों वर्ग के किसानों को अधिक से अधिक लाभ मिलें। किसानों को नये यंत्रों व विधियों के उपयोग के लिए सब्सिडी दिया जाना चाहिए तथा कायक्रमों व जनजागरूकता के माध्यम से अपनाने पर जोर दिया जाना चाहिए। बदलते जलवायु में ज्यादा पैदावार व कम लागत के लिए नये बीजों का प्रयोग किया जाना चाहिए। सरकार को कृषि संबंधित प्रशिक्षण व शोध पर जोर देना चाहिए जिससे कृषि संबंधित समस्याओं का सही और सटीक ज्ञान हों और इन समस्याओं का उचित निदान हो सके।

संदर्भ –

1- Bhatia, S.S.(1967): Spatial Variations, Changes and Trends in Agricultural Efficiency in U.P.; Indian Journal of Agricultural Economics, Vol XXII, No.1, pp 66-80.

2- Jain, P.C.,(1980): Madhya Pradesh A Study in Agricultural Types and Regions; Unpubl. Thesis, Pt. Ravishankar University, Raipur.

3- Singh, Sunita (2011): Land Resourses Utilization for Agriculture in Rohtas District Bihar; National Geographical Journal of India, Vol. 57, Pt. 2, pp. 81-92, ISSN-0027-9374.

4- Venzetti, C., (1972): Land Use and Natural Vegetation; International Geography, Edited By W. Petre Adams and Fredrick, M. Helleiner, Toronto, University press, pp. 106.

5- Agrawal, P.C.(1970): Measurement of Agricultural Efficiency in Bastar District: A Functional Approach; Geographical Outlook, vol. 1 N.1 pp. 31-38.

6. तिवारी आर.सी. और वी.एन. सिंह (2010) : कृषि भूगोल; प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद पृष्ठ सं. 88 एवं 290।

7. हुसैन माज़िद (2010) : कृषि भूगोल; रावत पब्लिकेशन,जयपुर पृष्ठ सं. 104–105।

8. प्रजापति, राज नरायण और संजय कुमार शर्मा (2020): आजमगढ़ जनपद में कृषि भूमि उपयोग का फसल वितरण प्रारूप तथा समस्या एवं सुझाव; International Journal of creative Research Thought, अंक 8 ।

9. www.ijcrt.org

■ ■ ■

अनामिका के कविता संग्रह 'शीतल स्पर्श एक धूप को' में प्रकृति–चित्रण

प्रो0 प्रणव शर्मा,
अध्यक्ष एवं शोध निर्देशक, हिन्दी विभाग
उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत – 262001

राजश्री कमल
शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग
उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत – 262001

सम्बद्ध : एम0 जे0 पी0 रुहेलखण्ड, विश्वविद्यालय, बरेली

सारांश

महिला साहित्यकारों में अनामिका अपने आप में एक विशिष्ट लेखिका है जिन्होंने हिन्दी साहित्य की कई विधाओं पर अपनी लेखनी चलायी और विभिन्न मानवीय, सामाजिक, सांस्कृतिक पहलुओं पर विचार व्यक्त किये हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में अनामिका के कविता संग्रह 'शीतल स्पर्श एक धूप को' (जो कि उनके द्वारा बाल्यावस्था में लिखा गया है) में प्रकृति व प्राकृतिक घटकों के माध्यम से विभिन्न मानवीय पहलुओं के आधार चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

प्रकृति, साहित्य, विज्ञान व समाज के लिए हमेशा से प्रथम प्रेरणा स्रोत रही है। मानव ने प्रकृति से ही बहुत कुछ सीखा, समझा, खोजा और अपने जीवन को अधिक आनन्दमय बनाने के लिए इसके भावों का उपयोग किया है। साहित्य साधक जैसे कि कवि, लेखक व पाठक की सोच को प्रकृति जहाँ प्रथम दृष्ट्या अनन्त आयाम प्रदान करती है; वहीं उनकी रचनाओं व भावों हेतु अतुलनीय प्रेरणा स्रोत का भी कार्य करती है।

भारतीय साहित्य के महान कवियों जैसे वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि ने अपने साहित्य में प्रकृति वर्णन को एक विशिष्ट स्थान दिया है। ये कवि कभी प्रकृति के अरूप सौन्दर्य पर मुग्ध हुए तो कभी प्रकृति की उपयोगिता पर ध्यान दिया। यह सिलसिला सदियों से ही साहित्य में अनवरत चलता आ रहा है और इसका प्रभाव आधुनिक काल के कवियों के साहित्य में भी निरन्तर देखा जा सकता है।

हिन्दी साहित्य जैसे–जैसे विकास की ओर अग्रसर हुआ उस पर विभिन्न विचारधाराओं, प्रवृत्तियों, पंथों का भी प्रभाव पड़ा व सृजनात्मकता पर इनकी अमिट छाप दिखती रही है। कभी किसी सृजन धारा का प्रभाव बढ़ता दिखा तो कहीं पर घटता भी दिखा। इन सब उतार–चढ़ावों के बीच अगर एक भाव जो हमेशा था व रहा वह है प्रकृति प्रेम व प्रकृति आधार का भाव। प्रारम्भिक रचनाओं में प्रकृति का चित्रण जहाँ कथात्मकता को निम्न रूप प्रदान करने के लिए होता था, वहीं मध्यकाल आते–आते परिवर्तित होकर युद्धोकरण व युद्धोवस्था पर केन्द्रित हो गया। आधुनिक काल की मध्यावस्था में वैश्विक स्तर पर साहित्यिक आदान–प्रदान चरम पर था जिसके कारण भारतीय साहित्य में भी गुणात्मक परिवर्तन आया और सन् 1930 के बाद प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन से प्रेरित रचनाओं का सृजन होने लगा और इसी के समानान्तर भारत में छायावादी काव्य–प्रवृत्ति भी अपने चरम पर थी और छायावाद की मूल प्रवृत्ति प्रकृति वर्णन पर आधारित थी, जिसे प्रगतिवादी कवियों ने अपनी कविता में स्थान दिया। प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति को मानव जीवन पर गहन प्रभाव डालने वाली सहचरी शक्ति रूप में स्वीकार किया और आगे चलकर नयी कविता के कवियों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया।

प्रकृति–चित्रण करते समय अनामिका किसी खास शैली में बधँती हुई नहीं दिखती है। जहाँ वह एक तरफ उन्मुक्त प्रतीत होती है, वहीं दूसरी तरफ उनके प्रकृति चित्रण में परम्परागत व सामासिक शैली का समागम भी दिखता है। आधुनिक काल की कविताओं में प्रकृति–चित्रण की कई शैलियाँ प्रचलन में हैं, जिसमें से अनामिका ने मुख्यतः इन शैलियों को अपनाया है – वातावरण निर्माण के रूप में प्रकृति–चित्रण, रहस्यात्मक रूप में प्रकृति–चित्रण, प्रतीकात्मक रूप में प्रकृति चित्रण और मानवीकरण रूप में प्रकृति–चित्रण।

अनामिका के अब तक कुल 10 कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति प्रेम, प्रेम निरूपण, स्त्री–विमर्श, शोषित पीड़ित एवं उपेक्षित वर्ग, समाज का, बदलते परिवेश का, आदि का वर्णन किया गया है। अतः कहा जा सकता है कि उनका काव्य बहुआयामी और वैभव सम्पन्न है। आज अनामिका हिन्दी कविता का प्रमुख हस्ताक्षर मानी जाती है। स्वयं गहन चिन्तक होने के कारण उनके काव्य में भी एक विशिष्ट चिन्तनधारा प्रवाहित होती है।

काव्य रचनाओं में प्रकृति का मानवीकरण अधिकांश कवियों के द्वारा किया गया है। परन्तु उसकी कोटि कवि दर कवि काफी भिन्नता रखती है। अनामिका की रचनाओं में यह

शीर्षस्थ कोटि का है जैसे वह अपने मनोभावों को धूप, चाँदनी और नभ की दशाओं व इनके आपसी संयोजन के माध्यम से निम्न कविता में व्यक्त करते हुये लिखतीं है–

"शीतल स्पर्श एक धूप को दें,
ढलकर कंधों पर वह द्रवित होगी,
बहेगा सोना धरती पर।
चाँदनी को चूम लें गर्म होठो से,
छिटक अंक से जाएगी वह,
चाँदी का वर्क नभ पर बिछेगा।"[1]

वे प्रकृति के माध्यम से एक गृहिणी के रूप और सौन्दर्य व उसके सौभाग्य सूचक चिह्नों का भी बड़ी कुशलता से वर्णन करती है–

"तुहिन–कणों से सघः स्नाता
नभ की गृहिणी।
सिंदूरी है माँग क्षितिज की
तेरी स्वर्णिम टिकुली तरणी।।"[2]

अनामिका ने अपनी कविता में भीषण ठण्ड की दशा शायद पूस की ठण्ड का चित्रण प्रकृति के घटकों को लेते हुये बड़ी कुशलता से किया है। वे अपनी रचना में आकाश का मानवीकरण करते हुए उसे मलेरिया से पीड़ित बताती हैं, वहीं आकाश में छायी हुई बादलों की परत को झीनी चादर बताती हैं और चलती हुई शीतल हवाओं से जनित ध्वनि को दाँतों की किटकिटाहट की तरह व्यक्त करती हैं–

"अंबर को मलेरिया हो गया है शायद।
एक पर एक
बदली की झीनी चादरें
ओढ़े चला जाता है,
फिर भी ठिठुरन नहीं जाती उसकी
और अभिव्यक्त होती वह
हवा में तिरती
उसके दाँतों की किटकिटाहट में!"[3]

अनामिका संध्याकाल का चित्रण बड़ी दार्शनिकता और क्लिष्ट शब्दों के साथ सौन्दर्य से सृजित रूप में इस तरह से करती है जैसे कि कुशल चित्रकार ने अपनी तुलिका के माध्यम से सूर्यास्त व चन्द्रोदय की घटनाओं का चित्रण एक ही चित्रपट्टिका में किया हो जहाँ सूर्यास्त की लालिमा है व चन्द्रोदय की रजत आभा है व निकलते हुये तारे हीरे के कणों की भाँति चमक रहे हैं।

"रक्तिम अस्ताचल भट्‌टी!
तपता टिनही चाँद–कटोरा!
उफनाती रजतमय चाँदनी!
आसपास छितरे हीरक–कण तारों के!
कसौटी उधर पड़ी श्याम–वर्ण मेह की!
है स्वर्णिम क्षितिज इधर!
किस जौहरी का घर है यह?"[4]

अनामिका अपनी 'बेमतलब' कविता में आकाश में तारों के निकलने व स्मृति पटल पर सुखद व दुःखद स्मृतियों में साम्य स्थापित करते हुये दिखती हैं, वे शायद कहती हैं कि मानस पटल पर सुखद स्मृतियाँ आकाश में निकले हुये तारों की भाँति हो जो आत्मिक आनन्द देती है। पर वर्तमान कष्टावस्था में वे सुखद अनुभूतियाँ क्षणिक आनन्द का तो कारण बनती ही हैं साथ ही साथ वर्तमान के कारण उन्हीं पर रोने को विवश करती हैं।

"नभ पट पर जो
एक–एक कर तारे उभरे,
मानस का आकाश भी
घिर झिलमिल सुधि के बुंदकों से,
तो आँखे भर आयीं,
बेमतलब।"[5]

प्रस्तुत कविता संग्रह में अनामिका का नीले आकाश के प्रति आकर्षण बार–बार दिखता है। कहीं पर वो तालाब में दिखते फूल व आकाश में तारों का निकलना में साम्य स्थापित करती हुई दिखती हैं–

"तीरे तलैया में,
महुआ के फूल।
नीले आकाश में श्वेत उपल तिरते हैं।
उड़े फागुन की धूप में,
मुट्‌ठी भर धूल।"[6]

तो कहीं वे मध्य रात्रि के आकाश और तारों का साम्य अंधेरे कमरे में जलती हुई अगरबत्ती के साथ करती है व वह काली रात में टिम–टिमाते हुये तारों का सौन्दर्य इस तरह से उत्कीर्ण करती है कि मन उस सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट हुये बिना नहीं रह पाता है।

"अरे, जलायी किसने नभ में,
अगरबत्तियाँ इतनी?

ISSN : 0975-5403

नीहारिका का धुँआ
गंध रजनीगंधा में भरता है।
ज्वलित सिरे तारों के
तम को गहन करते हैं।"[7]

अपनी कविता 'अनचीन्हें का वैधव्य' में भी वो तारों व आकाश के माध्यम से एक मानवीय पहलू 'वैधव्य की दशा' को भी बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रकट करती है। वे इस कविता में आकाश में अनिश्चित क्रम में पड़े हुये तारों में जहाँ मंगलसूत्र के टूटे हुये मनकों को देखती है। वहीं वैधव्य आने पर माँग से सिन्दूर पोछने की प्रक्रिया को शायद आकाश में चन्द्रास्त की दशा के समान देखती हैं। क्योंकि चाँदनी रात का वजूद चन्द्रमा और तारों के साथ है, बिना चाँद के टिमटिमाते हुये तारे अपने अतुलनीय सौन्दर्य को खो देते हैं।

"मंगलसूत्र किसी का टूटा,
बिखरे मनकों–से तारे।
क्षितिज–माँग से उसकी फिर
सिंदूर पुंछ गया।"[8]

अनामिका ने अपने बाल्यकाल के खेल (कंचे खेलना) को भी तारों और चन्द्रमा के माध्यम से व्यक्त किया है, यह उनके काव्य कौशल के विशिष्ट आयाम को दिखाता है। जहाँ वे चाँद को नन्हे गढ्ढे की तरह व कंचों को तारों की तरह व्यक्त करती हुई दिखती हैं।

"अंधेरी गली में नभ की,
चंदा के नन्हे गढ्ढे में
तारों के कंचे
लेने की पिला,
एक–एक कर
कौन शिशु है फेंक रहा?"[9]

चन्द्रमा और तारों के अलावा इस कविता संग्रह में प्रकृति के जिस घटक के द्वारा अनामिका सबसे ज्यादा प्रभावित दिखती है वह और कोई नहीं दिनकर अर्थात् सूरज है। वह सूर्योदय व सूर्यास्त के कारण धरती पर पड़ने वाले प्रभाव को भौतिक विज्ञान के पहलुओं के रूप में व्यक्त करती है जैसे कि–

"उगता है सूरज अंबर में,
धरती तप जाती है,
अंबर में ढलता सूरज
होती है धरती शीतल।"[10]

वहीं सूर्यास्त के समय में उसकी रश्मियों के सन्दर्भ में उसका मानवीकरण करते हुए लिखती है–

"पिचकारी से किरणों की
टेसू–सा रंग उलीच गगन पर
कहीं छिप गया है सूरज"[11]

उपर्युक्त वर्णित कविताएँ जो कि उनके द्वारा उनके बाल्यकाल में लिखी गयी वह इस लोकोक्ति 'पूत के पाँव पालने में नजर आते हैं' को चरितार्थ करती हुई दिखाई पड़ती है। प्राकृतिक घटकों के प्रति उनका आकर्षण उनका उपयोग करके मानवीय पहलुओं की अभिव्यक्ति व अभिव्यक्तियों का काव्य रूप में निरूपण अतुलनीय है और आधुनिक कवियों में उनको विशेष स्थान प्रदान कराने में सक्षम है।

संदर्भ –

1. अनामिका, शीतल स्पर्श एक धूप को, अमिताभ प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, प्र.सं.(1975)पृष्ठ सं. – 15
2. वही, पृष्ठ सं. – 2
3. वही, पृष्ठ सं. – 6
4. वही, पृष्ठ सं. – 8
5. वही, पृष्ठ सं. – 27
6. वही, पृष्ठ सं. – 36
7. वही, पृष्ठ सं. – 59
8. वही, पृष्ठ सं. – 64
9. वही, पृष्ठ सं. – 71
10. वही, पृष्ठ सं. – 43
11. वही, पृष्ठ सं. – 63

■ ■ ■

पत्रकारिता और जनसंचार माध्यमों की साहित्य में भूमिका

प्रो. दिनेश कुशवाह, शोध–निर्देशक
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

अमित कुमार गौतम
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

पत्रकारिता एवं संचार माध्यमों की साहित्य में भूमिका उत्तरोत्तर विकास का द्योतक है। पत्र से पत्रकार और पत्रकार से पत्रकारिता का विकास हुआ। पत्रकार का काम है सूचना एकत्रित करना तथा महत्वपूर्ण सूचनाओं को क्रमबद्ध कर लोगों तक पहुँचाना। सूचनाओं को जब वह व्यवस्थित ढंग से संकलन, व्यवस्थापन एवं प्रसारीकरण करता है तो वह पत्रकारिता की श्रेणी में आता। दूसरे शब्दों में पत्रकारिता की एक व्यापक अवधारणा है जिसके तहत सूचनाओं का संकलन उसका संप्रेषण तथा व्यवस्थापन किया जाता है। संचार पत्रकारिता का ही एक पहलू है, जो सूचनाओं के आदान–प्रदान से संबंधित है। सूचनाओं का एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्थानांतरण संचार के माध्यम से होता है। साहित्य में संचार की भूमिका जानने से पहले इसके अर्थ को समझने का प्रयास करते हैं।

माध्यम, प्रेस, जनमाध्यम और जनसंचार को सामान्यतः पत्रकारिता का समानार्थी या पर्याय समझा जाता है। परंतु यह समझ भ्रम पूर्ण है, सत्य नहीं है। पत्रकारिता प्राप्त समाचारों के चयन, संकलन, विश्लेषण, परिष्कृत और यथासंभव सत्य सम्मिलित संप्रेषण की विस्तृत प्रक्रिया है, जबकि माध्यम संचार के साधनों एवं पत्रकारिता की गतिविधियों को संचालित करने वाले संगठन की संज्ञा है।

"समूची दुनिया संचार के साधनों से बहुत छोटी दिखाई देती है या यूँ कहें कि संचार के साधनों ने दुनिया को अत्यंत छोटा बना दिया है। मोबाइल फोन, कंप्यूटर, साइबर, इंटरनेट, टी0वी0 रेडियो, सिनेमा आदि ने भौगोलिक दूरियों का मतलब ही बदल दिया है संचार और संपर्क के आधुनिक माध्यमों द्वारा अब हर पल समस्त संसार की या कहें समस्त ब्रह्मांड की धमाचौकड़ी और उसकी उपलब्धियों की खबरें देते रहते हैं।"[1]

अब यह दौर सूचना का संसार है। इस गति में ही संसार में चलने और आगे बढ़ने के व्यापक अर्थ में 'संचार' संस्कृत के 'चर' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है चलना। जब हम किसी व्यक्ति या उससे संबंधित जानकारी को दूसरों तक पहुँचाते हैं या प्रसारित करते हैं तो वही 'संचार' कहलाता है।

इंग्लिश में संचार को कम्यूनिकेशन (Communication) के भाव व विचार कहते हैं जोकि लैटिन भाषा के शब्द से बना है जिसका मतलब होता है किसी वस्तु, विषय या सूचना को सबके लिए साझा करना। संचार की परिभाषा को कुछ प्रमुख विद्वानों के विचारों से समझा जा सकता। ज्ञान अनुभव एवं संवेदना तथा विचार यहाँ तक कि अस्तित्व में होने वाले सभी अनिवार्य परिवर्तनों की साझेदारी ही संचार है। संचार को कुछ विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है जो निम्नवत है –

अरस्तु का कथन है "मनुष्य समाज में रहकर ही अपना विकास कर सकता है लेकिन इसके लिए जरूरी यह है कि समय पर सूचना प्राप्त होती रहे।"

Keval J. Kumar, - "Hot communication and the life process wither and die."

गैलरी के कथनानुसार "दो या दो से अधिक व्यक्तियों या समुदाय के मध्य जब हम अपने विचारों का एक दूसरे से आदान–प्रदान करते हैं तो उसे संचार कहा जाता है।"

लिटिल के शब्दों में "संचार वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कोई भी जानकारी समस्त प्रतीकों के माध्यम से जनमानस के बीच पारित की जाती है एवं वांछित प्रतिपुष्टि प्राप्त करना इसका एकमात्र लक्ष्य होता है।

कागज के आविष्कार से ही संचार का विकास होना तय था। कालांतर में इसका आविष्कार तथा मुद्रण की कला का आविष्कार एक नए युग की शुरुआत थी। जहाँ उस समय में पहले सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए लोगों को

सभा, मेले आदि के रूप में उपस्थित होने की आवश्यकता रहती थी, वहीं इसके विपरीत मुद्रण प्रचलन में आने के बाद लोगों तक सूचनाओं का आदान–प्रदान करना आसान हो गया। सूचना शिक्षा एवं मनोरंजन में संचार के माध्यमों की प्रभावी भूमिका रही है। शिक्षा के बेहतर उपयोग में तथा शिक्षा के महत्व को देखते हुए अनौपचारिक शिक्षा के लिए इसको व्यापक रूप से अपनाया गया। संचार के सामाजिक उत्तरदायित्व को देखते हुए मधुकर गंगाधर ने संचार की भूमिका में लिखा है – "जनसंचार अपने विभिन्न रूपों एवं प्रभावों द्वारा सामूहिक विवेक को निखारने का प्रयास करता है। यह इस व्यापक सामूहिक विवेक को जन्म देता है। व्यापक सहमति, सामूहिक प्रयास की माँ कहलाती है जिससे आज के समाज की सत्ता एवं जीवन पद्धतियों का निर्धारण एवं विकास परिचालित होता है। संचार माध्यमों द्वारा प्रचारित नई सूचनाओं के माध्यम से समाज के मानसिक क्षेत्र का विस्तार तो होता ही है साथ में समाज में नई आशा एवं नई आकांक्षाएं भी उत्पन्न होती हैं। नये संचार माध्यमों के द्वारा संचार सम्बन्धी समस्याओं को दूर किया जाता है और उससे प्रयोग एवं शुद्धिकरण की प्रवृत्ति भी जागृत होती है। आज के सामाजिक एवं आर्थिक विकास का मुख्य अभियंता संचार को ही कहा जा सकता है।"[2]

संचार शब्द के पहले 'जन' शब्द का जोड़ दिया जाना, जिसने संचार का अर्थ बदल कर रख दिया। 'जन' का सही शब्दों में अर्थ 'लोक' से लगाया जाता है। लोक के साथ कई और भी पर्याय हैं जिसे लोग, प्रजा, समुदाय आदि के नाम से जाना जाता है। जन को अगर विशेषण के अर्थ में देखें तो उसका अर्थ होता है कि 'बड़ी संख्या में लोगों को प्रभावित करना या सम्मिलित करना अथवा भागीदार बनाना।' जनसंचार की प्रक्रिया बड़े पैमाने पर होती है, वह जनसंचार के मापदंड को स्थापित करता है। लगभग संचार और जनसंचार के अर्थ का एक ही मतलब निकलता है तथा परिभाषाएं भी एक जैसी लगती हैं।

जनसंचार शब्द भले ही कुछ लोगों को नया लगे किंतु भारत में जनसंचार की जो अवधारणा है, वह अत्यंत प्राचीन एवं पौराणिक है। भारत के पौराणिक ग्रंथों या साहित्य में ऐसे बहुत से उदाहरण आपको देखने को मिलेंगे। चाहे वह महाभारत की कथा में संजय द्वारा दूरदर्शन जैसी विधि के माध्यम से धृतराष्ट्र को पूरा 'घटनाक्रम लाइव टेलीकास्ट' करना बताया गया है। उसके बाद महाभारत में ही पूर्व की कथा के अनुसार 'कंस के वध की आकाशवाणी होती है कि देवकी के 8वें पुत्र द्वारा तुम्हारी हत्या की जाएगी।' ऐसी बहुत सी कथाएं आपको पौराणिक ग्रंथों में या साहित्य में मिल जाएगी, जो बताते हैं की संचार एवं संचार माध्यमों का जो इतिहास है, वह बहुत ही पुराना है। भारत में संचार माध्यम की शुरुआत परंपरागत रही है जो मेले, सभाओं तथा तीर्थाटन आदि के माध्यम से ही संभव था।

समाज में विचारों तथा सामाजिक गतिविधियों की जानकारी देना संचार माध्यमों का काम है। पत्रकारिता एवं संचार माध्यमों की साहित्य में क्या भूमिका रही है? इस बात का उल्लेख डॉ0 राममोहन पाठक ने किया है– "साहित्य का वास्तविक स्वरूप बुद्धि द्वारा प्रतिपादित संदर्भ में है, जो वास्तव में सुंदर है, वह शिव है, वही साहित्य। साहित्य में सत्य भी होता है कल्पना भी होती है लेकिन कल्पना का मुख्य आधार सत्य पर आधारित होता है। साहित्य की रचना और प्रेषणीयता का आधार मानसिक वृत्तियाँ और जीवन की सहज अनुभूतियों द्वारा सफल होता है। साहित्य का मूल्य, जीवन के सभी मूल्यों से भिन्न नहीं होता और साहित्यिक अनुभूतियाँ जीवन की अनुभूतियों से विशिष्टता नहीं रखतीं। पत्रकारिता का भी जीवन मूल्यों से सीधा संबंध होता है, जिन जीवन मूल्यों की स्थापना साहित्य में की जाती है उन्हें पत्रकारिता द्वारा व्यावहारिक आयाम प्रदान किया जाता है।"[3]

साहित्य में पत्रकारिता की भूमिका के संदर्भ में बद्री विशाल पित्ती कहते हैं– "साहित्य में पत्रकारिता यानी क्या? साहित्य के विभिन्न रूप कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, साहित्यालोचन और लेख से संबंधित समस्याओं और भाषा इत्यादि विषयों को लेकर चलने वाली पत्रकारिता को समझता हूँ।"[4]

साहित्य समाज की समृद्ध चेतना कि धरोहर है और पत्र–पत्रिकाएं दिन–प्रतिदिन की गतिशीलता की लेखा हैं। केवल कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास ही नहीं, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में बड़ी तीव्रता के साथ विकसित होने वाली गद्य विधाएं जैसे कि निबंध एवं समीक्षा, नाटक के

अलावा संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रावृत्त, रिपोर्ताज, फ़ीचर, डायरी लेखन आदि का साहित्य में तथा पत्रकारिता में विशेष महत्व है। भारत में कदाचित ही ऐसा कोई पत्र मिलेगा जिसने इन विधाओं को प्रकाशित कर साहित्य की श्री वृद्धि न की हो। जनसंचार ने राष्ट्र निर्माण के प्रयासों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

साहित्य में संचार माध्यम की भूमिका का आधार हम निम्न संचार माध्यमों द्वारा देख सकते हैं। परंपरागत लोक माध्यम यह संचार का सबसे पुराना माध्यम है। संचार माध्यम में जनसंचार का शास्त्र अपेक्षाकृत नया है। जनसंचार के कुछ विद्वान मुख्य रूप से जनसंचार को दो वर्गों में विभक्त करते हैं पहला प्रिंट मीडिया और दूसरा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया। "प्रिंट मीडिया बहुत ही प्राचीन माध्यम है और इसका इतिहास लगभग 500 वर्षों का है जबकि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया बीसवीं शताब्दी की तकनीकी क्रान्ति की देन है।"[5]

भारत के संदर्भ में संचार माध्यम की वर्तमान स्थिति की बात करें तो हम पाते हैं की जनसंचार के जो कार्यक्रम होते हैं उनके विषय वस्तु में प्रमुखता से अभिजात वर्ग तथा महानगरों की अभिरुचि का पता चलता है।सूचना और विश्लेषणात्मक कार्यक्रमों में स्थानीय एवं क्षेत्रीय मुद्दों की बजाय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय विषयों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसके अलावा भारत की तुलना में अन्य देशों की जो स्थिति है अर्थात् कई ऐसे देश हैं जिनके संचार माध्यम की तुलना में भारत की स्थिति अभी भी थोड़ी कम है। अतः इस दृष्टि से संचार के परंपरागत माध्यमों को उचित स्थान देने की आवश्यकता है।

प्रिंट मीडिया—संचार का दूसरा सशक्त माध्यम है। कहते हैं कि "समाचार पत्र जनता के लिए संसद का कार्य करते हैं।"[6] पत्रकारिता का सामान्य उद्देश्य जनसमस्याओं से जुड़ना एवं उसको शासन प्रशासन के समक्ष प्रस्तुत करना है। पत्रकारिता के क्षेत्र में विभिन्न पत्र—पत्रिकाओं का अलग—अलग प्रारूप होता है। प्रत्येक पत्र—पत्रिकाओं का अपना एक विशेष दर्शन होता है तथा उनकी एक अलग पाठ सामग्री होती है एवं उनके पाठक भी अलग होते हैं। इनमें दैनिक से लेकर साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक और त्रैमासिक, अर्धवार्षिक और वार्षिक संस्करण वाली पत्रिकाएं सम्मिलित होती हैं। सामाजिक दृष्टि से इन पत्र—पत्रिकाओं का समाज में विशेष महत्व होता है और जन समुदाय के निर्माण में यह अपना योगदान करती हैं। पत्र—पत्रिकाओं का साहित्य से सीधा संबंध होता है और कुछ ऐसे भी पत्रिकाएं हैं जिनमें पूर्ण रूप से साहित्यिक संस्करण दिखाई देते हैं। पत्रकारिता का इतिहास एवं जनसंचार माध्यम नामक पुस्तक में संजीव भनावट लिखते हैं कि "साहित्य की भाँति पत्रकारिता भी समाज की विभिन्न गतिविधियों का आईना या दर्पण है। सम सामयिक घटनाओं का प्रत्यक्ष एवं शीघ्र रूप में लिखा गया इतिहास पत्रकारिता कहा जाता है।"[7]

शुरुआती दौर में ज्ञान सूचना एवं समाचार की वाहक के रूप में मुद्रण कला का प्रादुर्भाव चीन, कोरिया और जापान में माना जाता है। व्यापार और व्यवसाय के रूप से इसका व्यापक प्रयोग यूरोप में गुटेनबर्ग द्वारा विकसित धात्विक मुद्रण की मशीन के आविष्कार के साथ बताया जाता है। भारत की पत्रकारिता के इतिहास के संदर्भ में जब मुद्रण की बात होती है तो ऐसा माना जाता है कि भारत में मुद्रण कि जो पहली मशीन है वह 1556 में गोवा में लगाई गई। इस मुद्रण कला के प्रादुर्भाव से ही पत्रकारिता के विकास में तेजी से वृद्धि हुई और भारत में पत्रकारिता की शुरुआत अंग्रेजों द्वारा किया गया। उस पत्र का नाम था 'बंगाल गजट'। इस पत्र को भारत का प्रथम समाचार पत्र होने का गौरव प्राप्त है। यह पत्र साप्ताहिक पत्र था और प्रत्येक शनिवार को प्रकाशित होता था। भारतीय भाषाओं में पत्रकारिता की शुरुआत का श्रेय राजा राममोहन राय को दिया जाता है जिन्होंने भारतीय भाषा में पत्रकारिता की शुरुआत की और 'उदंत मार्तंड' को हिंदी का प्रथम समाचार पत्र माना जाता है, जिसका संपादन पंडित युगल किशोर शुक्ला द्वारा सन् 1826 ईस्वी में किया गया।

चलचित्र—चलचित्र को भी पत्रकारिता का महत्वपूर्ण अंग माना गया है। यह ऐसा संचार माध्यम था, जिसके माध्यम से फिल्म के जरिए लोगों को मनोरंजन के साथ जानकारियाँ भी प्रदान की जाती थीं। संचार माध्यम के रूप में फिल्म की शुरुआत 7 जुलाई सन् 1896 को हुई जिसके माध्यम से मुंबई के पास वाटसन होटल में फ्रांस के ल्यूमियर बंधुओं ने पहली बार फिल्म प्रदर्शित की। भारत में चलचित्र अथवा फिल्म की शुरुआत के संदर्भ में संजीव

भनावत लिखते हैं–"भारतीय कथानक पर आधारित भारत की पहली फिल्म 'पुंडलीक' थी, इस फिल्म को आर.जी तोरणे ने एवं एन. सी. चित्रा के पारस्परिक सहयोग से तैयार किया गया था। यह फिल्म 18 मई 1912 ईस्वी को सबसे पहले मुंबई में प्रदर्शित की गई। फिल्म पुंडलीक का जो नाम था वह महाराष्ट्र के एक संत पुंडलीक के नाम से लिया गया था तथा यह फिल्म भी उनके जीवन पर आधारित थी। भारत के चलचित्र के इतिहास में दादा साहेब फाल्के का महत्वपूर्ण स्थान है तथा इनको भारतीय फिल्मों का पिता भी कहा जाता है।"[8]

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम–रेडियो और टेलीविजन :–

पत्रकारिता जगत में बीसवीं शताब्दी एक क्रांति के रूप में आई। जिसमें संचार के इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का विकास प्रारंभ हुआ। बीसवीं शताब्दी के शुरुआत में मैक्सवेल, हॉट्ज और मारकोनी जैसे विद्वानों के अथक प्रयासों के जरिए विद्युत चुंबकीय तरंगे एवं रेडियो संचार का आविष्कार हो चुका था। इनके अलावा बहुत से ऐसे संचार माध्यमों की खोज हुई जिसने आधुनिक संचार माध्यमों की आधारशिला रखी। शुरुआत में इन इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का उपयोग नाविकों द्वारा तूफान में फँसने पर अपनी सुरक्षा की पुकार अन्य लोगों तक पहुँचाने के लिए किया करते थे। वैज्ञानिकों द्वारा इसमें निरंतर प्रयोग होते गए और प्रयोगों, अनुप्रयोगों के बीच नए–नए संचार माध्यमों का आविष्कार भी होता गया। जिस समय एक तरफ आविष्कार हो रहा था तो दूसरी तरफ प्रथम विश्व युद्ध शुरू हो गया था जिसके कारण रेडियो के विकास में काफी वृद्धि हुई। क्योंकि संसार के प्रत्येक देश युद्ध की सूचना किसी न किसी माध्यम से सुनना यह जानना चाहते थे। "सर्वप्रथम प्रथम विश्व युद्ध का रेडियो से समाचार का प्रसारण 1916 ईस्वी में किया गया। इस प्रयोग से लोग अचंभित रह गए और उनको लगा कि जो काम समाचार पत्र एक–दो दिन बाद करते हैं उसके विपरीत रेडियो के माध्यम से तत्काल ही सूचनाओं को प्राप्त किया जा सकता है। इसका यह परिणाम हुआ की विभिन्न देशों ने रेडियो के प्रति अपनी रुचि दिखाई तथा संयुक्त राज्य अमेरिका ने सन् 1919 ईस्वी को रेडियो निगम के लिए एक प्रसारण केंद्र खोला जो 'रेडियो कारपोरेशन ऑफ' अमेरिका' के नाम से जाना जाता था।। इसके पश्चात ईस्ट पिट्सबर्ग में 'रेडियो ब्रॉडकास्टिंग' की स्थापना की गई और इसके साथ ही विश्व के प्रथम रेडियो के प्रसारण का जन्म 21 दिसंबर 1922 को हुआ।"[9] इसके साथ ही ब्रिटेन ने 1922 में रेडियो के प्रसारण से संबंधित एक कंपनी की स्थापना की जिसका नाम 'ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशनर' रखा गया।

भारत में रेडियो की शुरुआत के संदर्भ में संजीव भनावट लिखते हैं कि "भारत में रेडियो के प्रसारण का जो शुरुआती प्रयास किया गया वह निजी स्तर का था, जिसे जून 1923 में मुंबई में रेडियो क्लब की स्थापना की गई।"[10] ऑल इंडिया रेडियो की रिपोर्ट में यह बताया गया कि "इसकी स्थापना के बाद भारत सरकार एवं निजी कंपनी के समझौते के फल स्वरुप ब्रॉडकास्टिंग सेवा की स्थापना की गई। ब्रॉडकास्टिंग सेवा को प्रायोगिक रूप से मुंबई में जुलाई 1927 को प्रसारण शुरू किया गया और कुछ महीनों बाद कोलकाता से प्रसारित होने लगा।"[11]

रेडियो से चलकर संचार माध्यम के अगले क्रम में दूरदर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। दूरदर्शन के वार्षिक रिपोर्ट से यह पता चलता है कि दूरदर्शन की शुरुआत समाज में शैक्षणिक विकास के रूप में सन् 1959 में की गई। भारत में प्रथम टेलीविजन स्टेशन की स्थापना नवंबर 1959 को दिल्ली में हुई जिसका उद्घाटन उस समय के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने किया। दूरदर्शन में कार्यक्रमों का प्रारंभिक रूप 1 घंटे का होता था जो कि सप्ताह में दो बार मंगलवार एवं शुक्रवार को प्रसारित किया जाता था। इन कार्यक्रमों में 40 मिनट सामुदायिक केंद्रों के लिए तथा समाज में शिक्षा के कार्यक्रम के लिए होता था। दूरदर्शन द्वारा सीधा प्रसारण की शुरुआत सन 1960 के गणतंत्रता दिवस समारोह में किया गया, जो कि सफल रहा। पहले आकाशवाणी और दूरदर्शन दोनों को एक साथ रखा गया था, बाद में इन्हें अप्रैल 1976 को अलग कर दिया गया। इस तरह से दृश्य–श्रव्य माध्यम आकाशवाणी के श्रव्य माध्यम से अलग होकर अलग स्थान ग्रहण किया। वर्तमान समय में दूरदर्शन का पर्याप्त विकास हो चुका है तथा मनोरंजन से लेकर खेल एवं लोकसभा, विधानसभा और राज्यसभा तक का सीधा प्रसारण दूरदर्शन के माध्यम से किया जाता है। दूरदर्शन के वार्षिक रिपोर्ट 1997 के अनुसार "इस समय

57.7 मिलियन घरों में टीवी सेट है और 296 मिलियन लोग अपने घरों में टी0 वी0 कार्यक्रम देख सकते हैं।"[12] जबकि 1997 की रिपोर्ट में दूरदर्शन की सूचना मिलती है तो ऐसा लगता है की 1997 से लेकर वर्तमान समय तक दूरदर्शन ने अपने क्षेत्र में दुगनी वृद्धि की है। आज दूरदर्शन के लगभग सैकड़ों चैनल विद्यमान है।

संचार के माध्यमों के संदर्भ में एक नए संचार की शुरुआत हुई जिसे 'डिजिटल माध्यम' नाम दिया गया। यह संचार का इतना सशक्त माध्यम है जो कहीं भी, कभी भी जानकारियाँ अथवा सूचनाओं को मिनी सेकंड में पहुँचाने का माद्दा रखता है। इस डिजिटल माध्यम के संदर्भ में सुधीर ने एक लेख में लिखा है "आज की स्थिति क्या है कि कुछ भारतीय समाचार पत्रों के संस्करण नेट के सर्वश्रेष्ठ संस्करण में गिने जाते हैं 1995 में केवल 20 समाचार पत्रों की वेबसाइट थी अब इनकी संख्या कई हजार के ऊपर पहुँच गई है। इनमें 225 एशियाई समाचार पत्र हैं। भारत में ऑनलाइन मीडिया की खास विशेषता यह है कि यहाँ अधिकतर साइट भारतीय भाषाओं के हैं। एक आकलन के मुताबिक कुछ 60 प्रकाशनों के संस्करण नेट पर मौजूद हैं, जिनमें अंग्रेजी समाचार पत्रों के साइटों की संख्या लगभग 18 है शेष भारतीय भाषाओं की वेबसाइटें मौजूद है। पत्रकारिता के क्षेत्र में यह क्रांतिकारी दौर है जहाँ भारत के अधिकतर समाचार पत्र इंटरनेट पर उपलब्ध है और इनकी अलग–अलग वेबसाइट मौजूद है। जिन पत्र–पत्रिकाओं की अपनी खुद की वेबसाइट है अथवा जो ऑनलाइन संस्करण उपलब्ध करवाते हैं उनमें से इंडिया टुडे, इंडियन एक्सप्रेस, हिंदुस्तान टाइम्स, दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर, नई दुनिया, जनसत्ता, इंडिया टुडे, अमर उजाला आदि शामिल है।"[13]

जनसंचार के क्रांतिकारी माध्यम कंप्यूटर और इंटरनेटः–

आधुनिक सूचना क्रांति के युग में कंप्यूटर द्वारा सूचना प्रणालियों का प्रबंधन कुशलतापूर्वक किया जा रहा है और यह एक इलेक्ट्रॉनिक उपकरण है जिसकी सहायता से असाधारण गति से अल्प समय से डाटा विश्लेषण एवं आवश्यकता अनुसार सूचना में परिवर्तन कर इसका संप्रेषण किया जा सकता है। इंटरनेट के माध्यम से विश्व के किसी भी भाग में संपर्क किया जा सकता है। इस संदर्भ में डॉ0 पृथ्वीनाथ पांडे इसके महत्व को उजागर करते हुए लिखते हैं "इंटरनेट की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि सूचना के इस अनमोल खजाने की चाबी किसी एक व्यक्ति अथवा कंपनी की मुट्ठी में कैद नहीं है। इंटरनेट तक हर कोई व्यक्ति पहुँच सकता है जिसके पास कंप्यूटर मोबाइल अथवा मॉडेम है। एक तरह से इंटरनेट ने मानवेत्तर शक्ति प्राप्त कर ली।"[14]

पिछले कुछ समय से जिस तरह से संचार के माध्यमों की संरचना में परिवर्तन हुआ है उसका प्रभाव समूचे विश्व के समाज पर बड़ी गहराई से पड़ा। इस बदलते संचार माध्यमों के संदर्भ में डॉ0 कृष्ण कुमार का कथन है "21वीं सदी की दहलीज पर खड़े आज हम इस सूचना तंत्र के हर क्षण बदलते मायावी संसार को देख रहे हैं। श्रव्य–दृश्य संप्रेषण और पत्रकारिता से आगे बढ़कर आज के प्रचार–प्रसार कंप्यूटर से इंटरनेट तक विस्तृत हो चुके हैं।"[15]

आज मानव समुद्र तल से लेकर आसमानों को छू रहा है तथा अंतरिक्ष में विचरण कर रहा है और वहाँ से संदेशों को पृथ्वी तक संप्रेषित करता है। अंतरिक्ष में पृथ्वी की परिधि के चारों ओर घूमते हुए सेटेलाइट का एक जाल बिछा दिया गया है। इस सेटेलाइट आविष्कार के माध्यम से पृथ्वी को किसी भी क्षेत्र से देखा जा सकता है तथा उससे सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। निःसंदेह आज का जनसंचार माध्यम हमारे देश की सामाजिक, आर्थिक तथा व्यवसायिक रूप से पुनर्निर्माण करने का एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। संचार माध्यमों के इसी महत्ता को प्रतिपादित करते हुए बृजमोहन गुप्ता का कथन है "प्रभावी जनसंचार माध्यम देश के सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं अतः मुक्त और सीमित सूचना उपलब्ध कराना मात्र ही जनसंचार माध्यमों का अंतिम लक्ष्य नहीं थे बल्कि इच्छित सामाजिक परिवर्तन अंतिम लक्ष्य है।"[16]

जन संचार क्रांति ने सूचना प्रेषण का इतना बेहतर काम किया है कि इसकी विवेचना करना बड़ा मुश्किल है क्योंकि संचार के माध्यमों से लगभग सभी लोग अवगत हैं। संचार माध्यमों ने सूचना फैलाने की गति को बहुत तेज कर

दिया है परिणातः बदलते सामाजिक, राजनीतिक मूल्यों के साथ–साथ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आतंक ने हमें खुली प्रतिद्वंदिता में आने का नेवता नहीं दिया बल्कि आने के लिए विवश कर दिया है। हमें केवल सूचनाओं को सही रूप में प्रस्तुत ही नहीं करना है बल्कि उसे नवीनतम आकर्षक और परिणामप्रद भी बनाना है। इसमें सुनियोजित व्यवस्था, दूरदर्शिता, ध्येय धर्मिता, सांस्कृतिक चेतना, शैक्षणिक सदस्यता, राष्ट्रीय निष्ठा, अंतर्दृष्टि, आदि के समक्ष समन्वय से इस की गरिमा में वृद्धि की जा सकती है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान समय में संचार माध्यमों ने दुनिया को एक हथेली पर रख दिया है। रिलायंस इण्डिया के संस्थापक ने जियो के उद्घाटन के अवसर पर एक नारा दिया था। 'कर लो दुनिया मुट्ठी में' इसी बात की तरफ इशारा करते हैं। आप जनसंचार माध्यमों के महत्व एवं उपयोगिता को दरकिनार कर नहीं चल सकते। जनसंचार की आवश्यकता साहित्य के लिए जितनी आवश्यक है उतनी ही आवश्यक समाज के लिए भी है। चूँकि समाजसेवी साहित्य का उद्भव एवं विकास हुआ है इसलिए महत्वपूर्ण बात यह है कि समाज सर्वोपरि है। समाज से साहित्य और पत्रकारिता का जो संबंध है, वह मनुष्य के शरीर में उपस्थित आत्मा और मन की तरह है, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वर्तमान समय में प्रत्येक राष्ट्र का जो वर्चस्व है, वह बिना मीडिया के संभव नहीं है क्योंकि राष्ट्र में हो रहे अच्छे–बुरे कार्यों का ब्यौरा हमें पत्र–पत्रिकाओं अथवा समाचार–पत्रों एवं संचार के माध्यमों से ही देखने, सुनने एवं पढ़ने को मिलता है।

संदर्भ –

1. संपूर्ण पत्रकारिता, डॉक्टर अर्जुन तिवारी,पृष्ठ–207
2. भारती प्रसारण विविध आयाम, डॉ मधुकर गंगाधर, पृष्ठ 18
3. साहित्य और पत्रकारिता, डॉक्टर राममोहन पाठक, आजकल सितंबर 1989,पृष्ठ 9
4. साहित्यिक पत्रकारिता क,के,ग त्रैमासिक 1964, पृष्ठ 53
5. इंट्रोडक्शन टू कम्युनिकेशन, पब्लिसड बाई इग्नू, नई दिल्ली, पृष्ठ 16
6. पत्रकारिता का इतिहास एवं जनसंचार माध्यम, संजीव भनावत,पृष्ठ 4
7. वही, पृष्ठ 1
8. वही, पृष्ठ 174
9. आकाशवाणी, राम बिहारी विश्वकर्मा, पृष्ठ 1
10. पत्रकारिता का इतिहास एवं जनसंचार माध्यम, संजीव भनावत, पृष्ठ 165
11. ऑल इंडिया रेडियो रिपोर्ट 1996, पब्लिस्डि बाई आल इण्डिया रेडियो, नई दिल्ली, पृष्ठ 17
12. दूरदर्शन वार्षिक रिपोर्ट 1997,पृष्ठ18
13. वाइडर जनरल ऑफ प्रेस इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया के साइबर स्पेस के जनतंत्र में सुधीर चौधरी का लेख।
14. प्रमाणिक प्रयोजनमूलक हिंदी, डॉ पृथ्वीनाथ पांडे पृष्ठ 515
15. सूचना तंत्र एवं प्रसारण माध्यम, डॉ कृष्ण कुमार रत्तू पृष्ठ 21
16. जनसंचार विविध आयाम, बृजमोहनगुप्ता, पृष्ठ 7

■ ■ ■

प्रभाकर श्रोत्रिय के 'इला' नाटक में संवेदना पक्ष

सुधा देवी
शोधार्थिनी, हिंदी विभाग
जे0एन0पी0जी0 कालेज, लखनऊ

हिंदी साहित्य के समकालीन साहित्यकारों की लंबी चौड़ी शृंखला में एक ऐसे साहित्यकार जिनका नाम बड़े ही आदर व सम्मान के साथ लिया जाता है वह नाम है डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय जी। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय निष्पक्ष संपादक, कुशल नाटककार व समाज सेवी के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में सृजन कार्य किया है। इन्होंने अपनी रचनाओं में कुछ नया परिवर्तन करने की कोशिश की और अपनी साहित्यिक रचनाओं में संवेदना के विभिन्न पक्षों को व्यक्त करने के अथक प्रयास किया है। साहित्य का आधारभूत तथ्य उसकी संवेदनाएं होती हैं जो मानवता से संबंधित होती हैं इस बात को स्पष्ट करते हुए हिंदी साहित्य के महान इतिहासकार डॉ. नगेंद्र ने हिंदी साहित्य का इतिहास में लिखा है –

''साहित्य के इतिहास में हम प्राकृतिक घटनाओं व मानवीय क्रियाकलापों के स्थान पर साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से करते हैं। वैसे, देखा जाए तो साहित्यिक रचनाएं भी मानवीय क्रियाकलापों से भिन्न नहीं अपितु वे विशेष वर्ग के मनुष्यों की विशिष्ट क्रियाओं की सूचक हैं।''[1]

श्रोत्रिय जी के नाट्य साहित्य की प्रशंसा करते हुए, रोहिणी अग्रवाल कहती हैं – ''एक सफल नाटककार के रूप में डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। युगीन विडंबनाओं पर गहरी नज़र रखते हुए उसमें अंतर्निहित त्रासदी और दूरगामी प्रलयकारी प्रभावों की शिनाख्त करना किसी भी साहित्यकार की साहित्यिक यात्रा का अथ और इति होता है।''[2]

नाटककार के रूप में श्रोत्रिय जी ने तीन नाटक लिखे हैं – 'इला', 'साँच कहूँ तो', 'फिर से जहाँपनाह' श्रोत्रिय जी के तीनों नाटकों में इला नाटक सर्वाधिक प्रसिद्ध और समृद्ध नाटक है। इला श्रोत्रिय जी का प्रकाशन काल की दृष्टि से प्रथम नाटक है। प्रस्तुत नाटक श्रीमद् भगवत कथा पर आधारित है। नाटक का कथानक पुराण काल से संबंधित है, फिर भी इसमें जिन समस्याओं का चित्रण किया गया है वह वर्तमान से संबंध रखती हैं। साथ ही साथ नाटककार ने प्राचीन परिवेश के माध्यम से नवीन सदी का चित्रण किया गया है। इला नाटक के विषय में विचार करते हुए रति सक्सेना अपने लेख ' इला नारी के अंतर्मन की व्याप्ति में' लिखती हैं–

''प्रभाकर श्रोत्रिय जी का नाटक इला मात्र पुरातन का पुनराख्यान या किसी मिथक की पुनर्दृष्टि नहीं ,अपितु ज्ञान–विज्ञान के अहंकार को खुली चुनौती है। जिसे नाटककार ने आज के संदर्भ में कई मायनों में समकालीन बना दिया है।''[3]

आज का युग 21वीं सदी का युग है। नाटककार ने ऐतिहासिक व पौराणिक कथानक द्वारा बीसवीं सदी के मानव की इच्छाओं और आकांक्षाओं को इस नाटक में प्रस्तुत किया है। इसके लिए उन्होंने पौराणिक परिवेश को प्रस्तुत किया है। तत्कालीन राज व्यवस्था के माध्यम से नाटककार स्त्री की समस्याओं को चित्रित करना चाहता है। पुराण काल का राजा अपने राजगुरु एवं पुरोहितों के बल पर मनोवांछित व्यवहार कर सकता था। वशिष्ठ मुनि जैसे पुरोहित तपोबल के आधार पर असाध्य को साध्य में बदल सकते थे। उसी प्रकार बीसवीं सदी और आज के वैज्ञानिक भी विज्ञान के बल पर असाध्य को साध्य बनाने में सफल होते हैं। श्रोत्रिय जी पाठकों का ध्यान इस बात की ओर खींचना चाहते हैं कि मानव विज्ञान के आधार पर अकल्पनीय कार्य करने लगा है। इसमें उसे सफलता भी मिल रही है मगर प्रकृति मानव को असली रूप दिखाती है। नारी का शोषण किसी न किसी रूप में चल रहा है। हमारे देश के संविधान ने उसे 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया है, फिर भी हमारे देश के कई क्षेत्रों में नारी के प्रति उसी प्रकार का व्यवहार किया जाता है जिस प्रकार पहले किया जाता था। श्रद्धा आज की उन माताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं जो अपनी बेटियाँ चाहती हैं मगर हमारा समाज आज भी पुरुष प्रधान समाज है जिसमें हर पिता स्वयं का पुत्र चाहता है। अपने कुल का नाम रोशन करने के लिए उसे पुत्र की अभिलाषा रहती है इस बात को श्रोत्रिय जी ने अपने नाटक में स्पष्ट किया है।

मानव पहले से ही जिज्ञासु रहा है, आज भी जिज्ञासु है। प्रकृति के विरुद्ध वह अनेक आविष्कार करता आया है। मनु जैसे राजा भी लिंग परिवर्तन करने जैसा घिनौना कृत्य करते है। आज का मानव मनु से भी अधिक बिगड़ चुका है। वह दवा और उपचार पद्धतियों की प्रचुरता के कारण कुछ

भी करने को उतावला हो गया है। इसी बात पर श्रोत्रिय जी ने प्रकाश डाला है। इसके लिए उन्होंने आधुनिक परिवेश का चित्रण किया है। 'इला' में चित्रित स्त्री श्रंद्धा हो या इला दोनों ही शोषित हैं। पुराने जमाने से स्त्री पर अन्याय एवं अत्याचार होते आए हैं। श्रद्धा एक ऐसी स्त्री है जिसे रानी होकर किसी भी प्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं है। वह राजा की इच्छा अनुसार व्यवहार करती है। रानी होकर भी अपने पेट में पल रही कन्या को पुरुष बनने से नहीं बचा सकती है।

'इला' एक मिथकीय नाटक है जिस की कथा भगवत पुराण पर आधारित है। इला नाटक का गंभीरता पूर्वक अध्ययन करने के उपरांत निम्नलिखित संवेदनाएं उभर कर सामने आती है –

1. भ्रूण हत्या की समस्या
2. पत्नी की उपेक्षा
3. नारी प्रताड़ना
4. लिंग परिवर्तन की समस्या
5. प्राकृतिक व्यवस्था से छेड़छाड़

1. भ्रूण हत्या की समस्या

प्रभाकर श्रोत्रिय जी ने इला नाटक में प्राचीन कथानक को कथा का आधार बनाकर समसामयिक समस्याओं को उभारा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लगभग 7 दशकों में हमने काफी उन्नति की है। इसके पीछे मनुष्य की इच्छाशक्ति और विज्ञान का भी योगदान है। अनेक तकनीक की सहायता से मनुष्य पुत्र मोह वश भ्रूण हत्या करने से भी संकोच नहीं करता है यह समस्या तो प्राचीन काल से चली आ रही है समाज के प्रत्येक वर्ग को संतान रूप में पुत्र ही चाहिए जिसका परिणाम नारी को भोगना पड़ता है। इस विषय पर विचार करते हुए कमल कुमार अपने लेख ' इला आधुनिक : संदर्भ की रोशनी में' लिखते हैं–

''इस नाटक में इला (कन्या) शुक्राणुओं के अनुपात में परिवर्तन करके उसे सुद्युम्न (पुत्र) में परिवर्तित कर देने की कथा कहीं परोक्ष रूप से कन्याओं की हत्या के प्रसंग के साथ ही जुड़ जाती है।''[4]

2. पत्नी की उपेक्षा

'इला' नाटक में राजा मनु राजगुरु वशिष्ठ मुनि की सहायता से 'पुत्र कामेष्टि यज्ञ' का आयोजन करवाते हैं। इस यज्ञ को पूर्व पत्नी श्रद्धा की इच्छा का भी विचार किया जाता है। पत्नी पुत्री की कामना करती है दूसरी तरह मनु पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा करते हैं। राजा के समस्तजन इस ख़बर से आनंदित होकर प्रतीक्षारत हैं कि महारानी को पुत्र रत्न की प्राप्ति होने वाली है। पुत्री होने की ख़बर लगते ही मनु सबसे छिपाकर रानी श्रंद्धा को चंद्रिका दासी की सहायता से उनको कक्ष में कैद कर देती है। नाटक के इन अंशों के माध्यम से पत्नी की उपेक्षा दर्शायी गई है। इला नाटक में पत्नी की उपेक्षा अनेक स्थानों पर दर्शाई गई है। राजगुरु वशिष्ठ के द्वारा पुत्र कामेष्टि यज्ञ में महारानी की पुत्री की इच्छा जानकर महाराज मनु अत्यंत क्रोधित होकर कहते हैं–

''मनु : तो यह बात है। सारी दुर्घटना की जड़ हैं– महारानी। अब तक मैं जिसे अपना संपूर्ण प्रेम देता रहा ,वह सर्पिणी निकली। स्त्री के चरित्र को देव भी नहीं जान सकते। कृतघ्न नीच (दाँत पीसते है)

वशिष्ठ : महाराज संयम खो रहे हैं आपका यह कथन अमानवीय और अन्याय पूर्ण है।

मनु : अपराधी को दंड देना तो दूर उसे अपराधी तक ना कहा जाए? ''[5]

3. नारी प्रताड़ना

इस नाटक में श्रोत्रिय जी ने स्त्री की प्रताड़ना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। स्त्री सदियों से उपेक्षित एवं प्रताड़ित रही है। फिर चाहे वह पत्नी के रूप में हो या पुत्री के रूप में हो, उसे पुरुष की इच्छा पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इला नाटक में श्रोत्रिय जी ने नारी को ही केंद्र में रखा है स्त्री की इच्छा एवं आकांक्षाओं की चिंता किए बिना उसे किस प्रकार अधूरी छोड़ दी जाती है। इसका वास्तविक चित्रण नाटककार ने किया है। इला नाटक में जगह–जगह पर नारी को मानसिक रूप से प्रताड़ित किया गया है । महारानी ने संतान के रूप में पुत्री को जन्म दिया है यह समाचार पाते ही महाराज मनु ने यह सूचना राज्य में किसी और को न प्राप्त हो, इसके लिए रोक लगा दी । नाटक के इन संवादों से यह बात स्पष्ट होती है–

'' चंद्रिका : आपके कक्ष में मेरे सिवा किसी को आने का आदेश नहीं है।

श्रद्धा :(आशंकित और कुछ आवेश में) क्या अर्थ है तुम्हारा ? मुझे बाहर जाने का आदेश नहीं है ! किसी को मेरे कक्ष में आने का आदेश नहीं है ! क्या मैं बंदिनी हूं ?

चंद्रिका : (पैर पड़कर) क्षमा हो देवी ,मैं विवश हूँ। कुछ भी न कहने का आदेश है मुझे । मैं कितनी व्यथित हूँ,मैं ही जानती हूँ ।अच्छा होता यह सब देखने से पहले ही मेरे प्राण निकल गए होते (रोने लगती है ।)''[6]

4. लिंग परिवर्तन की समस्या

नाटककार ने पौराणिक एवं ऐतिहासिक धरातल पर आधुनिक समस्याओं का चित्रण किया है। इसकी मुख्य

समस्या लिंग परिवर्तन की है। जैसे–जैसे आधुनिकता बढ़ती गई वैसे–वैसे मनुष्य की मानसिकता भी बदल गई है। विज्ञान की तरक्की के कारण मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की कोशिश में अवांछनीय कृत्य कर रहा है। श्रोत्रिय जी ने इस कृत्य को सबके समक्ष प्रस्तुत कर उससे होने वाले गंभीर परिणाम की ओर इशारा किया है। इस नाटक में इला के साथ होने वाली लिंग परिवर्तन की प्रक्रिया से अनेक विरोधियों का सामना करना पड़ता है। इला का लिंग परिवर्तन करने के पश्चात सुद्युम्न का द्वन्द्व इला की रागात्मक सुकुमारता और सुद्युम्न के भीतर स्त्री पक्ष की प्रबलता से अनेक विपरीत परिस्थितियाँ भी उत्पन्न होती हैं। नाटक में किए गए लिंग परिवर्तन से एक मानव शरीर स्त्री और पुरुष के आंतरिक और बाह्य परिवर्तनों के विरोध को झेलते हुए न तो वह स्त्री रह जाता है और न ही पुरुष । सुद्युम्न अपनी इस समस्या को अपनी माता से बताते हुए कहते हैं–

''सुद्युम्न : पता नहीं वह कैसे लोग होते हैं ,जिन्हें निरीहों की हत्या में आनंद आता है ? सच कहूँ माँ, आखेट पर जाते हुए मेरा मन बैठने लगता है। ऐसी हिंसा में मेरी कोई रुचि नहीं है ।

श्रद्धा : (खीझते हुए) तो किसमें रुचि है तुम्हारी? पुष्पों से खेलने में ? लताओं से बतियाने में ? जल–क्रीड़ा करने में ? वृक्षों पर हिंडोला डालकर झूलने में ? वाह !

सुद्युम्न : (विवशता से)मैं क्या करूँ माँ ? जाने क्या हो जाता है मुझे ? मन चाहता है ,धनुष बाण फेंक कर फूलों से खेलूँ, लताओं से बतियाऊँ, (अभिनय सहित) हवाओं में उड़ू। ''[7]

5. प्राकृतिक व्यवस्था से छेड़छाड़

वर्तमान समय में वैज्ञानिक नए–नए आविष्कार करके उन्नति की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इसी के चलते मनुष्य प्रकृति व्यवस्था से छेड़छाड़ करता रहता है। इसी प्रकार इला के जन्म माध्यम से पौराणिक काल में राजाओं की मनमानी और पुरुष सत्ता को दर्शाया है नाटक में राजा मनु किस प्रकार मुनि वशिष्ट को पुत्री का लिंग परिवर्तन कर पुत्र बनाने जैसा कुकर्म करने को तैयार करते हैं इस पर मुनि राजा को प्रकृति के साथ किए जाने वाले छेड़छाड़ के प्रति आगाह करते हैं जो इला के संवादों से प्रकट होता है–

''मनु : गुरुदेव ! आप चाहे तो पुत्री को पुत्र में बदल सकते हैं। आघातकारी वाद्य झंकार ,वशिष्ठ स्तब्ध।

वशिष्ठ : ऐसा कुकर्म ?

मनु : (शीघ्रता से) यदि आप चाहते हैं कि मनु का सम्राट के रूप में आदर बना रहे। यदि आप चाहते हैं कि लोग नास्तिक न हो तो आपको यह करना होगा गुरुदेव! (पैरों पर झुक जाता है।)

वशिष्ठ : (आहट से)नहीं महाराज !मुझे धर्म संकट में मत डालो! प्रकृति महाशक्ति है। वह साधना का सम्मान करती है. संसार के कल्याण के लिए अपने अनजाने रहस्य तक खोल देती हैं, परंतु विनाश और विकृति वह सहन नहीं कर सकती।''[8]

प्रकृति महाशक्ति है उसी की विजय होती है। नाटक में प्रकृति के साथ छेड़छाड़ का परिणाम 'इला' और ' सुद्युम्न ' को सहना पड़ता है साथ ही पूरे राज्य और राजा मनु को भी। इस प्रकार श्रोत्रिय जी ने अपने 'इला' नाटक के माध्यम से अनेक समस्याओं को पौराणिक धरातल पर प्रस्तुत किया है। श्रोत्रिय जी के इस दृष्टिकोण से उनके समाजसेवी गुण परिलक्षित होते हैं। नाटक का सृजनात्मक और गंभीर चिंतक रूप भी प्रस्तुत होता है । अतः इस प्रकार से स्पष्ट है कि श्रोत्रिय जी का 'इला' नाटक एक सफल नाटक है।

संदर्भ –

1. डॉ. नगेंद्र (संपादक)–हिंदी साहित्य का इतिहास–नेशनल पब्लिकेशन हाउस 2009–पृष्ठ संख्या 22.
2. शिरीष उर्मिला(संपादक)–प्रभाकर श्रोत्रिय आलोचना की तीसरी परंपरा–नेशनल पब्लिशिंग हाउस–2006–पृष्ठ संख्या 299.
3. शिरीष उर्मिला (संपादक)–प्रभाकर श्रोत्रिय आलोचना की तीसरी परंपरा –नेशनल पब्लिशिंग हाउस 2006 पृष्ठ संख्या– 337
4. शिरीष उर्मिला (संपादक) प्रभाकर श्रोत्रिय आलोचना की तीसरी परंपरा –नेशनल पब्लिशिंग हाउस 2006. पृष्ठ संख्या –341
5. श्रोतिय प्रभाकर (संपादक) –तीन नाटक –भावना प्रकाशन दिल्ली (2009)पृष्ठ संख्या 31
6. श्रोतिय प्रभाकर (संपादक) –तीन नाटक –भावना प्रकाशन दिल्ली (2009)पृष्ठ संख्या 30
7. श्रोतिय प्रभाकर (संपादक) –तीन नाटक –भावना प्रकाशन दिल्ली (2009)पृष्ठ संख्या 44
8. श्रोत्रिय प्रभाकर (संपादक)–इला–किताब घर प्रकाशक दिल्ली (2000) –पृष्ठ संख्या 50

■ ■ ■

कर्मयोगी संत रविदास की जीवन–दृष्टि

डॉ0 सुनीता देवी
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला–5

संत रविदास सामाजिक क्रांति के प्रणेता, समाज सुधारक युग दृष्टा कवि थे। उनका व्यक्तित्व, उनकी वाणी युगीन परिस्थितियों की देन है। संत रविदास ने वर्तमान को ही नहीं भोगा बल्कि भविष्य की समस्याओं को भी पहचाना संत रविदास का समाज जात–पात, छुआछूत, धार्मिक पाखंड, मिथ्याडंबरों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य, शोषण–उत्पीड़न आदि से त्रस्त तथा पथभ्रष्ट था। समाज के इस पतन में धर्म, धर्मशास्त्रों तथा धर्म के ठेकेदारों की अहम भूमिका थी। रविदास ने समय की नस को पहचाना और समाज के मार्गदर्शन हेतु एक बड़े संघर्ष एवं परिवर्तन की आवश्यकता को महसूस किया। तत्कालीन विसंगतियों एवं विकृतियों के विरुद्ध लड़ने, अथक दृढ़ता एवं सत्य की साधना का अदम्य साहस उन्हें जीवनानुभवों से प्राप्त हुआ। संत रविदास के सामाजिक वैचारिक आंदोलन आज भी वर्ग विहीन समाज के निर्माण, मानवता की बहाली, प्रेम हिन्दू–मुस्लिम सौहार्द, आडम्बरहीन भक्ति तथा नैतिकता के निर्माण के लिए युग–युगान्तर तक नितांत महत्वपूर्ण रहेंगे।

बीज शब्दः– सौहार्द, विकृतियों, मिथ्याडंबरों, बुद्धिजीवियों, बेबुनियाद, अन्तर्मुखी, संकीर्णता, असहिष्णुता, लोकोपकारी, सर्वांगीण

आज से लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व भारत में एक ऐसी ओजस्वी प्रतिभासम्पन्न विभूति का आविर्भाव हुआ जिसने हाथ में मशाल लेकर जर्जरित विशृंखलित रूढ़ियों से ग्रस्त मृतप्राय समाज को ज्ञान का आलोक प्रदान किया। निजी जीवन की परवाह न करते हुए स्वयं को नैतिक आदर्श और सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु पूर्णतः समर्पित कर दिया हैं ऐसी बहुआयामी प्रतिभा के धनी संत रविदास के व्यक्तित्व एवं उनकी वाणियों में अभिव्यक्त उनकी विचारधारा के आधार पर अधिकांशतः, विचारों समीक्षकों एवं बुद्धिजीवियों ने उन्हें संत, क्रांतिकारी, समाज–सुधारक, युग चेता, युग प्रवर्तक विद्रोही, आत्मज्ञानी आदि विशेषणों से अभिव्यक्त किया है। ये सभी विशेषण सार्थक एवं साभिप्राय हैं लेकिन इसके साथ–साथ संत रविदास का एक कर्मयोगी रूप भी है जिसकी ओर सामान्यतः अध्येताओं एवं बुद्धिजीवियों का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है क्योंकि इस विषय पर गंभीरता से मनन नहीं किया गया है।

संत रविदास आजीवन कर्मशील रहे और समाज को भी कर्मण्यता का संदेश दिया उन्होंने जो भी सामाजिक, धार्मिक विसंगतियाँ देखी उस पर तीखा प्रहार किया एवं हिन्दू–मुस्लिम दोनों संस्कृतियों के मूलभूत सिद्धान्तों को स्वीकार कर बाह्यडम्बरों का खण्डन किया–

"यदा–यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।"[1]

भगवद् गीता में श्री कृष्ण ने कहा है कि जब–जब भारतभूमि पर विनाशकारी शक्तियों का प्रभाव बढ़ा है। तब–तब किसी न किसी महापुरुष का जन्म हुआ ऐसे ही समय में दीन–हीन भारत की दुःखी जनता को सामाजिक स्वास्थ्य के लिए समता की संजीवनी पिलाने के लिए महान् विभूति संत रविदास का अविर्भाव हुआ था।

हिन्दी साहित्य में प्राप्त समस्त शोध–विवरणों के आधार पर संत रविदास का जन्म 'मांडूर' नामक स्थान पर हुआ था। अब इसका नाम 'मडुवाडीह' हो गया है। रैदास रामायण में इसका उल्लेख मिलता है–

"कासी ढिंग मांडूर सथाना, शुद्ध वरण करत गुजराना।
मांडूर नगर लीन औतारा, रैदास सुभ नाम हमारा।।"[2]

प्रस्तुत पंक्तियों में मांडुर नामक नगर को लोगों ने राजस्थान में स्थित इसलिए मान लिया क्योंकि रविदास ने अपना देह त्याग राजस्थान में किया था और वह काशी

(वाराणसी) के पास वाले अंश को नजरअंदाज़ कर गए।

डॉ० काशीनाथ उपाध्याय रविदास का जन्म स्थान सीर गोवर्धनपुर को भी मानते हैं वे लिखते हैं, "आदि धर्म मिशन मतावलंबी श्री बंताराम होरा की नई खोज के आधार पर रविदास जी का जन्म बनारस के पास की एक छोटी सी बस्ती सीर गोवर्धनपुर में हुआ था।"[3]

संत रविदास वाणी में इनके जन्म स्थान का 'बनारस' के आस–पास होने का उल्लेख मिलता है–

"मेरी जाति कुटवांढला ढोर ढोवंता। निहति बनारसी आस–पास।।

जाके कुटुंब के देढ सभ ढोर ढोढ़त। फिरहि बनारसी आस–पास।।

आचार सहित विप्र करहिं डंडउति। तिन तैन रविदास दासन दास।।"[4]

रविदास जी के जन्म के पश्चात् जाति की बात करते हैं अंतः और बाह्य साक्ष्यों के आधार पर यह निश्चित हो चुका है कि रविदास जाति के चर्मकार थे उन्होंने अपनी वाणी में स्वयं ही स्पष्ट किया हैः–

"नागर जनां मेरी जाति विख्यात चमार।

रिदै राम गोविंद गुन सार।।"[5]

रविदास जी के जन्म के पश्चात् यदि शिक्षा की बात करें तो उस समय जब कि 'स्त्री शूद्रों न धियतनाम' के सूत्र का बड़ी मुस्तैदी से पालन किया जाता था ऐसी स्थिति में किसी शूद्र की औपचारिक शिक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता। संत रविदास अपने समकालीन और गुरुभाई कबीर की भाँति निरक्षर थे। उन्होंने 'प्रहलाद चरित' में स्पष्ट लिखा है कि मैंने 'राम के नाम' के अतिरिक्त और कुछ नहीं पढ़ा है–

"हौ पढ़यो राम को नाम, औन हिरदै नहिं आनौ।

अवर हुँ कछु न जानो, राम नाम हिरदै नहीं छोड़ों।।"[6]

इससे स्पष्ट है कि संत रविदास ने राम नाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं पढ़ा लेकिन उन्हें वेद, उपनिषद् का अच्छा ज्ञान था इस सम्बन्ध में चौधरी इन्द्रजीत सिंह स्पष्ट रूप में लिखते हैं, कि ''यह सत्य है कि तत्कालीन व्यवस्था के कारण और निम्न समझी जाने वाली चमार जाति का होने के कारण उन्हें किसी पाठशाला में बैठकर विधिवत वेद, शास्त्रादि या गुरुमुख से अध्ययन करने का संयोग मिलना संभव नहीं था, परंतु उनकी वाणी के माध्यम से यह पता चलता है कि उन्हें वेद, उपनिषद्, गीता, भागवत, पुराण आदि विषयों का सार और उनकी विचारधारा का पूर्ण ज्ञान था। यहाँ हम भूल जाते हैं कि वेद या ज्ञान सुनने और मनन करने से प्राप्त होता है। ऋषियों को यह उपलब्धि श्रवण और मनन इन्हीं दो श्रोतों के द्वारा हुई थी और वह लगभग मौलिक थी। रविदास ने कृत्रिम अध्ययन को छोड़कर प्रभु की पाठशाला में पढ़ने का प्रयास किया। पुस्तक ज्ञान का बोध न होने के कारण ही उन्हें आत्म ज्ञान की पराकाष्ठा तक पहुँचने का अवसर मिला था।"[7]

संत रविदास की सामाजिक चेतना या सामाजिक विचार पर दृष्टिपात किया जाए तो क्रांतिकारी समाज–सुधारक, दार्शनिक, भक्त और युगद्रष्टा कवि जैसी विशेषताओं से विभूषित किया गया। जिस समय रविदास का आगमन इस पवित्र धरती पर हुआ उस समय मुसलमानों के अत्याचारों, अनाचारों की आँधी जोरों पर थी। हिन्दुओं की आँखों के सामने उनके देवालय घोषणाएं करके गिराए जाते थे उनके आराध्य देवताओं का अपमान किया जाता था। ऐसे समय में न तो वे विद्रोह ही कर सकते थे और न ही सिर झुकाए बिना जी सकते थे। अतः हृदय के आक्रोश को अपनी असहायता, निराशा और दीनता को प्रभु के सम्मुख कहकर मन को शांति देने के अतिरिक्त और रास्ता ही क्या था? तत्कालीन समाज की इस स्थिति को संत रविदास ने वाणी दी है–

"त्राहि–त्राहि त्रिभुवन पति पावन,

अतिशय शूल सकल बलि जाऊँ।।''[8]

मध्यकालीन भारत अंधविश्वासों के घनघोर अंधेरे में साँस ले रहा था, कुछ बेबुनियाद रूढ़ियों ने उसमें और समस्याएं पैदा पर दी थी। रविदास की ख्याति विश्व स्तर तक फैल जाने के पश्चात् भी स्वर्ण हिंदू उन्हें अछूत ही समझते थे। जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी वाणियों के माध्यम से किया है–

"रैदास तूं कंवचि फली तुझे न छिवै कोय।"[9]

इसके अतिरिक्त भी अपने हृदय के इस दर्द को

उन्होंने अपनी वाणी में सहजतापूर्वक व्यक्त किया है–

"हम अपराधी नीच घर जन्मे, कुटुम्ब लोग करैं हाँसी रे।"[10]

समाज में इस तरह का उपहास व्यक्ति को अन्तर्मुखी कर देता है और वह अपनी निराशा और चिन्ता को सर्जनात्मक मोड़ देकर सामाजिक रुढ़ियों पर पुनर्चिंतन करता है, तब जाकर कहीं ये रूढ़ मान्यताएं टूटती हैं। संत रैदास ने तत्कालीन रुढ़ियों के प्रति विद्रोह किया। इसलिए उन्हें सामाजिक क्रांति का अग्रदूत कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है।

संत कवि रविदास ने सर्वप्रथम हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से माना है कि पाखंडी ही ईश्वर को पाने के लिए पूजा–व्रत, तीर्थ, मक्का–मदीना, मंदिर, तीर्थादि में भटकते फिरते है फिर भी उन्हें ईश्वर नहीं मिलते। हिन्दू चौबीस एकादशी के व्रत और मुसलमान रमज़ान का एक महीना रोज़ा रखते हैं उनसे रविदास जी पूछते हैं कि हिन्दू पूर्वाभिमुख होकर पूजा करते हैं और मुसलमान पश्चिमाभिमुख होकर नमाज़ पढ़ते हैं।

भला कैसे राम का देश पूर्व और रहीम का पश्चिम हो सकता है? राम और रहीम तो दोनों एक ही हैं। राम–रहीम की एकता का प्रतिपादन कर सारे देश को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया। उन्होंने हिन्दू–मुसलमानों के वैमनस्य की चौड़ी खाई को पाटने का कुशल प्रयास किया। मध्कालीन समाज में मुगलों के अधिपत्य और अत्याचारों के परिणामस्वरूप हिन्दू–मुस्लिम विद्वेष को दूर करने के लिए प्रेम, सौहार्द्र, भाईचारा एवं मानवता को बढ़ावा देने का प्रयास किया। इसी सम्बन्ध में संत रविदास जी समाज को प्रेरणा देते हुए कहते हैं,

"मंदिर–मस्जिद दोउ एक हैं, इन मंह अंतर नांहि।
रैदास राम रहमान का, झगड़उ कोऊ नाहिं।।
रैदास हमारा राम जोई, सोई है रहमान।
काबा कासी जानि यदि, दोऊ एक समान।।"[11]

संत रविदास ने एक ऐसे सामाजिक, सांस्कृतिक वैचारिक आंदोलन का सूत्रपात किया जो वर्तमान समय में वर्ग–विहीन समाज की ओर अग्रसर होने के लिए नितांत महत्वपूर्ण है। उन्होंने सामाजिक विसंगतियों, वर्जनाओं, कुरीतियों के लिए आजीवन संघर्ष किया। उनका मानना था कि युगीन समाज को रूढ़ियों, विकृतियों और अंधविश्वासों ने खोखला कर दिया और धर्म, भक्ति में बाह्यडम्बरों की बहुलता थी संत रविदास समाज की ऐसी दशा से विचलित हो उठे थे उनके के विचार से आडंबर ही समाज में लड़ाई–झगड़े संकीर्णता और असहिष्णुता के कारण बनते हैं। आडम्बरों से समाज में भी स्थायी सुख, शांति एवं भाईचारे की बहाली नहीं हो सकती। समाज को एक सूत्र में बाँधने के लिए उन्होंने धर्म एवं भक्ति के बाह्यचारों का कड़ा विरोध कर सात्विक भक्ति पर जोर देते हुए कहते हैं

"रविदास उपजह सभ इक नूर तें ब्राह्मन मुल्ला सेख।
सभी को करता एक है, सभ कूं एक ही पेख।।"[12]

संत रविदास ने तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं का विरोध किया और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी को बनाने वाला वह एक ही 'सिरजनहार' है उस एक ही बूँद का विस्तार यह सारा संसार है। प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा में उसी परमात्मा का अंश विद्यमान है, फिर किस आधार पर ब्राह्मण को श्रेष्ठ तथा शूद्र को निकृष्ट ठहराया जाए। उन्होंने जड़मति समाज को समझाया–

"एकै माटी के सभै भांडे, सभ का एकै सिरजनहार।
रैदास व्यापै एकौ घट भीतर, सभ को एकै घड़ै कुम्हार।।
रैदास एकै ब्रह्म का होई रहयो सगल पसार।
एकै माटी सब घट सृजै, एकै सभ कूं सरजनहार।।"[13]

इस प्रकार कवि रविदास ने वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था का विरोध किया क्योंकि इस व्यवस्था ने हमारे समाज को खोखला कर दिया था मानवता कराह रही थी रविदास मानव मात्र की समानता के पक्षधर थे उनके अनुसार ऊँचे कुल में जन्म लेने से या ब्राह्मण होने मात्र से कोई ऊँचा या श्रेष्ठ नहीं हो जाता बल्कि ब्राह्मण वह जिसमें ब्रह्मत्मा विद्यमान है–

"ऊँचे कुल के कारणै ब्राह्मन कोय न होय।
जउ जानहिं ब्रह्य आत्मा 'रैदास' कहि ब्राह्मण सोय।।"[14]

डॉ० बृजमोहन शर्मा के इस कथन में सत्य ही ध्वनित हुआ है–

"छुआछूत एवं ऊँच–नीच को ही नहीं बल्कि गुरु जी ने माँसाहार, अनैतिकता के अतिरिक्त धनलिप्सा, दुराचरण जैसे तत्वों को असमाजिक बतलाकर एक लंबी क्रांति का सूत्रपात किया।"[15] संत कवि रविदास ने धार्मिक संकीर्णताओं भेदभावों को सर्वथा त्याज्य बतलाया। क्योंकि यह भेदभाव ही 'वसुधैव कुटंबकम' का विरोधी है। इसी ने तो आदमी को आदमी से दूर किया है। मानवीयता के लोकोपकारी सिद्धान्तों के प्रसार एवं प्रचारार्थ मन्दिर, मस्जिद, गिरिजाघर आदि पूजा स्थानों तथा काबा, काशी, मक्का मथुरा आदि तीर्थ स्थानों का भी विशेष महत्व नहीं है। क्योंकि प्रभु का वास वहाँ नहीं व्यक्ति के हृदय में है–

"का मथुरा का द्वारका, का कासी हरिद्वार।

रैदास खोजा दिल अपना, तउ मिलिया दिलदार।।"[16]

समाज में फैले मिथ्याचारों, आडम्बरों का संत रविदास ने डटकर विरोध किया। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा।' वस्तुतः मन की शुद्धता ही सर्वोपरि है। उन्होंने समस्त बुराईयों पर एक–एक कर सशक्त चोट की। समाज सुधारक होने के नाते उन्होंने समाज की सही नब्ज़ को पकड़ा और वे एक ऐसे स्वराज की कल्पना करते हैं, जहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति को अन्न मिले तथा सभी मनुष्य बराबर हो, किसी के मन में ऊँच–नीच का भाव न हो। सब लोग प्रसन्न रहें। कवि रविदास एक समाजवादी व्यवस्था की कल्पना करते थे।

निष्कर्षतः कर्मयोगी संत रविदास के समस्त जीवन और काव्य का विवेचन, विश्लेषण से यह तथ्य ध्वनित होता है कि संत रविदास का उदात्त चरित्र मानवता के लिए आवश्यक सदाचारों के शाश्वत मूल्यों का अक्षय भंडार है, जिसमें से प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए सुन्दर–सुन्दर मोतियों का चुनाव सुगमता से कर सकता है। उन्होंने हिंदू–मुसलमानों में भावनात्मक एकता स्थापित करने का प्रयास किया। 'छुआछूत' तथा 'वर्ण व्यवस्था' का विरोध कर सामाजिक स्वास्थ्य के लिए अचूक औषधि तैयार की। 'जीवहत्या' को पाप घोषित कर माँसाहार जैसी प्रवृत्ति को समाप्त करने का प्रयास किया तथा अहिंसा के वैदिक सिद्धान्त का प्रचार किया। वहीं पर मानव मात्र को पूजा के साथ–साथ श्रम के प्रति आस्था का भी उपदेश दिया।

इससे भी अत्यधिक महत्वपूर्ण बात जो उस युग के किसी संत कवि के काव्य में दिखाई देती, वह है उनकी 'स्वातंत्र्य चेतना।' उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाई थी तथा एक ऐसे समाज की कल्पना की थी जिसमें ये विषमताएं न हों। प्रत्येक व्यक्ति श्रम करके जीविकोपार्जन करें तथा हिन्दू–मुसलमान भारत की इस पवित्र भूमि पर मिलकर रहे एवं इसके सर्वांगीण विकास के लिए कार्य करें। इन सम्पूर्ण तथ्यों पर गम्भीरता से विचार करने के उपरान्त हम कह सकते हैं कि संत रविदास के काव्य का वैचारिक आधार बहुत दृढ़ तथा उसकी भावात्मक पृष्ठभूमि बहुत ही विस्तृत तथा सामाजिक महत्व की है जिसकी प्रासंगिकता सामाजिक सन्दर्भों में भी असंदिग्ध है।

संदर्भ –

1. डॉ० एन० सिंह (सं०) रैदास ग्रन्थावली, पृ0 84
2. डॉ० एन० सिंह, संत कवि रैदास, मूल्यांकन और प्रदेय, पृ० 44
3. डॉ० काशीनाथ उपाध्याय, गुरु रविदास वाणी, पृ० 11
4. डॉ० वी० पी० शर्मा, संत गुरु रविदास वाणी, पृ० 117
5. वही, पृ० 90
6. स्वामी रामानंद शास्त्री और वीरेन्द्र पांडेय, संत गुरु रविदास और उनका काव्य, पृ० 72
7. इन्द्रस्थ सिंह, संत गुरु रविदास, पृ० 48
8. डॉ० एन० सिंह (सं०) रैदास ग्रन्थावली, पृ० 87
9. डॉ० एन० सिंह, संत कवि रैदास : मूल्यांकन और प्रदेय, पृ० 49
10. वही, पृ० 50
11. योगेन्द्र सिंह, संत रैदास, पृ० 102
12. आचार्य पृथ्वी सिंह आज़ाद, युग प्रवर्तक संत रविदास, पृ० 72
13. डॉ० एन० सिंह, संत कवि रैदास : मूल्यांकन और प्रदेय, पृ० 28
14. वही, पृ० 34
15. डॉ० बृजमोहन शर्मा, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में गुरु रविदास के जीवनमूल्यों की उपयोगिता, पृ० 63
16. डॉ० एन० सिंह, संत कवि रैदास : मूल्यांकन और प्रदेय, पृ० 30

■ ■ ■

हिंदी की अधुनातन स्थिति

डॉ. अवधेश कुमार
प्रोफेसर, हिंदी साहित्य विभाग
अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

जब भी हम किसी भाषा या बोली के बारे में बात करते हैं तो वह अनिवार्य रूप से किसी समुदाय या समाज से जुड़ी होती है। वहाँ का जीवन, मानवीय शैली और व्यवहार उसकी भाषा में ध्वनित होती है। इसलिए इसका सरोकार व्यापक रूप से समाज को प्रतिबिंबित करने से जुड़ जाता है। भारतीय समाज तो विविधताओं भरा है, जहाँ प्रत्येक स्तर पर नई बातें और शैली दिखाई पड़ती है। भाषा के संदर्भ में तो अपने यहाँ कहा भी जाता है कि 'कोस–कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी' यानी भाषाई जुबान का बदलना बोलियों के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भी है। लेकिन जब हम वर्तमान में 'हिंदी' की बात करते हैं तो एक सुव्यवस्थित भाषा संरचना और साहित्य की बात करते हैं। जिसका लगभग बारह सौ सालों का व्यवस्थित इतिहास और विकास यात्रा हमारे सामने है। इसी भाषा के विकास के साथ जुड़ी उन सभी सामाजिक और वैचारिक बहसों को भी इसके वर्तमान स्वरूप के साथ देखना समझना होगा।

'हिंदी' भारत राष्ट्र के गर्व की भाषा है। जिस भाषा में हमने अपनी लड़ाइयाँ लड़ी। चाहे भक्ति आंदोलन की बातें करें या फिर स्वाधीनता आंदोलन की, इन सबके आधार में हिंदी ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय से लेकर आज तक हिंदी ने जिस प्रकार की उन्नति की है, वह सचमुच आश्चर्य का विषय है। बीसवीं शताब्दी के आस–पास की खड़ी बोली की कविता और आज की कविता का तुलनात्मक अध्ययन एवं मूल्यांकन करें तो भाषा–शैली, विषय, काव्यात्मकता, अभिव्यंजना शक्ति आदि दृष्टियों से आश्चर्यजनक अंतर मिलता है। यही स्थिति गद्य के क्षेत्र में भी है। भाषा की अभिव्यंजना–शक्ति, शैली की विविधता, विषय की अनेकता, विधाओं की विभिन्नता, अभिव्यक्तियों की प्रौढ़ता। सूक्ष्म विचारों को सूत्र रूप में उपस्थित करने की शक्ति आदि दृष्टियों से आज के गद्य में और भारतेंदु युग के गद्य में बहुत अंतर आ गया है। उस समय साहित्य उतना प्रचुर नहीं था जितना आज है। स्थिति में भी बड़ा अंतर है। उस समय की हिंदी पूर्ण रूप से उपेक्षित थी, आज उसका सर्वत्र आदर है। वह सबका सिरमौर है।

"आज हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है। कुछ लोग यह तथ्य मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं और कुछ लोग रुद्र कंठ से। कुछ लोग इसका विरोध ईर्ष्या–द्वेष वश करते हैं और कुछ लोग स्वार्थ वश फिर भी, इसकी महत्ता सभी स्वीकार करते हैं। आज हिंदी भारत के ही सभी प्रांतों की नवोदित प्रतिभाओं के अध्ययन और आदर का ही विषय नहीं बनी है, विदेशी भी उसका महत्व स्वीकार करते हैं।"[1] मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, ट्रिनीडाड आदि देशों में हिंदी का मौलिक लेखन हो रहा है। अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, जापान, जर्मनी, नार्वे, पोलैण्ड, हंगरी, हॉलैण्ड, आस्ट्रेलिया,चीन आदि देशों में भी हिंदी की पढ़ाई हो रही है। इन देशों के अतिरिक्त दक्षिणी अफ्रीका, कीनिया, श्रीलंका, मलेशिया, थाईलैण्ड, इंडोनेशिया, सिंगापुर, पाकिस्तान बंगला देश, कम्बोाडिया, लाओस आदि ऐसे देश हैं, जहाँ हिंदी का किसी न किसी रूप में प्रचलन है।"[2] इन देशों में भी हिंदी किसी न किसी रूप में पढ़ी–लिखी जा रही है।

भारतेंदु युग में ही हिंदी के गद्य का व्यवस्थित स्वरूप निर्मित होता है, और यही से इसके प्रयोग का क्षेत्र विस्तार भी होता है। गद्य के साथ ही साहित्य में अनेक नई विधाएँ सामने आती हैं, और उनके माध्यम से रचनाकार साहित्य और भाषा दोनों को नई ऊँचाई पर स्थापित करता है। नाटक, निबंध, पत्रकारिता और अनुवाद के माध्यम से भारतेंदु मंडल के रचनाकारों यथा–बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' आदि ने हिंदी को प्रतिष्ठित किया। तो आगे चलकर महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा प्रयोग की सजगता और साहित्य की विषय–वस्तु को व्यवस्थित करने के लिए 'सरस्वती' पत्रिका का सहारा लेकर अभूतपूर्व योगदान दिया। जिसके सहारे 'हिंदी' भाषा और साहित्य दोनों पर आधुनिक समय की नब्ज़

को पकड़ते हुए, उसको अभिव्यक्ति करने में सफल हो सकी।

इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा हैं कि "जो कुछ हुआ वही बहुत हुआ और उसके लिए हमारा हिंदी साहित्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी का सदा ऋणी रहेगा। व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफाई के प्रवर्तक द्विवेदी जी ही थे। 'सरस्वती' के संपादक के रूप में उन्होंने आयी हुई पुस्तकों के भीतर व्याकरण और भाषा की अशुद्धियाँ दिखा–दिखाकर लेखकों को बहुत सावधान कर दिया। ... गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के इस शुभ प्रभाव का स्मरण जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी, तब तक बना रहेगा।"[3]

द्विवेदी युग के भाषा संस्कार के बाद छायावाद का समय आता है, जिस समय में हिंदी भाषा और साहित्य को जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा ने नई ऊँचाई प्रदान की। रामचन्द्र तिवारी के अनुसार– "द्विवेदी युग के परिमार्जन एवं प्रौढ़ता के पश्चात हिंदी–गद्य कलात्मकता एवं काव्यात्मकता की ओर झुकने लगा है। द्विवेदी–युग का जीवन–विषयक दृष्टिकोण ही नैतिकता–प्रधान था। फलतः युग–चेतना का भार वहन करने वाले गद्य–साहित्य का गंभीर एवं शुष्क हो जाना स्वाभाविक था। ...छायावादी काव्यात्मक अलंकृत एवं अपेक्षाकृत सूक्ष्म भावाभिव्यक्तियों के पोषक गद्य की प्रतिक्रिया–स्वरूप प्रगतिशील लेखकों ने सरल, व्यावहारिक एवं अनलंकृत गद्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।"[4] इन रचनाकारों में राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, रामविलास शर्मा, अमृतराय, रांगेय राघव इत्यादि प्रमुख है।

भाषा की एक अनिवार्य शर्त है कि वह अपने समय और समाज की स्थितियों को ठीक तरह से अभिव्यक्त करती रहे। कला, विज्ञान, गणित, खगोल, दर्शन, सांख्य इत्यादि सभी विषयों को व्यक्त करने में सक्षम हो। 'हिंदी' ने इस स्थिति को हासिल करते हुए आज विश्व में सर्वाधिक प्रयोग में आने वाली भाषाओं में एक है। विश्व का कोई भी देश भारत की भाषायी विविधता की बराबरी नहीं कर सकता। हमारे यहाँ लगभग 1652 मातृभाषाएँ हैं। वैसे तो भारत का संविधान किसी भी भाषा को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा नहीं देता, लेकिन केंद्र सरकार की राजभाषा हिंदी है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343, राजभाषा अधिनियम 1963 के अनुसार आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को शामिल किया गया है। इन्हीं भाषाओं को विशेष मान्यता और आधिकारिक प्रोत्साहन दिया गया है।

अधुनातन स्थिति की बात करें तो कंप्यूटर और इंटरनेट की सूचना क्रांति के बाद से सभी चीजों में बहुत ही तेज गति से बदलाव हुआ है। ऐसे में जीवन–शैली और उनसे उत्पन्न स्थितियाँ भाषिक स्तर पर भी बदली है। भाषा प्रयोग के तौर–तरीके बदले हैं। ऐसे में जरूरी हो गया है कि भाषा तकनीकी स्तर पर भी समृद्ध हो। तभी उस भाषा का अस्तित्व बचा रह पाएगा। प्रिन्ट माध्यम के समानांतर स्क्रीन पर डिजिटल फॉर्म में लिखने–पढ़ने और सहेजने के चलन के साथ भाषाओं का विस्तार हुआ है। 'हिंदी' इस विस्तार में शामिल भाषा है।

हिंदी गद्य की प्रकीर्ण विधाओं (आत्मकथा, जीवनी, यात्रा साहित्य, संस्मरण, रेखाचित्र, गद्यगीत, पत्र साहित्य, डायरी, रिपोर्ताज, इण्टरव्यू, लघु कथा, केरी केचर एवं एकालाप) के साथ–साथ बाज़ार, सिनेमा, विज्ञापन, अनुवाद इत्यादि के माध्यम से हिंदी के क्षेत्र का विस्तार हुआ है। विश्व के किसी कोने में बैठा व्यक्ति सहजता से हिंदी भाषा को सीख–पढ़ सकता है और ऑनलाइन उपलब्ध सामग्री को इस्तेमाल कर सकता है। वैश्वीकरण के समय में बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने उत्पाद को भारत के बड़े बाजार में उसकी अपनी भाषा 'हिंदी' के माध्यम से पहुँचा रही है। क्योंकि किसी भी देश की भाषा और संस्कृति एक ऐसा माध्यम है जिसके सहारे वहाँ की जनता की आत्मा तक पहुँचा जा सकता है। बाज़ार ने इसी चीज को आधार बनाया है। अर्थशास्त्री जोसेफ स्टिंगलिट्स ने लिखा हैं कि "भूमंडलीकरण जिस कार में सवार होकर दिग्विजय के लिए निकलता है उसके चार पहिए हैं– निजीकरण, पूँजीबाज़ार का उदारीकरण, बाज़ार आधारित मूल्य निर्धारण और मुक्त बाज़ार। भूमंडलीकरण अपने मुक्त व्यापार के लिए भाषा और संस्कृति को मोहरा बनाता है, वह एक ऐसी भाषा का निर्माण करता है जो गतिशील और अविश्वसनीय होती है। उसने अपने बाजार का विस्तार करने के लिए बहुसंख्य लोगों की भाषा हिंदी को गले लगाया है।" विश्व की सबसे बड़ी भाषा के रूप में अंग्रेजी के महत्त्व को नकारा तो नहीं जा सकता, लेकिन भारतीय ज़मीन पर मौजूद संस्कृत, तमिल, तेलुगु, मलयालम, उड़िया, बंगाली जैसी शास्त्रीय भाषाओं के बीच हिंदी सभी दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। भाषा की ताक़त यही

होनी चाहिए कि वह प्रत्येक क्षेत्र की अभिव्यक्ति का माध्यम बने। प्रयोग, व्यवहार, कार्यालय, साहित्य इत्यादि सभी क्षेत्र में हिंदी की स्थिति बेहतर हुई है और प्रयोग बढ़ा है और निरन्तर बढ़ रहा है, विश्व हिंदी सम्मेलनों ने भी हिंदी की स्थिति को बेहतर बनाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

एक समय था जब हिन्दी भाषा की बात आजीविका के संदर्भ में मुश्किल से की जाती थी। कुछ ही सीमित क्षेत्रों में इससे रोजगार संभव था लेकिन आज के समय में व्यापक बदलाव हुआ है। आज 'सिविल सेवा परीक्षा' से लेकर अन्य प्रतियोगी परीक्षाएं भी हिंदी या भारतीय भाषाओं में आयोजित की जा रही हैं। यूनिकोड के विकास से सूचना प्रौद्योगिकी और रोजगार में हिंदी की स्थिति सुदृढ़ हुई है। आज सभी सरकारी बैंकों, उपक्रमों, कार्यालयों, गैर सरकारी संगठनों, स्वायत्तशासी संस्थानों में हिंदी का प्रयोग बढ़ा है।

सोशल मीडिया और ब्लॉग लेखन ने 'हिंदी' भाषा के प्रयोग को और अधिक लचीला एवं सरल बनाया है। सोशल मीडिया के सभी बड़े प्लेटफॉर्म के संचालन की भाषा में हिंदी शामिल है और इसके उपयोगकर्ता बड़े स्तर पर अपनी अभिव्यक्ति के लिए हिंदी का प्रयोग कर रहे हैं। साहित्यिक भाषा के रूप में हिंदी की स्थिति तो हमेशा बेहतर रही है। लेकिन वर्तमान समय में रोजगार की स्थिति पर इस भाषा की आलोचना होती रही है। लेकिन अब स्थिति तेजी से बदल रही है। हिन्दी की स्थिति बेहतर हुई है।

अधुनातन स्थिति में एक दौर 'नई वाली हिंदी' का चला है। यह किसी मायने में भाषिक संरचना से भिन्न या विषय–वस्तु के स्तर पर अलग नहीं है बल्कि इस मुहिम के द्वारा 'हिंदी' भाषा के उस तात्कालिक स्वरूप से है जो सामाजिक और भाषिक बदलाव को स्वीकार करती है। यह संकल्पना उस टैबू को तोड़ती है जिसमें रोजगार संकट और पिछड़ेपन की बात को बार–बार उठाया जाता है। इसने सभी माध्यमों से अपनी चमक एवं धमक को उपस्थित किया है। चाहे वह साहित्यिक लेखन हो, मीडिया हो या फिर कवि सम्मेलन का मंच हो।

वर्तमान में हो रहे 'साहित्य महोत्सव' इसके बड़े उदाहरण है। चाहे वह दिल्ली, जयपुर, वर्धा का हो या भोपाल, झाँसी, लखनऊ का। जिस समय में पॉप कल्चर का इतना वर्चस्व हो, वहाँ देश के छोटे शहरों में भी हिंदी भाषा, साहित्य और सिनेमा से जुड़े महोत्सव हो और बड़े–बड़े उद्योगपतियों और टेलीकम्पनियों का साथ हो। दशकों पहले ऐसी स्थिति नहीं थी, यह वर्तमान स्वरूप में बदलाव का नमूना है, जिससे अपनी भाषा और साहित्य पर गौरवान्वित हुआ जा सकता है। पहले भारतीय सिनेमा का पटकथा लेखन और अभिनय अलग दुनिया थी, जिसे हम सीधे परदे पर देखते थे। लेकिन वर्तमान समय हिंदी लेखक द्वारा लिखा उत्कृष्ट साहित्य सिनेमा के केंद्र में जगह बना रहा है। और इस तरह से हिंदी लेखक का क़द, उसकी क़ीमत और उसका सम्मान सब बढ़ा है। अब फिल्म के साथ हम उसके लेखक को भी जानते हैं। हिंदी उपन्यास और कहानियों की पुस्तकें आज बेस्टसेलर हैं, इसके अनेक संस्करण बिक रहे हैं अर्थात साहित्य के माध्यम से हिंदी की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है और इसकी स्थिति मजबूत हुई है।

'अनुवाद' पर दृष्टि डाले बगैर हिंदी की अधुनातन स्थिति की बात अधूरी रह जाएगी। विश्व साहित्य और उसकी सूचनाएं आज हमारे समक्ष अपनी भाषा में मौजूद है। दुनिया के किसी भी कोने में चले जाएं गूगल और उसके अनुवाद की व्यवस्था आपके सहयोग के लिए तत्पर है। तकनीकी, विज्ञान, वाणिज्य और बाज़ार के लिए एक भाषा का दूसरी भाषा में अनुवाद सबसे आवश्यक हो गया है। भारत सरकार और संविधान के द्वारा भी इसकी व्यवस्था की गई है। गृह मंत्रालय के केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो इस दिशा में सबसे सक्रिय संस्था है। जिसके माध्यम से अपने ही देश में भाषाई विविधताओं का सम्मान करते हुए कामकाज की भाषा के रूप में हिंदी और अंग्रेजी में अनुवाद की सुविधा रखी गई है। वर्तमान में अच्छे अनुवादकों की माँग इतनी बढ़ गयी है कि वे यदि चाहें तो निजी अनुवाद एजेंसियों के लिए घर बैठे काम कर सकते हैं और अच्छी कमाई कर सकते हैं। वर्तमान में अनुवाद करोड़ों का उद्योग बन चुका है। लगभग सभी बड़े शहरों और मेट्रो सिटीज़ में ऐसी अनेक प्राइवेट अनुवाद एजेंसियाँ सक्रिय रूप से अपना कारोबार कर रही हैं। केंद्र सरकार के सभी दफ़्तरों में राजभाषा अधिकारी के पद सृजित हैं और उसके मानदंड बने हुये हैं। इनकी भर्ती की समुचित व्यवस्था की गयी है ताकि योग्य अनुवादकों को रोज़गार मुहैया कराया जा सके। तमाम कंपनियों और बैंकों द्वारा विश्वविद्यालय में पढ़ रहे विद्यार्थियों का सीधा कैम्पस

सेलेक्शन द्वारा नियुक्ति की जाने लगी है। लोग आजीविका के लिए हिंदी भाषी राज्यों से अन्य भाषा–भाषी राज्यों में जाते रहे हैं। ऐसी स्थिति में हिंदी का ज्ञान विस्तार स्वाभाविक तौर पर हुआ है। हम सभी जानते हैं कि पूरे भारत में हिंदी को संपर्क भाषा का दर्ज़ा मिला हुआ है। इस दर्ज़े का महत्त्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। हिंदी जानने वालों को प्राथमिकता दी जा रही है। स्थितियाँ बेहतर होती जा रही है।

अधुनातन स्थिति में हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली की उपयोगिता पर विचार करना आवश्यक है। यही पारिभाषिक शब्दावली प्रयोजनमूलक हिंदी का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसी ने हिंदी को ज्ञान, विज्ञान, प्रशासन, वाणिज्य और जनसंचार की भाषा बनने का गौरव प्रदान किया है। दरअसल किसी भाषा में विद्यमान पारिभाषिक शब्द का सीधा संबंध उस भाषा–भाषी जनसमूह के सांस्कृतिक और वैचारिक विकास से होता है। जैसे–जैसे किसी जनसमुदाय का जीवन अपेक्षाकृत अधिक जटिल, संश्लिष्ट और वैविध्यपूर्ण होता जाता है, उसकी भाषा में मूर्त–अमूर्त संकल्पनाओं का विकास होता जाता है और उन संकल्पनाओं के लिए समानांतर रूप से पारिभाषिक शब्दावली विकसित होती जाती है। पारिभाषिक शब्दों के बारे में भोलानाथ तिवारी ने लिखा है कि "पारिभाषिक शब्द ऐसे शब्दों को कहते हैं जो रसायन, भौतिक, दर्शन, राजनीति आदि विभिन्न विज्ञानों या शास्त्रों के शब्द होते हैं तथा जो अपने–अपने क्षेत्र में विशिष्ट अर्थ में सुनिश्चित रूप से परिभाषित होते हैं। अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से निश्चित रूप से पारिभाषित होने के कारण ही ये शब्द पारिभाषिक कहे जाते है।"[5] इस तरह नए शब्दों के प्रयोग से हिंदी के व्यावहारिक, कामकाजी और प्रशासनिक क्षेत्रों में प्रगति हुई है। हिंदी को प्रतिष्ठा दिलाने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

वर्तमान में हिंदी भाषा और साहित्य की उपादेयता इस बात से प्रमाणित होती है कि यह हमारे बहुसंख्य लोगों की भाषा है। साहित्यकारों और कवियों की प्रिय भाषा है, लोकप्रिय और सर्वाधिक देखी जाने वाली फिल्मों की भाषा है। इसमें विज्ञान और व्यापार की अद्यतन जानकारियाँ हैं। यह भारतीय राजनीति की इकलौती सशक्त भाषा है, जिसमें हमारा शासन तंत्र काम करता है। 'नई शिक्षा नीति 2020' ने भी आरंभिक शिक्षा के रूप में मातृभाषा को स्वीकार्यता दी है। इससे हिंदी ही नहीं वरन सभी मातृभाषाएं और समृद्ध होंगी। और हम जानते हैं कि 'हिंदी' के साथ कितनी बोलियाँ या मातृभाषाएं प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हैं अतः उनकी समृद्धि में ही 'हिंदी' की समृद्धि शामिल है। हिंदी के वैश्विक विस्तार के संबंध में डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित ने लिखा है "हिंदी की वैश्विकता का मुख्य कारण यह है कि उसने संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश जैसी आकर भाषाओं के अतिरिक्त, अरबी, फारसी, तुर्की, यूनानी, पश्तो, डच, पुर्तगाली, अग्रेंजी, फ्रेंच, जर्मनी, स्पेतनिश, इटालवी जैसी अनेक भाषाओं से भारी मात्रा में शब्दावली ग्रहण की है बदले में उन्हें अपनी शब्द राशि भी दी है। धीरे–धीरे 'वह विश्वभाषा' की ओर अग्रसर है।"[6]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दी की अधुनातन स्थिति साहित्य, ज्ञान–विज्ञान, पत्रकारिता, व्यापार, वाणिज्य, अनुवाद, कौशल आदि सभी क्षेत्रों में निरन्तर प्रयोग होने के कारण बढ़ी है और बढ़ती जा रही है। हिंदी समय की माँग के अनुरूप अपने को सिद्ध कर रही है।

संदर्भ –

1. डॉ. भोलानाथ. आधुनिक हिंदी साहित्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि. (1969). प्रगति प्रकाशन, आगरा. पृष्ठ–16
2. गगनांचल, वर्ष–6 अंक–04 वर्ष (1983) नई दिल्ली., पृष्ठ 185
3. शुक्ल, रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, (2019) कमल प्रकाशन. पृष्ठ संख्या–490
4. तिवारी, रामचन्द्र, हिंदी का गद्य साहित्य. (2016) विश्वविद्यालय प्रकाशन. वाराणसी. पृष्ठ संख्या–48–53
5. सोनटके, माधव. प्रयोजनमूलक हिंदी,(2008)लोकभारती प्रकाशन. इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या–02
6. डॉ. टंडन, पूरनचन्द्र एवं डॉ. तिवारी, सुनील कुमार, 'भूमण्डलीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी, (2015) नवउन्नयन साहित्यिक सोसाइटी, डी–67, शुभम एनक्लेव, पश्चिम बिहार, नई दिल्ली 110063, पृष्ठ संख्या–03,

■ ■ ■

संस्कृति, संस्कार और संस्कृत

ज्योति सिंह
सहायक प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग,
सिद्धार्थ कालेज ऑफ आर्ट्स कॉमर्स एण्ड साइंस,
बुद्ध भवन, फोर्ट मुम्बई

विश्व के प्रत्येक राष्ट्र की अपनी संस्कृति होती है, जिस पर वह गर्व करता है। युग–युगों से प्रत्येक राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक धरोहर को सहेज कर रखता आया है। यह सांस्कृतिक गौरव ही प्रत्येक राष्ट्र की गरिमा का द्योतक रहा है। संस्कृति ही राष्ट्र की उन्नति एवं प्रगति का सच्चा मापदण्ड है। किसी भी राष्ट्र के अतीत तथा वर्तमान की उपलब्धियों का लेखा–जोखा ही उसकी संस्कृति है। हमारा भारतवर्ष संस्कृति के रक्षण में, उसके पालन में, उसके पोषण में सदा–सदा से ही अग्रपांक्तेय रहा है। सम्पूर्ण वसुधा को ही अपना कुटुम्ब मानने वाला देश इस विश्व में दूसरा नहीं है। सर्वे भवन्तु सुखिनः का जयघोष केवल भारत ही कर सकता है। आप किसी ऐसे देश का नाम बता सकते हैं, जहाँ माता–पिता के साथ अतिथि को भी देवता माना जाता हो ? यत्र नाऽर्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः की अवधारणा विश्व के किसी भी दूसरे देश में व्याप्त नहीं है। सशक्तीकरण का दावा करने वाले पश्चिम के देश आज भी स्त्री को भोग्या से इतर कुछ नहीं मानते, जबकि हमारे देश में तो कन्या को देवी मानकर उसे पूजने की परम्परा आदिकाल से चली आ रही है। यह हमारा भारतवर्ष ही है, जहाँ हमारे ऋषियों ने पृथ्वी को भी माता का दर्ज़ा दिया, तभी तो प्रातःकाल उठकर हम सभी ''समुद्रवसने देवि पर्वतस्तन मण्डले, विष्णुपत्नी नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्वमे कहकर शैया से उतरते ही धरती माता का कृतज्ञतापूर्वक स्पर्श करते हैं। धर्म की मीमांसा करते हुए श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि ''आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'' 'अर्थात् जो हमें अच्छा न लगता हो, वैसा आचरण, वैसा व्यवहार, दूसरे के साथ कदापि नहीं करना चाहिए, यह हमारे धर्म का विराटत्व ही तो है। इसी में हमारी संस्कृति का रहस्य भी छिपा है। धर्मसभाओं में धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो। प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो का उद्घोष लगाते भारत में सर्वत्र देखा जा सकता है। विचार एवं सोच की यह विराटता ही हमें संस्कृति के उच्च शिखर पर विराजमान करती है। यह उद्घोष ''उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम''् का सरल और प्रभावी हिन्दी रूपान्तर ही तो है।

आइए अब संस्कारों की बात करें। भारतीय हिन्दू समाज में सोलह संस्कारों की विशेष चर्चा की जाती है। गर्भाधान, पुंसवन, जन्म, विद्याध्ययन, उपनयन, विवाह, अंत्येष्टि आदि इनमें प्रमुख है। धर्मशास्त्रों में तो यहाँ तक कहा गया है कि उपनयन संस्कार के बाद ही ''संस्कारात् द्विज उच्यते'' की पुष्टि होती है। यह सभी संस्कार वैदिक विधि–विधान तथा योग्य तपोनिष्ठ आचार्य के आश्रय में सम्पन्न कराये जाने चाहिए, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है। पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत आने वाले धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हमारे संस्कारों की उच्चता एवं शुचिता का ही प्रतीक है। इसमें प्रथम है धर्म, अर्थात् हमारे प्रत्येक क्रियाकलाप धर्म की मर्यादा में, धर्म की परिधि में सम्पन्न होवें, ऐसा प्रयास हम सभी भारतवासियों को करना चाहिए। तदनन्तर अर्थोपार्जन का भी विशेष महत्व है। उसके बाद काम और सर्वान्त में मोक्ष की अवधारणा प्रतिपादित की गई है। यह हमारी जीवन–यात्रा के चार प्रमुख चरण है। आश्रम व्यवस्था भी हमारे शुभ्र एवं पावन संस्कारों की प्रमुख आधारशिला हैं। वर्ण व्यवस्था भी भारतीय संस्कारशाला का उल्लेख्य अध्याय है। किसी भी समारोह में, सात्विक शब्दानुष्ठान में अतिथियों का स्वागत, सत्कार, माल्यार्पण, सरस्वतीपूजन, दीप प्रज्वलन भी तो हमारे संस्कारों का ही प्रकटीकरण है।

आइए! अब संस्कृत अथवा देववाणी का स्तवन करें। अपने चक्षुओं के सहारे साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों के द्वारा अनुभूत आध्यात्मिक शास्त्र के तत्वों की विशाल, विमल तथा विपुल शब्दराशि का ही नाम वेद है। लौकिक वस्तुओं का साक्षात्कार करने के लिए जिस प्रकार नेत्र की उपयोगिता होती है उसी प्रकार अलौकिक तत्वों के रहस्य को जानने के लिए वेदों की उपादेयता है। वेदचतुष्टयी के महत्व को भला कौन भारतीय स्वीकार न करेगा। संस्कृत की विपुल ज्ञान राशि इनसे ही निःसृत है। केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं, हारा न चन्द्रोज्वला............ श्लोक में संस्कृत का महत्व प्रतिपादित किया गया है। और अब तो नासा ने भी यह प्रमाणित कर दिया है कि कम्प्यूटर के लिए यदि सूक्ष्म, संक्षिप्त, सुस्पष्ट तथा सर्वथा उपर्युक्त कोई भाषा है तो वह है संस्कृत। संस्कृत हमारी संस्कृति तथा संस्कारों की भाषा है। कालिदास, भारवि, माघ, वाण, हर्ष के ग्रन्थ हमारी भारतीयता को विस्तार प्रदान करते हैं। आइए। हम सब संस्कृत के आश्रय में चलें, पूरा विश्व हमारी ओर देख रहा है।

संदर्भ

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी
2. भारतीय संस्कृति – भगवतशरण उपाध्याय
3. संस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिंह दिनकर

ISSN : 0975-5403

भारतीय अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों की भूमिका

डॉ0 रीना सिंह,
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग,
जे0एन0एम0 पी0जी0 कालेज, बाराबंकी।

किसी अर्थव्यवस्था को हम उत्तम ढंग से तभी समझ सकते हैं, जब इसके घटकों या क्षेत्रों का अध्ययन करते हैं। क्षेत्रक वर्गीकरण अनेक मानदंडों के आधार पर किया जा सकता है। इस अध्ययन में तीन प्रकार के वर्गीकरणों की चर्चा की गई है – प्राथमिक/द्वितीयक/ तृतीयक, संगठित/असंगठित और सार्वजनिक/निजी क्षेत्रों की बदलती भूमिका पर विशेष बल देना आवश्यक है।

आप लोगों को विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में कार्यरत पाएँगे। इनमें से कुछ गतिविधियाँ वस्तुओं का उत्पादन करती है। कुछ अन्य सेवाओं का सृजन करती हैं। ये गतिविधियाँ हमारे चारों ओर हर समय सम्पादित होती हैं, यहाँ तक कि हमारे बोलने से भी। हम इन गतिविधियों को कैसे समझ सकते है? इन्हें समझने का एक तरीका यह है कि कुछ महत्त्वपूर्ण मानदंडों के आधार पर इन्हें विभिन्न समूहों में वर्गीकृत कर दिया जाय। इन समूहों को क्षेत्र भी कहते हैं। उद्देश्य और किसी महत्वपूर्ण मानदण्ड के आधार पर इन्हें अनेक तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे– प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र।

प्राथमिक क्षेत्र (कृषि)

प्राथमिक संसाधनों के प्रत्यक्ष उपयोग पर आधारित अनेक गतिविधियाँ है। जैसे –कपास की खेती। यह एक मौसमी फ़सल है। कपास के पौधों की वृद्धि के लिए हम मुख्यतः, न कि पूर्णतया, प्राकृतिक कारकों जैसे –वर्षा, सूर्य का प्रकाश और जलवायु पर निर्भर है। अतः कपास एक प्राकृतिक उत्पाद है। इसी प्रकार, डेयरी उत्पादन में हम

पशुओं की जैविक प्रक्रिया एवं चारा आदि की उपलब्धता पर निर्भर होते हैं। अतः इसका उत्पाद दूध भी एक प्राकृतिक उत्पाद है। इसी प्रकार खनिज़ और अयस्क भी प्राकृतिक उत्पाद है। ''जब हम प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके किसी वस्तु का उत्पादन करते हैं, तो इसे प्राथमिक क्षेत्र की गतिविधि कहा जाता है। हम अधिकांश प्राकृतिक उत्पाद कृषि, डेयरी, मत्स्य और वनों से प्राप्त करते है, इसलिए इस क्षेत्रक को कृषि एवं सहायक क्षेत्र भी कहा जाता है।'

स्वतन्त्रता के युद्ध की अवधि के दौरान, सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में कृषि और संबद्ध गतिविधियों (या प्राथमिक क्षेत्र) की हिस्सेदारी में लगातार गिरावट आई है – 1950–51 में 53.1 प्रतिशत से बढ़कर 1980–86 मे प्रतिशत 36.1, 2000–2001 में 22.3 प्रतिशत और 2013–14 में केवल 13.9 प्रतिशत 22.3 (आधार वर्ष 2004–05) के साथ श्रृंखला के अनुसार नई श्रृंखला (आधार वर्ष 2011–12) के अनुसार, बुनियादी कीमतों पर जी.वी.ए. में कृषि और संबद्ध गतिविधियों की हिस्सेदारी 2013–14 में 13.2 प्रतिशत और 2014–15 से 16.1 प्रतिशत थी।

इस संदर्भ में यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि आर्थिक नियोजन के पहले चरण में कुछ वर्षो के सकल

घरेलू उत्पाद में कृषि की हिस्सेदारी में गिरावट ने अर्थव्यवस्था में किसी भी रचनात्मक परिवर्तन को प्रतिबिंबित नहीं किया। इसने केवल प्रतिकूल मौसम स्थितियों के परिणामस्वरूप देश की राष्ट्रीय आय में अपना उचित योगदान देने में कृषि की विफलता का संकेत दिया है। हाल के वर्षों में देश की अर्थव्यवस्था में कुछ संरचनात्मक परिवर्तन हुए, है। परिवहन और व्यापार, बैंकिंग और बीमा और अन्य सेवा क्षेत्र कृषि की तुलना में तेजी से बढ़े हैं और यह तथ्य मूल उद्योग द्वारा सकल घरेलू उत्पाद के अनुमान में परिलक्षित होता है। इन परिवर्तनों के बावजूद कृषि क्षेत्र अभी भी देश के सकल घरेलू उत्पाद में अपनी हिस्सेदारी के मामले में भारतीय अर्थव्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बना हुआ है

द्वितीयक क्षेत्रक (औद्योगिक)

औद्योगिक क्षेत्रक विनिर्मित वस्तुएँ उत्पादित करता है। यह द्वितीयक क्षेत्रक की गतिविधियों के अन्तर्गत प्राकृतिक उत्पादों को विनिर्माण प्रणाली के जरिये अन्य रूपों में परिवर्तित किया जाता है। यह प्राथमिक क्षेत्रक के बाद अगला कदम है। यहाँ वस्तुयें सीधे प्रकृति से उत्पादित नहीं होती हैं बल्कि निर्मित की जाती हैं। इसलिए विनिर्माण प्रक्रिया अपरिहार्य है। यह प्रक्रिया किसी कारख़ाना, किसी कार्यशाला या घर में हो सकती है। जैसे कपास के पौधे से प्राप्त रेशे का उपयोग कर हम सूत कातते और कपड़ा बुनते है। गन्ने को कच्चे माल के रूप में उपयोग कर हम चीनी और गुड़ तैयार करते हैं।

यह क्षेत्रक क्रमशः संवर्धित विभिन्न प्रकार के उद्योगों से जुड़ा हुआ है, इसलिए इसे औद्योगिक क्षेत्रक भी कहा जाता है।

उद्योग में खनन और उत्खनन शामिल है। विनिर्माण, निर्माण और बिजली गैस और पानी की आपूर्ति। कारक लागत (2004–05 की कीमतों पर) पर सकल घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र की हिस्सेदारी 1950–51 में 16.6 प्रतिशत थी और 1990–91 में यह क्मोबेश लगातार बढ़कर 27.7 प्रतिशत हो गई। 2012–13 में यह 27.3 प्रतिशत हो गई। 2012–13 में यह 27.3 2013–14 26.2 प्रतिशत हो गई। आधार वर्ष 2011–12 के साथ नई शृंखला के अनुसार, बुनियादी कीमतों पर जीवीए में उद्योग की हिस्सेदारी 2013–14 में 31.7 प्रतिशत और 2014–15 मे 31.4 प्रतिशत थी।

द्वितीयक क्षेत्र में विनिर्माण प्रमुख गतिविधि है। 1950–51 में सकल घरेलू उत्पाद में इसकी हिस्सेदारी 9.2 प्रतिशत थी। 1970–71 में यह बढ़कर 12.9 प्रतिशत और 1990–91 में 15.1 प्रतिशत हो गई।

प्राथमिक और द्वितीयक क्षेत्र के अतिरिक्त आर्थिक गतिविधियों की एक तीसरी कोटि भी है जो तृतीयक क्षेत्रक के अन्तर्गत आती है और उपर्युक्त दो क्षेत्रों से भिन्न हैं।

तृतीयक क्षेत्र (सेवा)

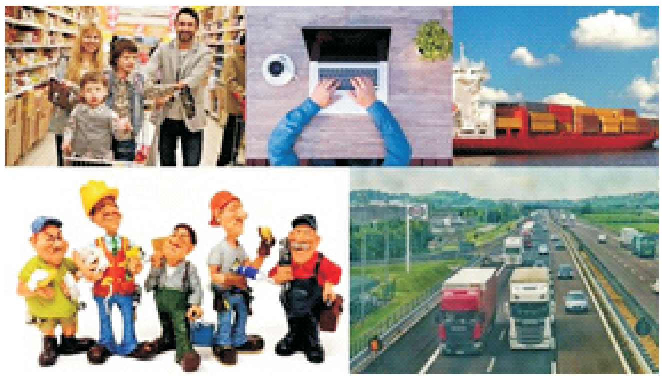

ये गतिविधियाँ प्राथमिक और द्वितीयक क्षेत्र के

विकास में मदद करती हैं। ये गतिविधियाँ स्वतः वस्तुओं का उत्पादन नहीं करती हैं, बल्कि उत्पादन प्रक्रिया में सहयोग या मदद करती हैं। जैसे प्राथमिक एवं द्वितीयक क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तुओं को थोक एवं खुदरा विक्रेताओं को बेचने के लिए ट्रकों और ट्रेनों द्वारा परिवहन करने की जरूरत पड़ती है। कभी–कभी वस्तुओं को गोदामों में भण्डारित करने की आवश्यकता होती है। हमें उत्पादन और व्यापार में सहूलियत के लिए टेलीफ़ोन पर दूसरों से वार्तालाप करने या पत्राचार या बैंको से कर्ज़ लेने की भी आवश्यकता होती है।

सामुदायिक, सामाजिक और व्यक्तिगत सेवायें। इस समूह में सार्वजनिक प्रशासन रक्षा और अन्य सेवाएं शामिल हैं। पिछले कुछ वर्षों में सरकारी क्षेत्र के आकार में पर्याप्त विस्तार हुआ है जिसके परिणामस्वरूप सकल घरेलू उत्पाद में सार्वजनिक प्रशासन की हिस्सेदारी बढ़ गई है। वहाँ परद रक्षा व्यय में भी वृद्धि हुई है। इन कारकों के कारण आर्थिक नियोजन के पहले चार दशकों के दौरान सकल घरेलू उत्पाद में सामुदायिक सामाजिक और व्यक्तिगत सेवाओं की हिस्सेदारी बढ़ी है।

ये गतिविधियाँ वस्तुओं के बजाय सेवाओं का सृजन करती हैं, इसलिए तृतीयक क्षेत्र को सेवा क्षेत्र भी कहा जाता है।

तीन क्षेत्रकों की तुलना

प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रक के विविध उत्पादन कार्यों से काफी अधिक मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है। साथ ही इन क्षेत्रकों में काफी अधिक संख्या में लोग वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए काम करते है। किसी अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन और रोजगार की दृष्टि से एक या अधिक क्षेत्रक प्रधान होते हैं, जबकि अन्य क्षेत्रक अपेक्षाकृत छोटे आकार के होते हैं। उत्पादित और बेची गई प्रत्येक वस्तु की गणना करने की जरूरत नहीं है। केवल अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं की गणना का ही औचित्य है। किसी विशेष वर्ष में प्रत्येक क्षेत्रक द्वारा उत्पादित अंतिम वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य उस वर्ष में क्षेत्रक के कुल उत्पादन की जानकारी प्रदान करता है।

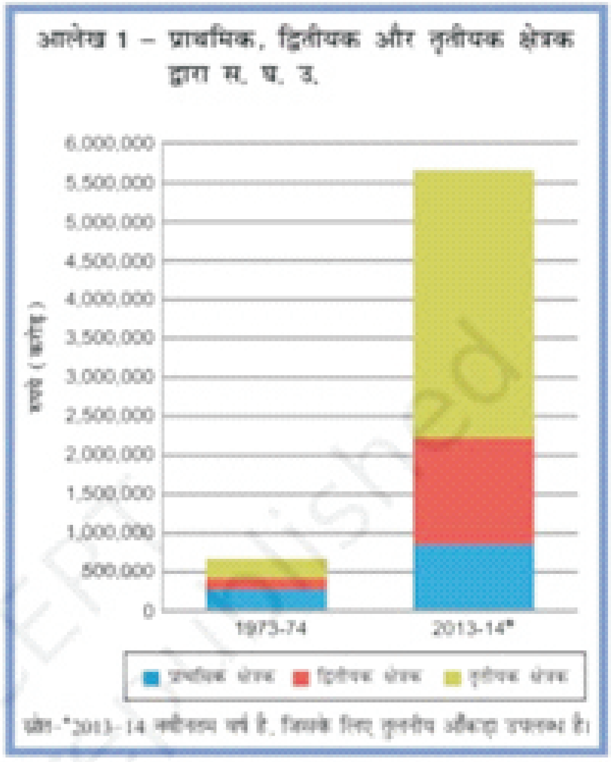

आँकड़े 2011–12 के मूल्य के आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था पर साख्यिकी की वास्तविक समय–पुस्तिका से लिया गया है। इसकी वेबसाइट : http:/mospi.gov.in पर आप देख सकते हैं।

भारत में सकल घरेलू उत्पाद मापन जैसा कठिन कार्य केन्द्र सरकार के मंत्रालय द्वारा किया जाता है। यह मंत्रालय राज्यों एवं केन्द्र शासित क्षेत्रों के विभिन्न सरकारी विभागों की सहायता से वस्तुओं और सेवाओं की कुल संख्या और उनके मूल्य से संबंधित सूचनाएँ एकत्र करता है और

तब जी.डी.पी का अनुमान करता है।

क्षेत्रकों में ऐतिहासिक परिवर्तन

सामान्यतया, अधिकांश विकसित देशों के इतिहास में यह देखा गया है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में प्राथमिक क्षेत्रक ही आर्थिक सक्रियता का सबसे बड़ा महत्त्वपूर्ण क्षेत्रक रहा है।

जैसे—जैसे कृषि प्रणाली परिवर्तित होती गई और कृषि क्षेत्रक समृद्ध होता गया। वैसे—वैसे पहले की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन होने लगा। अब अनेक लोग दूसरे कार्य करने लगे। शिल्पियों और व्यापारियों की संख्या में वृद्धि होने लगी है। क्रय—विक्रय की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ गई। इसके अतिरिक्त अनेक लोग परिवहन, प्रशासक और सैनिक कार्य इत्यादि से जुड़े थे।

विगत 100 वर्षों में विकसित देशों में द्वितीयक क्षेत्रक से तृतीयक क्षेत्रक की ओर पुनः बदलाव हुआ है। कुल उत्पादन की दृष्टि से सेवा क्षेत्रक का महत्त्व बढ़ गया। अधिकांश श्रमजीवी लोग सेवा क्षेत्रक में ही नियोजित है। विकसित देशों में यही सामान्य लक्षण देखा गया है।

संगठित और असंगठित के रूप में क्षेत्रकों का विभाजन

संगठित क्षेत्रक में कर्मचारियों को रोजगार—सुरक्षा का लाभ मिलता है। उनसे एक निश्चित समय तक ही काम कराने की आशा की जा सकती है। यदि वे अधिक काम करते हैं तो नियोक्ता द्वारा उन्हें अतिरिक्त वेतन दिया जाता है। वे नियोक्ता से कई दूसरे लाभ प्राप्त करते हैं। जैसे — सवेतन छुट्‌टी, अवकाश काल में भुगतान, भविष्य विधि, सेवानुदान इत्यादि पाते हैं। वे चिकित्सीय लाभ पाने के हकदार होते हैं और नियमों के अनुसार कारखाना मालिक को पेयजल, और सुरक्षित कार्य स्थल, स्वस्थ पर्यावरण जैसी सुविधाओं को सुनिश्चित करना होता है। जब वे सेवानिवृत होते हैं, तो पेंशन भी प्राप्त करते हैं।

इनके विपरीत, श्रमिक असंगठित क्षेत्रक में काम करता है। असंगठित क्षेत्रक छोटी— छोटी और बिखरी इकाइयों जो अधिकांशतः सरकारी नियंत्रण से बाहर होती है, से निर्मित होता है। इस क्षेत्रक के नियम और विनियम तो होते है परन्तु उनका अनुपालन नहीं होता है। वे कम वेतन वाले रोजगार हैं और प्रायः नियमित हैं। यहाँ अतिरिक्त समय में काम करने, सवेतन छुट्टी, अवकाश, बीमारी के कारण छुट्टी इत्यादि का कोई प्रावधान नहीं है। श्रमिकों को बिना किसी कारण काम से हटाया जा सकता है। कुछ मौसमों में जब काम कम होता है तो कुछ लोगों को काम से छुट्टी दे दी जाती है। बहुत से लोग नियोक्ता की पसन्द पर निर्भर होते हैं।

इस क्षेत्रक में काफी संख्या में लोग अपने—अपने छोटे कार्यों जैसे—सड़कों पर विक्रय अथवा मरम्मत कार्य में स्वतः नियोजित हैं। इसी प्रकार किसान अपने खेतों में काम करते हैं और जरूरत पड़ने पर मजदूरी पर श्रमिकों को लगाते हैं।

असंगठित क्षेत्रक के श्रमिकों का संरक्षण

संगठित क्षेत्रक अत्याधिक माँग पर ही रोजगार प्रस्तावित करता है। लेकिन संगठित क्षेत्रक में रोजगार के अवसरों में अत्यन्त धीमी गति से वृद्धि हो रही है। यह भी आम तौर पे पाया जाता है कि संगठित क्षेत्रक, असंगठित क्षेत्रक के रूप मे काम करते हैं। वे ऐसी रणनीति कर वंचन एवं श्रमिकों को संरक्षण प्रदान करने वाली विधियों के अनुपालन से बचने के लिए अपनाते हैं। परिणामतः बहुत से श्रमिक असंगठित क्षेत्र में काम करने के लिए विवश हुए हैं, जहाँ बहुत कम वेतन मिलता है। उनका प्रायः शोषण किया जाता है और उन्हें उतनी मजदूरी नहीं दी जाती है। उनकी आय कम है और नियमित नहीं है और न ही इसमें कोई लाभ है।

सन् 1990 में यह भी देखा गया है कि संगठित क्षेत्रक के बहुत अधिक श्रमिक अपना रोजगार खोते जा रहे हैं। ये लोग असंगठित क्षेत्रक में कम वेतन पर काम करने के लिए विवश हैं। अतः असंगठित क्षेत्रक में और अधिक रोजगार की ज़रूरत के अलावा श्रमिकों को संरक्षण और सहायता की भी आवश्यकता है।

शहरी क्षेत्रों में असंगठित क्षेत्र मुख्यतः लघु उद्योगों के श्रमिकों, निर्माण, व्यापार एवं परिवहन में कार्यरत आकस्मिक श्रमिकों और सड़कों पर विक्रेता का काम करने वालों, सिर पर बोझ ढोने वाले श्रमिकों, वस्त्र निर्माण करने

वाले और कबाड़ उठाने वाले से रचित हैं। लघु उद्योगों के भी कच्चे माल की प्राप्ति और उत्पाद के विपणन के लिए सरकारी मदद की आवश्यकता होती है। हम भी यह पाते हैं कि बहुसंख्यक श्रमिक अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़ी जातियों से हैं जो असंगठित क्षेत्रक में रोजगार करते है। ये श्रमिक अनियमित और कम मजदूरी पर काम करने के अलावा सामाजिक भेदभाव के भी शिकार हैं।

अतः आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए असंगठित क्षेत्रक के श्रमिकों को संरक्षण और सहायता अनिवार्य है।

निष्कर्ष:

मूल उद्योग द्वारा सकल घरेलू उत्पाद का अध्ययन स्पष्ट रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के घटते महत्त्व और सेवा क्षेत्र की तीव्र वृद्धि को सामने लाता है। हालांकि, अपनी आजीविका के लिए कृषि पर लगभग आधे श्रम/बल की निरंतर निर्भरता कृषि द्वारा निभाई जाने वाली महत्त्वपूर्ण भूमिका को सामने लाने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। इसके अलावा कृषि उत्पादन में किसी भी झटके पर पूरी अर्थव्यवस्था पर गंभीर असर पड़ता है। हालांकि औद्योगिक क्षेत्र वास्तव में विस्तार कर रहा है फिर भी इसकी वृद्धि साल दर साल श्रम बल में प्रवेश करने वाले, नौकरी चाहने वालों की बढ़ती संख्या को अवशोषित करने के लिए पूरी तरह से अपर्याप्त है। सेवा क्षेत्र के कई उप–क्षेत्रों का प्रौद्योगिकी – गहन प्रकृति को देखते हुए यदि बेराजगारी की समस्या से निपटना है तो औद्योगिक क्षेत्र की वृद्धि को बढ़ाना आवश्यक है।

संदर्भ –

1- Computed from Reserve Bank of India, Handbook of statistics on Indian Economy 2011-12 (Mumbai 2012 and Handbook of Statistics on Indian Economy).

2- Indian Economy its development Experience - By V-K Puri and S.K. Mishra. Thirty fourth Revised & updated edition – 2016.

3- Government of India Economic Survey 2015-16 (Delhi 2016) Volume 11 P-5.

4- https://pib.gov.in

5. भारतीय अर्थव्यवस्था – नितिन सिंघानिया

6. भारतीय अर्थव्यवस्था – रमेश सिंह पृष्ठ सं. 188, 189, 190

7. अर्थव्यवस्था – डॉ. जे. पी. मिश्रा

8. भारतीय अर्थव्यवस्था – महेश कुमार वर्णवाल

9. भारतीय राजस्व एवं अर्थव्यवस्था – दृष्टि

■ ■ ■

पशुपालन से गर्म होती हमारी पृथ्वी और शमन रणनीतियाँ

प्रदीप कुमार
सहायक प्रोफेसर, भूगोल विभाग
हीरालाल रामनिवास पी.जी. कालेज, संत कबीर नगर

सारांश

पशुधन क्षेत्र को पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यकता होती है । वैश्विक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। पशुपालन से उत्सर्जित होने वाली सबसे महत्वपूर्ण ग्रीनहाउस गैसें मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड है। जनसंख्या में वृद्धि से पशु उत्पादों के माँग में भी वृद्धि हो रही है।

मुख्य शब्द : कार्बन फुटप्रिंट, जलवायु परिवर्तन, ग्रीनहाउस गैस , लाइवस्टोक फार्मिंग, सिंथेटिक फर्टिलाइजर , कार्बन समतुल्य , गीगा टन।

परिचय

पशुपालन भारी मात्रा में कॉर्बन उत्सर्जन करता है। इसमें वैश्विक तापन को बढ़ाने की काफी क्षमता है और यह भारी मात्रा मे कॉर्बन फुटप्रिंट उत्पन्न करता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ (यू.एन. 2017) के अनुसार पिछले 12 वर्षों के दौरान विश्व जनसंख्या में लगभग 1 बिलियन निवासियों की वृद्धि हुई है जो 2017 में लगभग 7.6 बिलियन तक पहुँच गई है। 2030 तक कुल जनसंख्या आठ अरब साठ करोड़ होने की संभावना है। जबकि 2050 तक इसके नौ अरब अस्सी करोड़ होने की संभावना है। इतनी बड़ी जनसंख्या को पर्याप्त मात्रा में भोजन उपलब्ध कराना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इतनी बड़ी जनसंख्या की आवश्यकताएं पूरा करने के लिए भारी मात्रा में संसाधनों की आवश्यकता होगी। स्पष्ट है कि पर्यावरण को इसकी भारी कीमत भी चुकानी पड़ेगी। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार – विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण और आय में वृद्धि हुई है जिससे पशुधन उत्पादों की माँग में वृद्धि हुई है (यू.एन. 2017)। पशुधन क्षेत्र को प्राकृतिक संसाधनों की महत्वपूर्ण मात्रा की आवश्यकता होती है।

पशुपालन क्षेत्र कुल मानवजनित ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन के लगभग 14.5% के लिए जिम्मेदार है (7.1 गीगाटन कार्बन डाइऑक्साइड समकक्ष वर्ष 2005)। क्षेत्र के उत्सर्जन को कम करने के उद्देश्य से शमन रणनीतियाँ की आवश्यकता है ताकि पर्यावरण के बोझ को सीमित किया जा सके।

विश्व की बढ़ती जनसंख्या के लिए भोजन की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित करते हुए खाद्य उत्पादन के लिए वनों को काटकर कृषि क्षेत्र और चारागाह में परिणत किया गया है। प्रति सेकंड एक से दो एकड़ उष्ण कटिबंधीय वर्षा वनों को काट दिया जा रहा है जिससे कि वहाँ पशुओं को चराया जा सके अथवा कृषि कार्य किया जा सके। वृक्षों को तेजी से काटा जा रहा है। जबकि वन जलवायु परिवर्तन के ख़तरे को कम करते हैं और हमें प्राकृतिक आपदा से सुरक्षा प्रदान करते हैं।

जलवायु परिवर्तन पर पशुधन का प्रभाव –

पशुपालन से उत्सर्जित होने वाली सबसे महत्वपूर्ण ग्रीनहाउस गैसें मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड हैं। मीथेन, मुख्य रूप से एंटरिक किण्वन और खाद भंडारण द्वारा उत्पादित, एक गैस है । मीथेन का प्रभाव ग्लोबल वार्मिंग पर कार्बन डाइऑक्साइड की तुलना में 28 गुना अधिक होता है। नाइट्रस ऑक्साइड भी बहुत महत्वपूर्ण गैस है जो खाद भंडारण से उत्पन्न होती है। यह जैविक/अकार्बनिक उर्वरकों का उपयोग, उनके भंडारण से उत्पन्न होती है। नाइट्रस ऑक्साइड गैस कार्बन डाइऑक्साइड की तुलना में 265 गुना अधिक ग्लोबल वार्मिंग की क्षमता रखता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना जरूरी है की कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य एक मानक इकाई है जिसका उपयोग ग्लोबल वार्मिंग क्षमता (आईपीसीसी, 2013) के लिए किया जाता है।

आत्रिक किण्वन और खाद के भंडारण और उसके उपयोग के अतिरिक्त हरित गृह गैस का विमोचन पशुओं के लिए चारा के उत्पादन से भी होता है। इसमें मिट्टी द्वारा उत्पादित होने वाले कॉर्बन डाईऑक्साइड और नाइट्रस ऑक्साइड मुख्य समस्या है। मिट्टी में पड़े हुए पेड़ पौधों के अवशिष्ट, मिट्टी के जैविक अंशों का जब खनिजकरन और जब भूमि उपयोग में परिवर्तन होता है तो ये गैसे स्वाभाविक रूप से अवमुक्त होती हैं। पेट्रोलियम पदार्थों से जब रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाएं बनाई जाती हैं और इनका उपयोग कृषि कार्यों में करते हैं तो यह गैस भी इस प्रक्रिया में अवमुक्त होती है। जब खेतों में जैविक और अजैविक उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है तो भी मिट्टी में से नाइट्रस ऑक्साइड गैस इस प्रक्रिया में विमुक्त होती है।

खाद्य और कृषि संगठन ने ग्लोबल लाइवस्टोक एनवायरमेंटल एसेसमेंट मॉडल (FAO 2017) बनाया है जिसमें विभिन्न जंतुओं के आंतरिक किण्वन और खाद संचय द्वारा विभिन्न हरित गृह प्रभाव उत्पन्न करने वाले गैस (कार्बन डाइऑक्साइड समकक्षों) को दिखाता है जो दुनिया भर में पाले जाने वाली जाने वाली मुख्य पशुधन प्रजातियों में एंटरिक किण्वन और खाद भंडारण से होता है।

विभिन्न पशुओं के आंत्रिक किण्वन और खाद संचयन के द्वारा उत्सर्जित होने वाले हरित गृह गैस, गीगा टन कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य (खाद्य एवं कृषि संगठन 2017)।

टेबल 1

पशु	आत्रिक मीथेन	खाद संचय मीथेन	खाद संचय No2	कुल गीगा
गौ वंश पशु	91	3	6	1.8(45)
दुग्ध पशु	85	8	7	1(26)
भैंस	91	2	7	0.5(12)
सुअर	11	69	20	0.3(7)
भेड़	93	3	4	0.2(4.5)
बकरी	93	4	3	0.2(4)
मुर्गी	0	34	66	0.1(1.5)

गरबर (2013) ने भी विभिन्न स्रोतों से होने वाले उत्सर्जन का, उत्सर्जन में कार्बन के समतुल्य कितनी भागीदारी है यह बताया है।

चारा उत्पादन और प्रसंस्करण पूरे क्षेत्र का लगभग 45% (3.2 गीगाटन कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य) लगभग 2.8 गीगाटन (39) का उत्पादन करने वाला एंटरिक किण्वन उत्सर्जन का दूसरा सबसे बड़ा स्रोत है 0.71 गीगाटन खाते के साथ खाद भंडारण कुल का लगभग 10%। शेष 6% (कार्बन डाइऑक्साइड समकक्ष के 0.42 गीगाटन) पशु उत्पादों के प्रसंस्करण और परिवहन के लिए जिम्मेदार है (गेरबर एट अल।, 2013)

उत्सर्जन स्रोत	उत्सर्जन भागीदारी	कॉर्बन डाईऑक्साइड समतुल्य
1 चारा उत्पादन और प्रसंस्करण, भू उपयोग परिवर्तन, निर्माण और उर्वरक, कीटनाशक, खाद निष्कर्षण और खेतों में उपयोग कृषि संचालन ,चारा प्रसंस्करण और चारे का परिवहन	45%	3.2 गीगा टन कार्बन समतुल्य
2 आत्रिक किण्वन	39%	2.8 गीगा टन कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य
3 खाद संचय।	10%	0.71 गीगा टन कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य
4 पशु उत्पादों के प्रसंस्करण	6%	0.2गीगा टन कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य और परिवहन
पशु उत्सर्जन स्रोत (गरबर, 2013)		
खाद भंडारण		

खाद भंडारण

मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड दोनों प्रमुख उत्सर्जन स्रोत है। पशु अवशिष्ट पदार्थों में जैविक पदार्थ और नाइट्रोजन मुख्य अवयव हैं जो मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन को प्रभावित करते हैं। अनाक्सी किण्वन ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में होता है इसमें जैविक पदार्थ बैक्टीरिया के द्वारा आवश्यक रूप से विखंडित होकर मिथेन और कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन करता है। जब तरल खाद (स्लरी) को किसी टैंक में उपचारित किया जाता है तो इससे अधिक मात्रा में मीथेन गैस का उत्सर्जन होता है यदि इसे गर्म और यथास्थिति में अधिक समय तक संचित रखा जाए तो यह निथेन गैस के उत्सर्जन की मात्रा को और अधिक बढ़ा देता है। जबकि नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन के लिए ऑक्सी और अनाक्सी रासायनिक

अभिक्रिया की आवश्यकता होती है इसलिए जब खाद अथवा गोबर ठोस अवस्था में रहता है तो खेतों में अथवा कहीं भी नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन बढ़ जाता है जबकि मीथेन गैस का उत्सर्जन कम होता है नाइट्रस ऑक्साइड खाद में उपस्थित नाइट्रोजन के नाइट्रेटीकरण और विनायकीकरण दोनों से उत्पन्न होता है नाइट्रीकरण ऑक्सीजन के उपस्थिति में होता है जिससे अमोनियम और अमोनिया क्रमशः नाइट्राइट और नाइट्रेट में परिवर्तित हो जाते हैं जब विनाइट्रिकरण ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में होता है तो नाइट्रेट नाइट्रस ऑक्साइड और नाइट्रोजन गैस में परिवर्तित हो जाता है।

आंत्र किण्वन

आंत्रिक किण्वन जुगाली करने वाले पशुओं जैसे गाय, बैल, भैंस, बकरी , भेड़ इत्यादि के पाचन प्रक्रिया का एक स्वाभाविक हिस्सा होता है, जहाँ बैक्टीरिया, प्रोटोजोआ और कवक पेट (रूमेन) में होते है। जब जुगाली करने वाले जानवर वनस्पति अथवा बायोमास को खाते हैं तो इनके आँत में उपस्थित सूक्ष्मजीव बायोमास का किण्वन करते हैं और यह बायोमास वाष्पशील वसा अम्ल में परिवर्तित होकर रूमेन की दीवाल से गुजरते हुए संचार प्रणाली के माध्यम से यकृत में चले जाते हैं। यकृत में यह विखंडित होकर प्रचुर मात्रा में इन जंतुओं को ऊर्जा प्रदान करता है । विशिष्ट रूप से जुगाली करने वाले पशुओं में इस प्रकार का सेल्यूलोज पाचन होता है और इस प्रक्रिया से पशुओं को ऊर्जा प्राप्त होती है। इस प्रक्रिया में मीथेन और कार्बन डाइऑक्साइड गैस अपशिष्ट के रूप में अवमुक्त होते हैं। यह गैसीय अपशिष्ट(मीथेन और कार्बन डाइऑक्साइड) डकार द्वारा अमाशय से बाहर निकलता है । इस प्रकार से मीथेन गैस का निष्कर्षण जुगाली करने वाले पशुओं में प्राकृतिक रूप से डकार से बाहर निकलता है, जिससे उनके आँत में हाइड्रोजन का संचयन न हो। अगर उनके आँत से हाइड्रोजन का विमोचन इस प्रकार नहीं होगा तो यह कार्बोहाइड्रेट और फाइबर के विखंडन और किण्वन में रुकावट डालेगा। विभिन्न पशुओं से आंतरिक मीथेन का निष्कर्षण उनके भोजन और पाचन के अनुसार भिन्न–भिन्न होता है।

चारा उत्पादन

अंडा, मुर्गी और सुअर के लिए चारा उत्पादन से हरित गृह गैसों का लगभग 60 से 80% उत्सर्जित होता है। दूध गाय के माँस के लिए चारा उत्पादन से 30 से 45% और पशुधन के लिए चारा उत्पादन से 45% हरित गृह गैसों का उत्सर्जन होता है। क्राउसमैन (2008) के अनुसार दुनिया भर में काटे गए वैश्विक बायोमास का लगभग 60% चारा या आधार सामग्री के रूप में जीवन भंडार प्रणाली में प्रवेश करता है। पशुओं के गोबर या खाद को खेतों में डालने से अथवा खेतों में पड़े रहने से (ठोस रूप में) पर्याप्त मात्रा में नाइट्रस ऑक्साइड गैस का उत्सर्जन होता है।

पशुपालन क्षेत्र से हरित गृह गैसों के उत्सर्जन रोकने की रणनीतियाँः

दिनों दिन बढ़ती हुई जनसंख्या के भोजन के लिए डेयरी प्रोडक्ट्स की माँग बढ़ती जा रही है इस आवश्यकता को पूरा करने की जरूरत है। समन रणनीति पशुपालन क्षेत्र से होने वाले इस उत्सर्जन को कम करेगा। सफल रणनीति के लिए आवश्यक है कि अति विस्तारित कृषि क्षेत्र को समग्र रूप से ध्यान में रखा जाए और इस प्रकार की प्रभावी रणनीति बनाई जाए जो विभिन्न पशुओं और जलवायु को ध्यान में रखे जिससे वह सफल हो सके। ऐसा कोई उपाय नहीं है जिससे पूर्ण रूप से पशुधन क्षेत्र से होने वाले उत्सर्जन को रोका जा सके। हाँ इसे कम जरूर किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के विकल्पों पर काम करके जी. एच.जी. के उत्सर्जन को कम किया जा सकता है ये निम्नलिखित हैं

आंत्रिक किण्वन

जुगाली करने वाले पशुओं के आंत में होने वाले किण्वन की दक्षता को बढ़ाकर, आहार में हेर–फेर करके, रासायनिक योजकों का प्रयोग कर, वैक्सीन लगाकर, और पशु अनुवांशिकी में चयन इत्यादि आंत्रिक किण्वन से उत्सर्जन को कम करने के प्रमुख उपाय है। कनप्प (2014) के अनुसार यह देखा गया है कि चारा गुणवत्ता बढ़ाने से वसा, प्रोटीन शुद्ध दूध की प्रति यूनिट लगभग 5% संभावित आंत्रिक मीथेन की कमी होती है। स्तोव के अनुसार चारे के भौतिक प्रसंस्करण जैसे काटना, पिसना और भाप द्वारा उपचार से चारे की पाचन योग्यता को बढ़ा देता है और आंत्रिक मीथेन के उत्सर्जन में कमी आता है। चारे की सांद्रता बढ़ाकर चारे की पाचन योग्यता को बढ़ाना भी एक प्रभावी रणनीति है । इससे 15% उत्सर्जन को कम किया गया है इस रणनीति के इस्तेमाल में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि चारा में सांद्रता का अनुपात कितना हो। चारे का 35 से 40% भाग सांद्र बनाकर आंत्रिक मीथेन के उत्सर्जन को एक उपयुक्त स्तर तक कम किया जा सकता है। इससे अधिक चारा को सांद्र रूप में प्रयोग किया जाएगा तो यह उपापचय क्रिया की बीमारी होने के ख़तरे को बढ़ा

देगा (रूमैन एसिडोसिस)। जुगाली करने वाले पशुओं के भोजन में वसा और वसीय अम्लों को मिलाकर देने से आंत्रिक मीथेन के उत्सर्जन में कमी होती है। किण्वन योग्य कार्बोहाइड्रेट और पशुओं के रूमेन में सूक्ष्म जीवों की संख्या में परिवर्तन करके यद्यपि कुछ उप उत्पाद जैसे कॉटन सीड, ब्रीवर्स ग्रेन और शीत दाबित कनोला इत्यादि आंत्रिक किण्वन घटाने में प्रभावी सिद्ध हुए हैं। वैसे वसा उत्पादों की उत्सर्जन शमन क्षमता अभी तक स्थापित नहीं हो सकी है और कई मामलों में तो ऐसा देखा गया है कि चारे में रेशा या फाइबर की मात्रा बढ़ाने पर मीथेन का उत्सर्जन बढ़ जाता है । चारे में 10 प्रतिशत से अधिक लिपिड की मात्रा में वृद्धि करने से रूमिनल क्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि सूक्ष्म जीवों की संख्या में परिवर्तन हो जाता है जिससे रेशा के पचाने की क्षमता में कमी आती है। 5 से 8% लिपिड चारा सप्लीमेंट को खिलाना ज्यादा प्रभावी शमन रणनीति है जिससे मीथेन के उत्सर्जन में 15% की कमी देखी गयी है। भोज्य पदार्थों में भेषज मिश्रण जैसे इलेक्ट्रॉन रिसेप्टर, आइनोफोरिक एंटीबायोटिक और रासायन अवरोधक इत्यादि में भी मीथेन उत्सर्जन के शमन में उपयोगिता देखी गई है।

खाद भंडारण

भंडारित किया गया खाद कृषि क्षेत्र से मिथेन उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार है। तकनीकी रूप से यह संभव है कि इससे निकलने वाले अधिक उत्सर्जन को कम किया जा सके। संचित खाद के तापमान में वृद्धि से मीथेन गैस के उत्सर्जन में वृद्धि होती है यदि संचित की गई खाद के तापमान में कमी होती है तो मीथेन उत्सर्जन में भी 30 से 50 प्रतिशत की कमी देखी गई है। इस प्रकार की तकनीकी में प्रयुक्त की जा रही ऊर्जा और कूलिंग सिस्टम के अनुसार नेट उत्सर्जन की मात्रा निर्भर करती है और यह अलग–अलग हो सकती है। यदि पशुओं द्वारा उत्सर्जित खाद को शीघ्रता से हटा कर बाहर स्थित स्टोरेज फैसिलिटी में स्थानांतरित कर दिया जाए तो इससे भी हरित गृह गैस उत्सर्जन कम हो जाता है। पशुओं और सूअरों में विशेषतः यह प्रक्रिया विशेष लाभकारी है। वस्तुतः बाड़े में बने चौनल के माध्यम से जब सैलरी या(लिक्विड खाद) को बाहर स्टोरेज फैसिलिटी में स्थानांतरित कर दिया जाता है तो इससे मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन में 41 से 55% की कमी देखी गई है ।

ठोस द्रव विलगाव तकनीक विधि से भी पशुओं के खाद से ठोस और द्रव खाद को गुरुत्व विधि या अभियांत्रिकी विधि द्वारा अलग कर उत्सर्जन को 30% तक कम किया जा सकता है। लेकिन इसकी कुछ सीमाएं भी हैं जैसे अमोनिया का उत्सर्जन बढ़ जाता है।

अनाक्सी या अवायवीय पाचन जो बायोगैस प्लांट में होता है एक जैविक क्षरण प्रक्रिया है। यह ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में होता है। बायोगैस प्लांट से डाइजेस्ट(अवशेष खाद) और बायोगैस का (मीथेन और कार्बन डाईऑक्साइड) का उत्पादन होता है जिसका उपयोग बिजली अथवा ईंधन के लिए किया जाता है। बायोगैस प्लांट्स अवायवीय पाचन प्रक्रिया से पारंपरिक खाद प्रबंधन प्रणालियों की तुलना में 30% से अधिक हरित गृह गैस उत्सर्जन में कमी आती है।

आहार अधिकांश जानवरों में नाइट्रोजन उत्सर्जन को प्रभावित करता है इसलिए पशुओं को उनके भोजन आवश्यकताओं के आधार पर समूहीकृत करने से मल में नाइट्रस ऑक्साइड के इस स्रोत को कम किया जा सकता है। कम प्रोटीन वाला आहार पशु खाद भंडारण से नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन को प्रभावी ढंग से कम कर सकता है। वस्तुतः खाद से अमोनिया और नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन को कम करने के लिए पशुओं को आवश्यकता के अनुसार प्रोटीन खिलाना उचित रणनीति होगा जो ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन को कम कर सकता है ।

चारा उत्पादन

चारा उत्पादन में उपर्युक्त विधि अपनाकर मिट्टी या खेत से नाइट्रोजन ऑक्साइड के उत्सर्जन को कम किया जा सकता है। इसमें समय की मात्रा और रासायनिक उर्वरक के उपयोग की सही विधि प्रमुख है जिससे नाइट्रोजन ऑक्साइड के उत्सर्जन को कम किया जा सकता है। वर्षा के समय नाइट्रोजन उर्वरकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। खेतों में खाद के उपयोग करने के बाद मीथेन का उत्सर्जन कम होता है अतः भंडारण समय कम होने से ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन को कम करने में प्रभावी रूप से मदद मिल सकती है। जब भंडारण सुविधाएं पर्याप्त रहती हैं तो किसानों को खेतों में खाद का प्रयोग करने के लिए समय चुनने की आजादी रहती है जबकि आन फार्म खाद विश्लेषण का उपयोग किसान को पोषक प्रबंधन योजना विकसित करने और पर्यावरणीय प्रभावों को कम करने में मदद कर सकता है।

नाइट्रोजनीकरण अवरोधकों का उपयोग नाइट्रोजन अपक्षालन को रोकने में मदद करता है क्योंकि यह अमोनिया को नाइट्रेट में परिवर्तित होने से रोकता है । लेकिन यह ध्यान देना होगा कि यह अप्रत्यक्ष नाइट्रस ऑक्साइड

उत्सर्जन को बढ़ा सकता है जो अमोनिया के वाष्पीकरण में वृद्धि के परिणाम स्वरूप हो सकता है। जलवायु परिवर्तन को कम करने के विकल्प के रूप में नाइट्रिफिकेशन अवरोधकों और उनके उपयोग कुल मिलाकर प्रभावी सिद्ध हो सकतें है।

सघन घूर्णी चराई प्रणालियों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। यह चारा उत्पादन बढ़ाता है तथा नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन को कम करता है। इस प्रणाली की विशेषता कई छोटे चराई क्षेत्रों से होती है , जिन्हें पेडडोक कहते हैं। घूमने वाले जानवरों और चारागाहों को उप विभाजित करके किसान स्टॉकिंग घनत्व और चराई अवधि का प्रबंधन कर सकते हैं और उत्सर्जन कम कर सकते हैं । इससे नाइट्रोजन उत्सर्जन वितरण और वनस्पति पुनर्वृद्धि का प्रबंधन किया जा सकता है।

पशु प्रबंधन

हरित गृह गैस उत्सर्जन तीव्रता और पशु दक्षता के बीच सीधा संबंध है। पशु जितना अधिक उत्पादक होगा पर्यावरणीय प्रभाव उतना ही कम होगा (प्रति इकाई उत्पाद के आधार पर) उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए प्रबंधन गुणवत्ता और पूर्ण आनुवंशिक क्षमता की अभिव्यक्ति का उपयोग दोनों आवश्यक है। अधिक उत्पादक जानवरों के प्रजनन से उत्पादन के समान स्तर तक पहुँचने के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की जरूरत में कमी आ सकती है । एक अधिक कुशल जानवर अधिक आहार नाइट्रोजन प्रोटीन बनाए रखेगा और मल–मूत्र में कम नाइट्रोजन होगा। नई नस्लों और क्रास से ग्रीन हाउस गैस में पर्याप्त कमी हो सकती है लेकिन उन्हें उत्पादन प्रणालियों और जलवायु के भीतर अनुकूल होने की आवश्यकता है। लेकिन इसमें सीमित संसाधन और अन्य बाधाएं आ सकती हैं । उत्पादन लक्ष्य को पूरा करने के लिए झुंड में अधिक प्रजनन करने वाले जानवरों की आवश्यकता होती है और झुंड के आकार को बनाए रखने के लिए अधिक प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है जो बदले में ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को बढ़ाता है । डेयरी मवेशियों में बेहतर प्रजनन क्षमता से मीथेन उत्सर्जन में 10 से 14 प्रतिशत की कमी हो सकती है और नाइट्रस ऑक्साइड में 9 से 17 प्रतिशत की कमी हो सकती है । खराब पशुधन स्वास्थ्य , कल्याण व्यवहार चयापचय परिवर्तनों से जुड़े हैं जो कई तरह से ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन को प्रभावित कर सकते हैं । संक्रमण से लड़ने वाले जानवरों के रखरखाव के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अध्ययनों में पाया गया है कि मवेशी रोग ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को 24% प्रति यूनिट दूध और 113% प्रति यूनिट बीफ शव तक बढ़ा सकते हैं । कोई बीमारी जो अस्थाई रूप से चारा सेवन या भोजन पचाने की क्षमता कम कर देती है विकास दर में गिरावट की ओर ले जाती है जिसके परिणाम स्वरूप विकास में और अधिक समय लगेगा।

निष्कर्ष

कृषि और पशुधन उत्पादन विशेष रूप से मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन द्वारा वैश्विक तापन में योगदान देता है। तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या की भविष्य की जरूरतों को पूरा करने के लिए पशु उत्पादकता में भी वृद्धि की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त उत्पादन की प्रति यूनिट ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन तीव्रता को कम करने की आवश्यकता होगी। इसके लिए एक प्रभावी शमन रणनीति को अपनाने की आवश्यकता होगी। किसी भी शमन प्रविधि का मूल्यांकन व्यक्तिगत रूप से न करके संपूर्ण पशुधन उत्पादन प्रणाली के एक घटक के रूप में किया जाना चाहिए । इन रणनीतियों में से अधिकांश का उद्देश्य उत्पादकता (प्रति पशु उत्पाद इकाई) में वृद्धि करनी है।

Reference :

Grossi]Giampiero- Goglio]Pietro - Vitali] Andrea- Williams]Adrian G- Livestock and climate change: impact of livestock on climate and mitigation strategies] Animal Frontiers] Volume 9] Issue 1] January 2019] Pages 69–76] https://doi-org/10-1093/af/vfy034

Battini] F-] A-Agostini] A- K-Boulamanti] J-Giuntoli] and S-Amaducci- 2014- Mitigating the environmental impacts of milk production via anaerobic digestion of manure: case study of a dairy farm in the Po Valley- Sci-Total Environ- 481:196–208- doi:10-1016/j-scitotenv-2014-02-038

Google ScholarCrossrefPubMedWorldCat

Beauchemin] K- A-] T- A-McAllister] and S- M-McGinn- 2009- Dietary mitigation of enteric methane from cattle- CAB reviews: perspectives in agriculture] veterinary science- Nutr- Natur- Resour- 4:1–18- doi:10-1079/PAVSNNR20094035

Google ScholarWorldCatCrossref

Borhan] M- S-] S-Mukhtar] S-Capareda] and S-Rahman- 2012- Greenhouse gas emissions from housing and manure management systems at confined livestock operations- In: Rebellon] L- F- M-] editors- Waste management—an integrated vision- Rijeka ¼Cro

Borhan] M- S-] S-Mukhtar] S-Capareda] and S-Rahman- 2012- Greenhouse gas emissions from housing

and manure management systems at confined livestock operations- In: Rebellon] L- F- M-] editors- Waste management—an integrated vision- Rijeka ¼Croatia½: InTech; p- 259–296- doi:10-5772/51175

Google ScholarGoogle PreviewWorldCatCOPACCrossref

Eckard] R- J-] C-Grainger] and C- A- M-de Klein- 2010- Options for the abatement of methane and nitrous oÛide from ruminant production: a review- Livest- Sci- 130:47–56- doi:10-1016/j-livsci-2010-02-010

Google ScholarCrossrefWorldCat

EPA - 2010- Environmental Protection Agency 2010- Inventory of U-S- greenhouse gas emissions and sinks: 1990–2008- Washington ¼DC½: U-S- Environmental Protection Agency; 2010- Available from https://www-epa-gov/sites/production/files/2015&12/documents/508_complete_ghg_1990_2008-pdf

Google ScholarGoogle PreviewWorldCatCOPAC

FAO - 2017- Global Livestock Environmental Assessment Model ¼GLEAM½- Rome ¼Italy½: Food and Agriculture Organization of the United Nations ¼FAO½- [accessed September 3] 2018]- Available from www-fao-org/gleam/en/

Google ScholarGoogle PreviewWorldCatCOPAC

Fournel] S-] F-Pelletier] S-Godbout] R-Legace] and J-Feddes- 2012- Greenhouse gas emissions from three layer housing systems- Animals- 2:1–15- doi:10-3390%2Fani2010001

Google ScholarCrossrefWorldCat

Gerber] P- J-] H-Steinfeld] B-Henderson] A-Mottet] C-Opio] J-Dijkman] A-Falcucci] and G-Tempio- 2013- Tackling climate change through livestock: a global assessment of emissions and mitigation opportunities- Rome: FAO- Available from http://www-fao-org/3/a&i3437e-pdf

Google ScholarGoogle PreviewWorldCatCOPAC

Goglio] P-] W- N-Smith] B- B-Grant] R- L-Desjardins] X-Gao] K-Hanis] M-Tenuta] C- A-Campbell] B- G-McConkey] T-Nemecek] et al- 2018- A comparison of methods to quantify greenhouse gas emissions of cropping systems in LCA- J- Clean- Prod- 172:4010–4017- doi:10-1016/j-jclepro-2017-03-133

Google ScholarCrossrefWorldCat

Grainger] C-] and K- A-Beauchemin- 2011- Can enteric methane emissions from ruminants be lowered without lowe

■ ■ ■

संत कवियों की सामाजिक समरसता

डॉ० सीमा गुप्ता
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
बी०एस०एम० (पी०जी०) कालेज, रूड़की

'संत' शब्द का अभिप्राय किसी भी ऐसे महापुरुष से हो सकता है जिसे हम दूसरे शब्दों में साधु, सज्जन, सदाचारी, भक्त अथवा महात्मा कहा करते हैं। किन्तु संत–साहित्य में प्रयुक्त 'संत' शब्द का व्यवहार केवल उन्हीं महान व्यक्तियों के लिए किया जाता है जो उक्त गुणों से संपन्न होते हुए अपने कतिपय विशेष विचारों, आचारों और साधनाओं के कारण एक विशेष परंपरा के अनुयायी भी माने जाते रहे हैं। यह परंपरा स्पष्ट और विशद् रूप से प्रसिद्ध कबीर के काल से आरम्भ हुई थी और तब से समयानुसार केवल थोड़े से परिवर्तनों के साथ आज तक निरंतर चली आ रही है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में संत कवियों का प्रादुर्भाव तब हुआ जब भारतीय वीरों के तलवार की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। यवनों ने शक्ति और छल से अपने धर्म को फैलाना आरंभ कर दिया था। उसी समय हिंदुओं और मुसलमानों के भेदभाव, जातिगत वैमनस्य को दूर करने के लिए अनेक कवियों ने भक्ति साहित्य का सृजन कर जनता को जीवन दान दिया।

हमारे भारत देश में कितने ही सामाजिक एवं राजनीतिक संघर्ष धार्मिक सुधारों के आवरण में लड़े गए। भक्तिकालीन कवियों ने भी जनसाधारण की पीड़ा और शोषण के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद की है। ये कवि अपने धार्मिक विश्वास और आस्था के साथ साधारण जनमानस से सदैव जुड़े रहे।

मध्यकालीन समाज व्यवस्था का सबसे बड़ा दुर्गुण जातिभेद कहा जा सकता है। उस समय समाज में जाति–प्रथा का आधिपत्य था। इस जाति–प्रथा के साथ–साथ अन्य कुसंगतियों पर तत्कालीन कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से कुठाराघात किया। ईश्वर के समक्ष सभी मनुष्य समान हैं फिर वे उच्च जाति के हो या निम्न जाति के। यही भाव भक्ति आंदोलन का केंद्र बिंदु था। वर्ण व्यवस्था, जाति–उपजाति का विकृत रूप संतों ने अपने समय में देखा और भोगा।

संत कवियों ने इस परंपरागत रूप से चली आ रही विकृत व्यवस्था का सदैव विरोध किया। अध्यात्म मार्ग पर चलने के लिए वर्ण व्यवस्था का अतिक्रमण करते हुए कबीरदास ने इस व्यवस्था की जड़ता के बारे में कहा है–

"कुल–मरजादा खोय के, खोजहु पद निरबान।
नाना रूप बरन एक कीन्हा। चारि बरन उहि कूहू न चीन्हा।"[1]

गुरु नानक, गुरु अर्जुन देव, गुरु रामदास तथा कबीर आदि संतों के अनुसार सभी वर्ण एवं जातियाँ एक ही गर्भ से उत्पन्न हुई हैं। जातियाँ और भेदभाव ईश्वर निर्मित नहीं, मानव निर्मित हैं।

"एक खाक घड़ै सब भांडे, एक ही सिरजनहारा।
अव्वल अल्ला नूर उपाया, कुदरत दे सब बंदे
एक नूर ते सब जग उपज्या, कौन भले कौन मंदे।"[2]

संत कवियों ने समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं विषमताओं को देखा और प्रखर स्वर में इनका विरोध किया। उन्होंने जनमानस में यह विश्वास उत्पन्न करने का भरसक प्रयत्न किया कि शास्त्रों में जो लिखा है उस राह पर चलने की अपेक्षा अनुभव द्वारा प्राप्त सत्य की राह पर चलते हुए जीवन का सहज विकास संभव है। संत कवियों के अनुसार 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' इसी धारणा पर अमल करने की आवश्यकता है। कबीरदास जी ने कहा है कि मानव को जाति–पाँति आदि के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि समस्त मानव एक ही जननी की संतान है–

"हम तुम माहें एकै लोहू, एकै प्रान जीवन है मोहू।
एकहिं बास रहे नौ मासा, सुतग पतग एकै आसा।
एकहिं जननि जन्यां संसारा, कोन ग्यांन थे भये निनारा।"[3]

संत कवियों ने मनुष्य की मर्यादा को यथाशक्ति ऊपर उठाने का प्रयत्न किया। हिंदुओं में कई जातियाँ तो थीं ही, मुसलमान भी इस दोष से बचे नहीं थे। शिया और सुन्नी भी एक दूसरे का विरोध करते थे।

संतों ने 'राम', 'रहीम' को एक बताया और उनकी सर्वव्यापकता का भान करते हुए हिंदू मुस्लिमों को मानवता अपनाने के लिए प्रेरित किया।

"रमताराम परख ले प्यारा, सब घट समता दौरी।
आतम राम को मर्म न जान्यो, मत को मान बध्यो री।"[4]
"रमता राम सकल घट माहीं, ऊँच नीच कछु अंतर

नाहीं।
पाँच वर्ण की गऊ दुहाई, सब मैं दूध एक सो भाई।"[5]

सामंती समाज व्यवस्था, जाति–पाँति, छुआछूत के विरुद्ध विद्रोह भावना और जनसंस्कृति की सृजनशीलता की जैसी अभिव्यक्ति संत कवियों के काव्य में हुई वैसी अन्य किसी काल के काव्य में नहीं मिलती। इन सामाजिक, धार्मिक आस्थाओं की ओर दृष्टि डालते हुए डॉ० शिव कुमार मिश्र ने लिखा है–

"धार्मिक विचारों के बावजूद जनता की एकता को स्वीकार करना, ईश्वर के समक्ष सबकी समानता का प्रतिपादन, जातिप्रथा का विरोध, इस विचार का प्रचार कि मनुष्य और ईश्वर के बीच तादात्म्य प्रत्येक मनुष्य के सद्गुणों पर निर्भर करता है न कि उसकी ऊँची जाति अथवा धन संपत्ति पर ... इसके अलावा मनुष्य सत्य को सर्वोपरि मानता हुआ वर्गगत, जातिगत भेदभावों तथा धर्म के नाम पर किए जाने वाले उत्पीड़न का दृढ़ विरोध किया।"[6]

भक्तिकालीन समाज रूढ़िवादिता, कट्टरता, अस्पृश्यता से ग्रसित था। संत कवियों की दृष्टि में यह छुआछूत की बीमारी अज्ञानी, पाखंडी लोगों द्वारा समाज में लायी गयी थी। इसलिए इन कवियों ने छुआछूत आदि का विरोध किया। यही विचारधारा समस्त भक्तिकालीन कवियों के काव्य में ध्वनित होती है। जातिगत एकता के लिए भक्तिकालीन कवियों ने ईश्वर का आश्रय लिया। उन्होंने जनमानस को बताया कि जो ईश्वर के भक्त हैं उनमें कोई भेद नहीं है।

"चिह्न बिना सब कोई आये। इहाँ भये दोइ पंथ चलाये।
हिंदू तुरक उठायो यह भर्मा। हा दोऊ का छड़या धर्मा।
हिंदू की हदि छाड़ि कै। तजी तुरक की राह।
सुंदर सहजै चाहिनयाँ। एकै राम अलाह।"[7]

कबीर ने इस संबंध में कहा है–

"साधो एक रूप सब माहीं।
अपने मनहिं विचारिके देखो और दूसरा नाहीं।
एकै त्वचा रूधिर पुनि एकै विप्र शूद्र के माहीं।"[8]

गुरु नानक जी जाति–पाँति के भेदभाव को समाज के लिए घृणित बताते हुए कहते हैं–

"जाणहु जाति न पूछहू जाति अगै जाति न है।"[9]

मध्यकालीन संतों के बारे में डॉ० धर्मपाल मैनी लिखते हैं–

"उन्होंने (संतों ने) सभी बाह्याडंबरों एवं औपचारिकताओं का खंडन किया और स्वतः कोई ऐसे औपचारिक संबंध नहीं रखे, जिन्हें अपनाने में किसी भी मानव को कष्ट हो या वे किसी धर्म की मान्यताओं के प्रतिकूल हों। इसलिए उनका धर्म मानव धर्म बनकर विकसित हुआ। उन्होंने न केवल हिंदुओं के पारस्परिक जातीय भेदभाव को दूर किया अपितु हिंदुओं और मुसलमानों के धार्मिक वैमनस्य को भी दूर कर सामाजिक एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया।"[10]

संतों का यह असंतोष, जो उन्हें विभिन्न सामाजिक व आर्थिक अभावों ने दिया है काव्य के माध्यम से की जाने वाली सशक्त क्रांति थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस संबंध में लिखा है– "सामाजिक धार्मिक दुर्व्यवस्थाओं का विरोध विविध संतों के उस असंतोष का फल है जो उन्हें सामाजिक परिस्थितियों के कारण अनुभूत हो रहा था ... उनके चित्त में कहीं न कहीं और किसी न किसी प्रकार की सामाजिक त्रुटियों से उत्पन्न व्याकुलता ही प्रमुख रही है।"[11]

समस्त संत कवियों ने जाति–पाँति के भेदभाव को मिटाकर ईश्वर की भक्ति और मानव कल्याण की बात कही। संत कवि नामदेव ने भी इसी विचारधारा पर जोर देते हुए कहा है–

"का करौं जाति का करौं पाति।
राजा राम सेऊं दिन राति।
कहत नामदेव हरि की रचना देखहु हिरदै विचारी।
घट–घट अंतरि सख निरंतर केवल एक मुरारी।"[12]

धरनीदास ने भी जाति–पाँति का बहिष्कार करके ईश्वर की भक्ति के लिए कहा है। उनके अनुसार व्यक्ति अपने वर्ण से नहीं बल्कि अपनी भक्ति से बड़ा बनता है।

"करनी पार उतारि हैं, धरनी कियो पुकार।
साकित ब्राह्मन नहिं भला, भक्त भला चमार।"[13]

बुल्ला साहब ने भी सभी को एक ही ईश्वर से उत्पन्न बताते हुए जाति–पाँति, छुआछूत और वर्ण व्यवस्था का विरोध किया है। इन्हीं की तरह संत रविदास ने भी अनुभव किया कि जाति–पाँति, छुआछूत, ऊँच–नीच की खाईं बहुत गहरी है। उन्होंने समाज की इन विसंगतियों को निरर्थक बताते हुए लिखा है–

"जन्म जात मत पूछिए, का जात अरु पात।
रविदास पूत सभ प्रभु के, कोउ नहिं जात–कुजात।"[14]

उनके अनुसार जो मनुष्य जाति–पाँति के फेर में पड़ता है वह नष्ट हो जाता है। इसलिए मनुष्य को इस रोग से दूर रहना चाहिए।

"जात पाँत के फेर महिं, उरसि रहइ सभ लोग।
मानुषता कूँ खात हइ, 'रविदास' जात कर रोग।"[15]

दादू के अनुसार सच्चा साधक और सच्चा व्यक्ति सभी मानव को प्रभु की जाति का समझता है और इस प्रकार वह सभी भावों से ऊपर उठ जाता है।

"अपनी अपनी जाति सौ, सबको वैसे पाँति।
दादू सेवग राम को, ताकै नहीं अरांति।।
दादू नारि पुरुष का नांव धरि, इहि संसै भरम भुलान।
सब घट एकै आत्मा, क्या हिंदू मुसलमान।"[16]

मलूकदास जी ने भी सभी मानवों को एक ही ईश्वर से उत्पन्न बताया है फिर चाहे वे किसी भी जाति या धर्म के हों।

"सर्व व्यापी एक कोहरा। जाकी महिमा आर न पार।
हिंदू तुरक का एकै करता। एकै ब्रह्मा सबन का भरता।"[17]

मलूकदास ने धार्मिक भेदभाव, जाति पाँति विषयक सामाजिक कुरीतियों, छुआछूत आदि बुराइयों को दूर करने का उपदेश दिया है। उनके अनुसार सभी प्राणी एक समान हैं, न कोई ऊँचा है, न नीचा, न कोई बड़ा है न छोटा, न कोई ब्राह्मण है, न शूद्र, न कोई हिंदू है न मुसलमान, सब एक ही परमात्मा की संतान हैं इसलिए एक समान हैं।

जाति हमारा आतमा, नाम हमारा राम।
पाँच तत्व का पूतरा, आई किया विश्राम।।

संत मलूकदास ने देखा कि हिन्दू धर्मानुयायी नाना देवी–देवताओं की पूजा करते हैं व नित्य गंगा स्नान करने जाते हैं। वे मंदिर को पवित्र स्थल मानते हैं। उन्होंने मूर्तिपूजा का विरोध करते हुए कहा है–

आतम राम न चीन्हहीं, पूजत फिरैं पाषान।
कैसहु मुक्ति न होयगी, केतिक सुनौ पुरान।।
देवत पूजे कि देवता, कि पूजै पहाड़।
पूजन को जाँता भला, पीस खाय संसार।।
जेती देखै आतमा तेते सालिगराम।
बोलनहारा पूजिये पत्थर से क्या काम।।

इसी प्रकार संत रज्जबदास ने सभी मनुष्यों को एक ही परमात्मा से उत्पन्न बताया है। इसीलिए जाति–पाँति के नाम पर झगड़ना व्यर्थ है। क्योंकि अंत में सभी को उसी परमात्मा में समाहित हो जाना है।

"कुल मरजाद मेंड सब भागी, बैठा भाठी नेरा।
जाति पाँति कछु समझै नाहीं, किसकूं करै परेरा।"[18]

पलूटदास के अनुसार जो प्रभु को भजता है वह सबसे ऊँचा है। बाह्याडंबरों का विरोध करते हुए उन्होंने लिखा है–

"ना बाम्हन ना सूद न सैयद सेख है,
हम तुम कोई नाहिं बोलता एक है।
दूजा कोऊ नहिं यही तहकीक है,
अरे हाँ पलटू बात की बात कहा हम ठीक है।"[19] ■ ■ ■

संतों ने आदर्श समाज की स्थापना के लिए किसी सामूहिक आन्दोलन की अपेक्षा आत्म निरीक्षण की ओर अधिक ध्यान दिलाने की चेष्टा की है और प्रत्येक व्यक्ति से अपील की है कि वह वस्तु–स्थिति की स्वयं परीक्षा करके उस पर विचार करे। वे समाज के अन्तर्गत अपने को उच्च वर्गीय तथा इसी कारण किसी प्रतिष्ठा विशेष का पात्र अथवा विशेषाधिकार के योग्य समझने वाले प्रत्येक व्यक्ति से साधारण विवेक के अनुसार काम करने का आग्रह करते हैं और उसके प्रति उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है।

इस प्रकार हम देखते हैं समस्त संत कवि समाज में व्याप्त बुराइयों के विरुद्ध डटकर खड़े हैं। उन्होंने मानव–मानव के बीच किसी भी प्रकार के भेदभाव को अस्वीकार किया है। इन कवियों ने देश की जनता में स्वधर्म रक्षा के उत्साह को भरा, नीरस लोक जीवन को सरस बनाया। भक्तिकालीन सभी कवियों ने अपने काव्य की अजस्र स्रोतस्विनी प्रवाहित कर निराश हृदयों में आशा का संचार किया। यही इनके काव्य की सार्थकता है।

संदर्भ –

1. रमैनी – कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदरदास
2. श्री गुरु गंथ साहब, पद–4, पृष्ठ 800
3. कबीर ग्रंथावली – श्यामसुंदरदास, पद–365
4. हरिदास वाणी (उत्तरार्द्ध), पृष्ठ 119
5. वही
6. भक्तिकाव्य और लोक जीवन – शिवकुमार मिश्र
7. संत सुधासार (सुंदरदास) – वियोगी हरि
8. कबीर ग्रंथावली – श्यामसुंदरदास
9. गुरु नानक, आदि ग्रंथ, रागु आसा, महला, पृष्ठ 3
10. मध्ययुगीन निर्गुण चेतना – धर्मपाल मैनी
11. मध्यकालीन धर्म साधना – हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 94
12. संत सुधासार (नामदेव) – वियोगी हरि, पद–18, पृष्ठ 8
13. वही
14. संत सुधासार (रविदास) – वियोगी हरि
15. वही
16. श्री स्वामी दादूदयाल की अनभै वाणी – स्वामी मंगलदास, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, पृष्ठ 271
17. मलूकदास कृत शब्द संग्रह
18. रज्जब बानी, ब्रजलाल वर्मा, पृष्ठ 388
19. पलटू साहब की बानी – पलटू साहब, भाग–2, पृष्ठ 92

कालजयी उपन्यास : गोदान

– डॉ. विजय श्रावण घुगे
सहयोगी प्राध्यापक एवं
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
राणी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, पारोला, जि. जलगाँव, महाराष्ट्र

सारांश –

गोदान प्रेमचंद की अमर कृति है। समूचे हिंदी साहित्य संसार का आदर्श है। भारतीय किसानों के प्रति विशेष आत्मीयता होने के कारण प्रेमचंद के कथा साहित्य में कृषक जीवन का सांगोपांग चित्रण उन्होंने किया है। इसे कृषक जीवन का महाकाव्यात्मक उपन्यास भी कहा गया है। भारतीय किसानों की आर्थिक समस्याओं से भली–भाँति परिचित होने के कारण महाजन, जमींदारों, साहूकारों द्वारा किसानों के होने वाले आर्थिक शोषण तथा कर्ज़ की समस्या से वे व्यथित थे। गोदान में उन्होंने भारतीय किसान की विवशता को उजागर किया है। महाजनी सभ्यता के विरूद्ध उन्होंने कलम उठाई है। सामन्ती व्यवस्था, पूँजीवाद, धर्म के ठेकेदार तथा शासन व्यवस्था की भ्रष्ट प्रणाली किस प्रकार भारतीय किसानों का शोषण करती है। गोदान में इसी बात का खुलासा प्रेमचंद करते हैं। प्रेमचंद इसलिए दुःखी थे की अन्याय सहकर भी किसान शोषकों के विरुद्ध विद्रोह नहीं करते।

प्रस्तावना :

प्रेमचंद का उपन्यास गोदान भारतीय कृषक जीवन का आईना है। प्रेमचंद ने किसान जीवन का गहराई से चित्रण करते हुए होरी का जीवन संघर्ष पाठकों के सम्मुख रखा है। होरी भारतीय किसानों का प्रतिनिधि है। इस प्रकार भारतीय किसान के गुण–अवगुण, धार्मिक संस्कार, अंधविश्वास तथा दयनीय स्थिति से समझौता करने वाली मानसिकता का प्रेमचंद ने सूक्ष्मता से चित्रण किया है।

विषय प्रवेश :

प्रेमचंद साहित्य की प्रासंगिकता को लेकर डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल लिखते हैं–''प्रेमचंद ने समसामायिक समस्याओं को भी इस प्रकार उठाया है और उनका निरूपण इस ढंग से किया है कि वे सार्वकालिक लगती हैं। उनके उपन्यासों में मूल मानवीय संवेदनाओं और मूलभूत मानवीय प्रवृत्तियों का चित्रण इस प्रकार हुआ है, जिसके कारण उनको अप्रासंगिक हो जाने का ख़तरा नहीं है। प्रेमचंद आज भी हमारे लिए उतने ही प्रासंगिक है, जितने वे अपने समय में थे।''[1] इस प्रकार एक महान लेखक की पहचान यही होती है कि वह अपने युग की समस्याओं से जुड़कर उन्हें साधारण से असाधारण बना देता है।

किसान का अपनी जमीन से, गाँव से, जानवरों से अत्यधिक लगाव रहता है। स्वार्थी समाज, राजनीति, रूढ़ियों, महंतों, पंडों, पुरोहितों तथा नारी–मुक्ति जैसे विषयों को उन्होंने उठाया। किसानों, दलितों तथा मजदूरों में नई चेतना जगाने का काम प्रेमचंद ने किया। सच्चे देश–प्रेमी के रूप में उनका रचना संसार राष्ट्रीय आंदोलन से प्रेरित दिखाई देता है। प्रेमचंद आदर्श को अपनाकर यथार्थ को जानने की कोशिश करते है।

गोदान में प्रेमचंद ने ग्रामीण परिवेश के साथ–साथ शहरी परिवेश का भी चित्रण किया है। रायसाहब, प्रो. मेहता, मालती, खन्ना, गोविन्दी, तंखा, ओंकारनाथ, मिर्ज़ा ख़ुर्शेद आदि शहरी पात्र है। तथा होरी, धनिया, गोबर, झुनिया, हीरा, भोला, दातादीन, झिंगुरी सिंह, नोखेराम आदि ग्रामीण पात्र है। इस प्रकार गोदान में लगभग पचपन पात्र हैं। पात्रों के नामकरण में परिवेश के साथ–साथ वंश, जाति का भी ध्यान रखा है। गोबर होरी का पुत्र है जो ग्रामीण युवको का प्रतिनिधित्व करता है। वह देहात से शहर चला जाता है। रायसाहब गाँव और शहर दोनों से जुड़े है। मालती समाजसेवी है। इस प्रकार शहरी ज़मींदार, डॉक्टर, प्रोफेसर, कम्युनिस्ट नेता, संपादक, बीमा एजेंट, बैंकर और मजदूरों का चित्रण गोदान में मिलता है। मिल मालिक तथा मजदूरों का संघर्ष भी उपन्यास में है।

होरी उपन्यास का नायक है। वह जीवनभर संघर्ष करता है। उसकी पत्नी धनिया व्यवहार–कुशल नहीं है। वह लगान से परेशान रहती है। उसकी तीन संतानें मर गई हैं। तीन जिन्दा है। गोबर और दो लड़कियाँ सोना और रूपा। गाय पालने की होरी की प्रबल लालसा थी। किसान बहुत स्वार्थी होता है। होरी भोला की मज़बूरी का फायदा नहीं उठाना चाहता। भोला पुनर्विवाह की आशा से होरी को अपनी गाय देता है। उपन्यास में अवध–प्रान्त के दो गाँव सेमरी और बेलारी से कथानक जुड़ा है। होरी बेलारी का निवासी है। रायसाहब अमरपाल सिंह सेमरी में रहते हैं। गोबर को होरी के द्वारा जमींदारों की खुशामद करना पसंद नहीं है। होरी भले ही गरीब हो किन्तु स्वाभिमानी है। अपने भाई हीरा की पत्नी पुन्नी को जब चौधरी धक्का देता है, होरी गुस्से में चौधरी को लात मरता है। होरी का मानना है कि, कर्ज़ वह मेहमान है, जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता। होरी झिंगुरी को गाय बेचना चाहता है। जब वह भोला की दी हुई गाय के सामने जाकर खडा होता है उसे लगता है जैसे गाय उससे कुछ कह रही है– ''क्या चार दिन में ही तुम्हारा मन, मुझसे भर गया? तुमने तो वचन दिया था कि

जीते–जी इसे न बेचूँगा। यही वचन था तुम्हारा! मैंने तो तुमसे कभी किसी बात का गिला नहीं किया। जो कुछ रूखा–सूखा तुमने दिया, वहीं खाकर सन्तुष्ट हो गयी। बोलो।''[2] प्रेमचंद ने होरी की स्वार्थवृत्ति पर प्रकाश डाला है जो वह महाजनी सूद की परेशानी से छुटकारा पाने के लिए अपनाता है। होरी अपने भाई हीरा को बेटे के समान मानता है। होरी का बेटा गोबर भोला की लड़की झुनिया को लेकर शहर चला जाता है। इधर होरी का हर जगह आर्थिक शोषण होता है। झिंगुरी, दातादीन, दारोगा सबके आगे वह लाचार है। धनिया बहुत ही स्वाभिमानी नारी है परंतु जब होरी कर्ज़ के रुपये दारोगा को देने जाता है तो वह उसे रोकती है। सबके सामने उसे डाँटती है। धनिया गाँव के मुखिया को कहती है– ''ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले। सूद–ब्याज, डेढ़ी–सवाई, नज़र–नज़राना, घूस–घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेहल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा, धरम से, न्याय से।''[3] इस प्रकार धनिया एक कर्मठ, शालीन एवं स्पष्ट कहने वाली नारी के रूप में सामने आती है।

भारतीय किसान के जीवन में खेती, बैल का अत्यधिक महत्व होता है। कार्तिक के महीने में होरी के बैल मर जाते है। गाँवों में बोआई शुरू हुई थी। इधर होरी के खेत बिना बैलों के सूने पड़े थे। होरी जीवनपर्यंत संघर्ष करता है। वह तीन बीघे का किसान था। किन्तु शूद्रखोरी की व्यवस्था में उसे मजदूर बनने के लिए विवश कर दिया। सामाजिक ताना–बाना भी गरीब को और गरीब तथा अमीर को और अमीर बना रहा है, जो बदस्तूर आज भी जारी है। गोदान में प्रेमचंद का प्रकृति प्रेम भी उभरकर सामने आता है। गाँव में ऊख की बोआई के समय जब होरी खेत में पहुँचता है, प्रेमचंद लिखते हैं–''फागुन अपनी झोली में नवजीवन की विभूति लेकर आ पहुँचा था। आम के पेड़ दोनों हाथों से बौर के सुगन्ध बाँट रहे थे, और कोयल आम की डालियों में छिपी हुई संगीत का गुप्त दान कर रही थी।''[4] उपन्यास में उत्सवों एवं त्योहारों का भी चित्रण हुआ है। होली के एक महीना पहले और बाद तक उड़ने वाली फाग। अषाढ लगते ही आल्हा, सावन–भादों में कजलियाँ और उसके बाद रामायण–गान का उल्लेख भी गोदान में हुआ है। होरी किसान होकर उसकी खेत दातादीन के कब्ज़े में है। जीवन के संघर्ष में उसकी हमेशा हार होती है। लड़ते–लड़ते वह अपना आत्मविश्वास खो देता है। अपनी तीन बीघा जमीन बचाने के लिए होरी फाके सहता, बदनाम होता, मजूरी करता है। वह सभी मुसीबतों को सहता है। तीन साल से लगान बाकी होने के कारण पण्डित नोखेराम उस पर बेदखली का दावा करता है। होरी एक पुत्र–वत्सल पिता है। गोबर जब लखनऊ जाने के लिए निकलता है वह दुःखी होता है। जैसे उसे अब पुत्र–दर्शन नहीं होगा। बेटियाँ अपने ससुराल चली गई। रुपयों की चिंता में वह बीमार पड़ता है। वह धनिया से कहता है–''चल बीमार वह पड़ते है जिन्हें बीमार पड़ने की फुरसत होती है।''[5] होरी सड़क के लिए कंकड़ खुदाई का काम करने लगता है। रात में ढिबरी के सामने बैठकर सुतली कातता है। सड़क पर काम करते हुए कंकड़ के झौवे उठा–उठाकर होरी की तबीयत बिगड़ जाती है। उसे मृत्युपूर्व संकेत मिलने लगे। अंततः गाय का चित्र उसकी आँखों के सामने आता है। एक बार होरी की चेतना लौटती है। मरते समय गाय की लालसा उसके मन में धरी की धरी रह जाती है। अपनी दुर्दशा पर वह मरते समय भी नाराज है। धनिया अकेली उसकी सेवा करती है। डॉक्टर के लिए उसके पास रुपये नहीं है। जब कोई अपना आँखों के सामने जाता है तो मन मानता नहीं। हीरा जब धनिया को गो–दान करने की सूचना देता है तब वह उसकी तरफ तिरस्कार से देखती है। मजबूर, लाचार, निर्धन, असहाय धनिया सुतली बेचकर कमाये हुए बीस आने पैसे पति होरी के हाथ में रखकर पण्डित दातादीन से गो–दान करवाती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि, गोदान प्रेमचंद का अमर उपन्यास है। उसका नायक होरी एक सच्चे भारतीय किसान का प्रतिनिधि है। समाज के सभी ठेकेदार, महाजन, ज़मींदार, पत्रकार, पुलिस सभी के जाल में फँसकर किसान घिसता है। कभी प्रकृति की मार, कभी कर्ज़ से बेज़ार किसान खेती से तंग आकर मजदूरी करना उचित मानता है। उपन्यास में धनिया के चरित्र को लेकर डॉ. रामविलास शर्मा लिखते है–''कथा ट्रेजडी है या नहीं, यह मृत्यु पर निर्भर नहीं है। धनिया का चरित्र होरी से कम ट्रैजिक नहीं है।''[6]

आलोच्य उपन्यास में प्रेमचंद अपने पात्रों में हृदय परिवर्तन कराते हैं। मातादीन ब्राह्मण से चमार बनने में गौरव मानता है। हीरा होरी से माफी माँगता है। गोबर झुनिया से माफी माँगता है। खन्ना सुधर कर गोविन्दी से मेल करवाते हैं। गोदान उपन्यास संयुक्त परिवार की दुःखांतिका है। इस उपन्यास का उद्देश्य महान है। यह भारतीय किसान जीवन का विराट चित्र प्रस्तुत करता है। होरी का त्याग, प्रेम, दया एवं बलिदान ने उसे नायक के शिखर पर पहुँचा दिया है। गोदान में दलित को विद्रोही और साहसी भी दिखाया है। अंतर्जातीय विवाह, सामाजिक विषमता जैसे विषयों को भी प्रेमचंद ने उठाया है। इस प्रकार गोदान यह एक कालजयी उपन्यास है।

संदर्भ

1 शोध दिशा, अंक–35, अक्तूबर–दिसम्बर 2016, पृ.क्र. 11.

2 गोदान, पृ.क्र. 81, 3 गोदान, पृ.क्र. 90, 4 गोदान, पृ.क्र. 162., 5. गोदाप, पृ.क्र., 287, 6. गोदान अंतिम पृष्ठ।

■ ■ ■

परामर्श मंडल एवं विषय विशेषज्ञ :

प्रो. विनोद कुमार मिश्र, अध्यक्ष हिंदी विभाग, त्रिपुरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अगरतला

प्रो. अवधेश कुमार, हिंदी साहित्य विभाग, म.गा.अ. हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

प्रो. मनीष पाण्डेय, प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, जे.एन.एम.पी.जी. कालेज, बाराबंकी, उ.प्र.

प्रो. माला मिश्रा, पत्रकारिता विभाग (अदिति महाविद्यालय), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. अमलदार 'नीहार', अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री मु.मा. टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया

प्रो. हेमांशु सेन, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रो. राजनारायण शुक्ल, पूर्व कार्यकारी अध्यक्ष, उ.प्र. भाषा संस्थान, लखनऊ

प्रो. राजेश चन्द्र पाण्डेय, प्राचार्य, डी.वी. कालेज तथा सम्पादक–शोध–धारा, उरई (जालौन)

प्रो. कृष्णकान्त चन्द्रा, हिंदी विभाग, जे.एन.एम.पी.जी. कालेज, बाराबंकी, उ.प्र.

प्रो. रीना सिंह, हिन्दी विभाग, जे.एन.एम.पी.जी. कालेज, बाराबंकी, उ.प्र.

प्रो. गौतम बनर्जी, अंग्रेजी विभाग, एम.एम.एच. कालेज, गाजियाबाद

प्रो. प्रणय कुमार त्रिपाठी, अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, का.सु. साकेत पी.जी. कालेज, अयोध्या

प्रो. राकेश नारायण द्विवेदी, चिन्तक : धर्म, दर्शन, अध्यात्म एवं प्राचार्य नेहरू महाविद्यालय, ललितपुर, उ.प्र.

डॉ. संजीव विश्वकर्मा, सहायक प्रोफ़ेसर, अंग्रेजी विभाग, दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ. जोगिन्द्र कुमार यादव, उप क्षेत्रीय निदेशक, IGNU क्षेत्रीय केन्द्र, हिमाचल प्रदेश

डॉ. अनिल सिंह, उप–प्राचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, एस.बी. आर्ट्स एवं कामर्स कालेज, शाहपुर थाणे, महाराष्ट्र

डॉ. रविकान्त, एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ. रवि रमेशचन्द्र शुक्ल, एसोसिएट प्रोफेसर, सीसीटीटीपी, स्कूल ऑफ इण्टरनेशनल स्टडीज, जे.एन.यू., दिल्ली

डॉ. दयाल सरन, सहायक प्रोफ़ेसर, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय, पिहानी, हरदोई

डॉ. विजय कुमार वर्मा, एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, जे.एन.एम.पी.जी. कालेज, बाराबंकी, उ.प्र.

डॉ. श्रवण गुप्ता, एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, विद्यांत हिन्दू पी.जी. कालेज, लखनऊ

डॉ. मनमोहन विश्वकर्मा, सहायक प्रोफ़ेसर, अर्थशास्त्र विभाग, गाँधी शताब्दी स्मारक पी.जी. कालेज, कोयलसा, आजमगढ़

श्री विकास, सहायक कुलसचिव, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

वाग्प्रवाह के नवीनतम् अंक

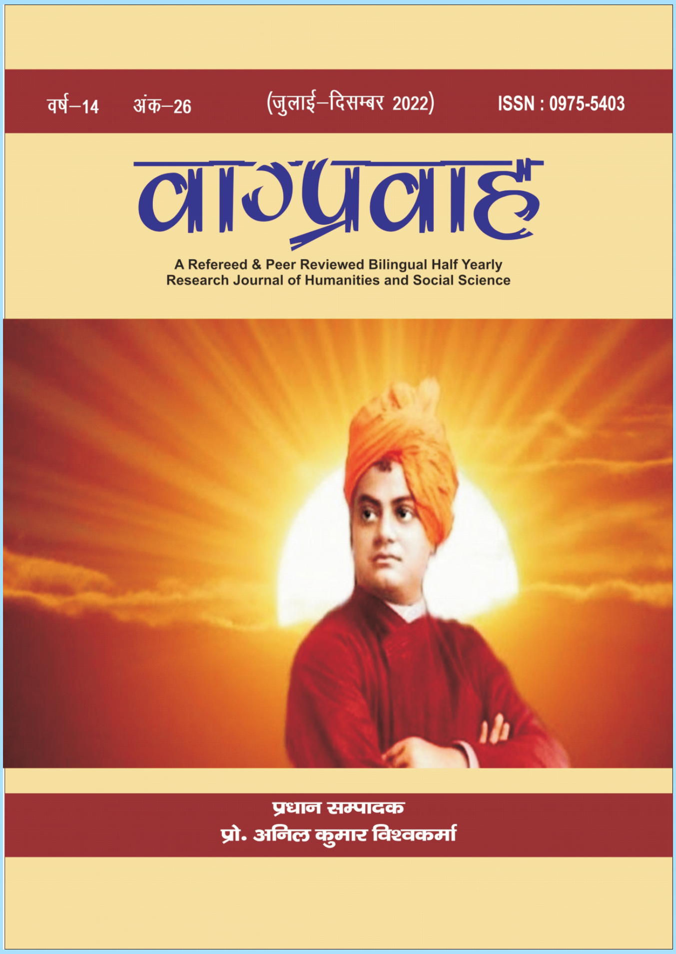

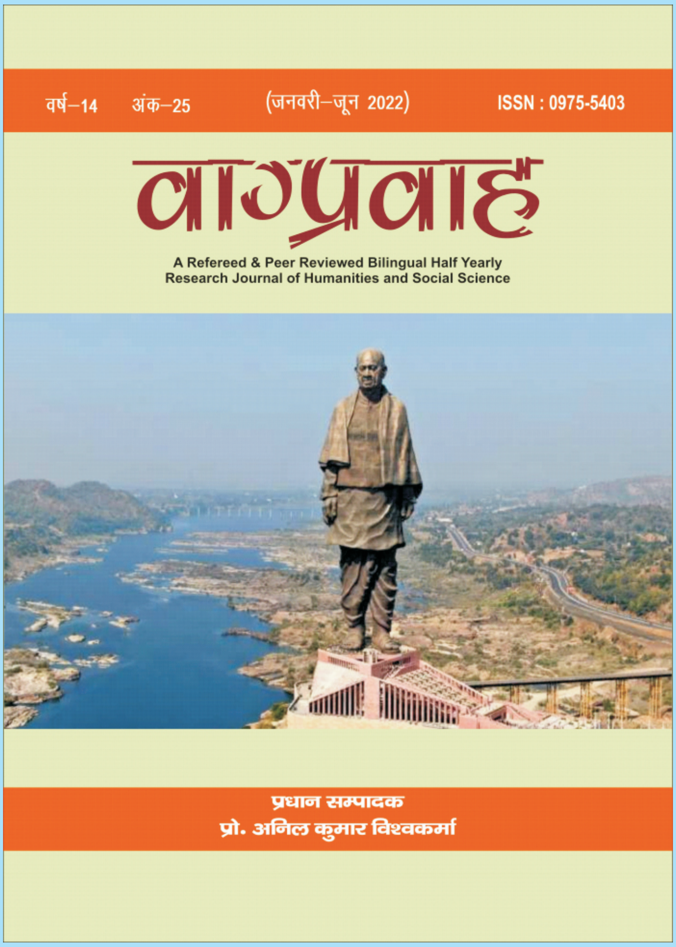

सदस्यता शुल्क वाग्प्रवाह के खाता सं. 1855000109052846
पंजाब नेशनल बैंक, बी–3/5 विजयन्त खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ पिन–226010 में सीधे जमा कर सकते हैं।

प्रकाशक एवं मुद्रक : अनिल कुमार विश्वकर्मा
प्रकाशन स्थल : 'अस्तित्व विला' 624H/KH-28, गोमती विहार, चिनहट, लखनऊ-226028